



# विश्व हिंदी साहित्य

२०२०



विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस  
की साहित्यिक पत्रिका

# विश्व हिंदी साहित्य 2020

प्रधान संपादक  
प्रो. विनोद कुमार मिश्र

संपादक  
डॉ. माधुरी रामधारी

विश्व हिंदी सचिवालय  
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423,  
मॉरीशस

World Hindi Secretariat  
Independence Street, Phoenix 73423,  
Mauritius

info@vishwahindi.com  
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com  
फ़ोन / Phone : +230-6600800



सहायक संपादक  
श्रीमती श्रद्धांजलि हजगैबी—बिहारी

संपादन सहयोग  
डॉ. वेद रमण पाण्डेय, आई.सी.सी.आर., हिंदी पीठ,  
महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस

टंकण टीम  
श्रीमती विजया सरजु, श्रीमती त्रिशिला आपेगाडु,  
श्रीमती जयश्री सिबालक—रामशरण, सुश्री निधि रामबर्न

निवेदन  
विश्व हिंदी साहित्य में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त मत रचनाकारों के हैं।  
संपादक मंडल का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पृष्ठ सज्जा  
आर. एस. प्रिंट्स

स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि., 4/5 बी, आसफ अली रोड,  
नई दिल्ली—110002 (भारत) द्वारा प्रकाशित



## साहित्य और संस्कृति

साहित्य का उद्भव समाज से होता है। साहित्यकार के स्वस्थ भावों और विचारों से संपृक्त साहित्य समाज के नवनिर्माण में पथ—प्रदर्शक की भूमिका निभाता है। साहित्य समाज को बदलने का प्रयास करता है, किन्तु कालजयी साहित्य समाज को बदलता ही नहीं वरन् मुक्ति के कई गवाक्ष खोलता है। साहित्यकार का समाज के साथ विशेष नाता होता है, वह समाज को अपने संचित अनुभव से वाणी देता है। उसके शब्द मूल्यों की कसौटी होते हैं और उनका स्रोत भी। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। दर्पण जहाँ मानव की बाह्य विकृतियों और विशेषताओं के दर्शन कराता है, वहीं साहित्य मानव की आंतरिक विकृतियों और खूबियों को उजागर करता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि साहित्यकार समाज में व्याप्त विकृतियों के निवारण हेतु आवश्यक परिवर्तनों को साहित्य में स्थान देता है। साहित्यकार से जिन गंभीर उत्तरदायित्वों की अपेक्षा रहती है, उसका उद्देश्य केवल व्यवस्था परिवर्तन ही नहीं, बल्कि आधारभूत मूल्यों का संयोजन भी है। साहित्य वह सशक्त माध्यम है, जो समाज को बड़े पैमाने पर प्रभावित करता है तथा समाज का प्रबोधन करता है, सत्य की सीख व शिक्षा प्रदान करता है। अच्छा साहित्य व्यक्ति और उसके चरित्र—निर्माण में भी सहायक होता है। यही कारण है कि समाज के नवनिर्माण में साहित्य की केंद्रीय भूमिका होती है। साहित्य समाज को संस्कारित करने के साथ—साथ जीवन मूल्यों की भी शिक्षा देता है एवं कालखंड की विसंगतियों, विद्रूपताओं एवं विरोधाभासों को रेखांकित करता है, जिससे समाज में सुधार आता है और सामाजिक विकास को गति मिलती है। साहित्य में मूल रूप से तीन विशेषताएँ होती हैं, जो इसके महत्व को महिमामंडित करती हैं— साहित्य अतीत से प्रेरणा लेता है, वर्तमान को चित्रित करने का कार्य करता है और भविष्य का दिशा—निर्देश करता है। साहित्य का मूल तत्त्व सबका हित साधन है। मानव अपने मन में उठने वाले भावों और विचारों को लेखनीबद्ध कर भाषा के माध्यम से जो प्रकट करता है, वह रचनात्मकता ज्ञानवर्धक अभिव्यक्ति के रूप में साहित्य कहलाता है। साहित्य शोषक व्यवस्था का बहिष्कार करता है। जीवन और साहित्य की प्रेरणाएँ लगभग समान होती हैं। समाज और साहित्य का संबंध अन्योन्याश्रित होता है। समाज के यथार्थवादी चित्रण और जीवंत अभिव्यक्ति के द्वारा साहित्य उसके नवनिर्माण का कार्य करता है। साहित्य की सार्थकता इसी में है कि वह कितनी गहनता और सशक्त संवेदना के साथ सामाजिक अवयवों का उद्घाटन करता है।

संस्कृति मानवीय अस्मिता की आधारशिला होती है, जो उसे उदात्त बनाती है। परम्परा और विचार से युक्त साहित्य और संस्कृति की यात्रा साथ—साथ चलती है। किसी समय की संस्कृति उस समय—काल के रीति—रिवाज़, विचारधारा आदि के माध्यम से जीवन के प्रति मनुष्य की सोच को

दर्शाती है। साहित्य और संस्कृति की वैचारिकी का धरातल एक होता है, किन्तु साहित्य ही संस्कृति का संरक्षक और पथ-प्रदर्शक होता है। संस्कृति द्वारा संरक्षित साहित्य 'लोकमंगल' की उदात्त भावना से परिपूर्ण हो सामाजिक उन्नति और विकास की आधारशिला रखता है। वह समाज के शोषित पीड़ित व वंचित वर्ग के साथ इतना तादात्म्य स्थापित कर लेता है कि उनके पीड़न को वह स्वयं की पीड़ा बना अपने व्यक्तिगत अनुभवों का सामाजीकरण कर लेता है। पिछली कई सदियों भारतीय साहित्य के सांस्कृतिक एवं सामाजिक निर्माण की साक्षी रही हैं। वर्तमान सदी भी अपनी पुरातन संस्कृति को निष्ठा के साथ स्मरण करते हुए अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़कर समाज-निर्माण की भूमिका को वरीयता के साथ पूरा करने में जुटी है, ताकि साहित्य का मानव को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प पूरा हो सके, क्योंकि इसी में व्यापक मानवीय एवं राष्ट्रीय हित निहित है। हाल के दिनों में संचार साधनों के प्रसार और सोशल मीडिया के माध्यम से साहित्यिक अभिवृत्तियाँ समाज के नवनिर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। यद्यपि बाजारवादी प्रवृत्तियों के प्रभाव के कारण साहित्यिक मूल्यों में गिरावट भी परिलक्षित हो रहा है, परंतु अभी भी स्थिति लगभग नियंत्रण में है। आज आवश्यकता इस बात की है कि समाज के सभी वर्ग यह समझें कि साहित्य समाज के मूल्यों का निर्धारक होता है और उसके मूल तत्वों को संरक्षित करना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि साहित्य ही जीवन के सत्य को उद्घाटित करने वाले विचारों व भावों की सुंदर अभिव्यक्ति है।

साहित्यिक कर्म ही रचना-कर्म है। यथार्थ और कल्पना की सन्धि-भूमि पर साहित्यकार का सर्जकत्व क्रियाशील होता है। साहित्य सामूहिक, सामाजिक, व्यक्तिगत और आस्तित्विक अस्मिता की पहचान कराता है। साहित्य भी स्थिति बोध जगाता है, जड़ों की पहचान कराता है, अपनी मिट्टी से रस खींचने की प्रेरणा देता है, प्रक्रिया सिखाता है और दक्षता बढ़ाता है। साहित्य बदलाव की पहचान करते हुए उस बदलाव की सम्भावनाएँ उजागर करता है तथा बदलने की प्रेरणा भी देता है। साहित्य सपने भी देखता है, कल्पना के महल खड़े करता है और गिराता है, अटकल लगाता है, भूल करता है, भूल करने का साहस भी करता है।

साहित्य और साहित्यकार दोनों कल्पना का सहारा लेते हैं और कल्पना सृजन का आधार होती है। दोनों समाज से जुड़े हैं, दोनों समाज पर आश्रित होते हैं और दोनों समाज को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं, उसकी वर्तमान स्थिति को भी और उससे जुड़ी आकांक्षा को भी। ऐसा करते हुए दोनों लगातार उसके द्वारा बदले भी जाते हैं और स्वयं उसमें बदलाव लाने का भी आधार बनते हैं। इतिहास और वर्तमान वास्तविकता की अभिव्यक्ति होने के कारण दोनों में एक अनिवार्य गम्भीरता भी होती है, लेकिन दोनों में कल्पना का महत्वपूर्ण योग होने के कारण उनमें एक क्रीड़ा-भाव भी बना रहता है। बल्कि दोनों की सर्जक सत्ता अनिवार्यतया क्रीड़ा-भाव से भी जुड़ी हुई होती है। जिन संस्कृतियों में क्रीड़ा-भाव नहीं रहता, उनकी उर्वरा शक्ति खत्म हो जाती है। जिस साहित्य में क्रीड़ा-भाव नहीं रहता, उसकी भी उत्पादकता क्षीण हो जाती है, रीति और परम्परा के आग्रह का रूप ले लेती है तथा प्रयोग से दूर हो जाती है। साहित्यिक कर्म सांस्कृतिक कर्म है, साहित्य रचना संस्कृति की रचना है और साहित्य के सांस्कृतिक परिवेश की उपेक्षा नहीं की जा सकती। साहित्य से संस्कृति बनती है और संस्कृति से साहित्य। बिना इसके संस्कृति जी नहीं सकती, पनप नहीं सकती। हम पुराण और परम्परा के नाम पर जिन बहुत-सी चीजों का ग्रहण और त्याग करते रहते हैं, उसमें बहुत-सी चीजें इसी तरह की हैं, जिसे हम यथातथ्य सत्य नहीं मानते, क्योंकि हम जानते हैं कि वह हमारी रचना है, हमारी कल्पना-सृष्टि है, हममें से उत्पन्न है, शून्य में से नहीं उपजी है, जैसे कि हम भी शून्य की उपज नहीं हैं। इतना ही नहीं, वह हमारी सामूहिकता और सामाजिकता का एक आधार है, हमारी अस्मिता का एक



अंग है। वह परम्परा का, सामूहिक अनुभव का अक्षय भंडार है, वह एक गत्यात्मक प्रक्रिया तथा एक अन्तर्दृष्टि है, जो सत्य को आलोचित करती रहती है। संस्कृति, समाज, साहित्य और कई अवधारणाओं में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। संस्कृतियाँ लगातार बदलती हैं, समाज भी लगातार बदलता है और साहित्य भी लगातार बदलता है। समाज को बदलने में साहित्य का योग होता है। आज साहित्यिक रचना और सामाजिक परिवर्तन के बीच एक दुरभि-संधि की जा रही है, जिसने साहित्य और समाज का बहुत अहित किया है, जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

सर्जक के नाते विशिष्ट होकर भी साहित्यकार आमजन की तरह ही होता है तथा आमजन से जुड़े उत्तरदायित्वों के प्रति सजग और प्रतिबद्ध होता है। एक ओर समाज-व्यवस्था में एक प्रकार के स्थायित्व के बिना सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को बनाए रखना सम्भव नहीं हो पाता, दूसरी ओर लगातार परीक्षण और बदलाव किए बिना व्यवस्था भी व्यवस्था नहीं बनी रह सकती है।

साहित्यकार के जिन व्यापक और गम्भीर उत्तरदायित्वों की ओर संकेत करना आवश्यक होता है, उनका सम्बन्ध केवल समाज में व्यवस्थित परिवर्तन के नियोजन से नहीं है, बल्कि उन संरचनात्मक और आधारभूत मूल्यों से है, जिनसे इसका निर्णय होता है। साहित्यकार को हम कालजित्, त्रिकालदर्शी, अनागतदर्शी, मनीषी, स्वयम्भू आदि न जाने क्या-क्या कहते हैं। यह बात अलग है कि आज जिन कृतियों को हम साहित्य के नाम से पढ़ते हैं, उनमें इनी-गिनी ही इस कोटि में आती हैं, जिन्हें हम साहित्य-स्रष्टा और कवि कहते हैं। उनमें भी बिरला ही इस कसौटी पर खरा उतरता है। आजकल ऐसा कवि या साहित्यकार तो हमें दूर-दूर तक नहीं दिखता, लेकिन हमारी आस्था नहीं डिगती है। इस आस्था का सम्बन्ध मानवीय आकांक्षा से है, जो मनोजगत में प्रतिष्ठित एक आदर्श की ओर संकेत करती है। आधारभूत मूल्य तो वे हैं जिन्हें सर्जक-साहित्यकार की अन्तर्दृष्टि समय-समय पर या बार-बार देख लेती है व दिखा भी देती है तथा उसके आलोक में सारा परिदृश्य बदल जाता है।

अतः संस्कृति और साहित्य के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध का निरंतर पोषण करते हुए जीवन और जगत के स्वभाव व व्यवहार के अनुकूल बचाए व बनाये रखने के सतत प्रयास किये जाने चाहिए, ताकि सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् की सनातन भावभूमि पर साहित्य और संस्कृति को पतझड़ के आसन्न खतरे से बचाते हुए सुखद वसंत की आहट को लोकमानस द्वारा सम्पूर्णता में सुना जा सके।

प्रो. विनोद कुमार मिश्र  
महासचिव





## साहित्य-पठन की संस्कृति

साहित्य-पठन की संस्कृति मानव-जाति की उन्नति एवं सभ्यता की सूचक है। मनुष्य के संप्रेषण को परिष्कृत करने, उसके ज्ञान को नयी दिशा देने और उसके विचारने एवं कार्य करने की शैली को सँवारने से लेकर समाज और राष्ट्र को उन्नत करने में साहित्य के पठन की संस्कृति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कई देशों के इतिहास साक्षी हैं कि मनुष्य में क्रान्ति और देश-भक्ति की भावना को पुष्पित-पल्लवित करने में भी साहित्य का बृहत् योगदान रहा है। फ्रांस के रेनेसांस अथवा भारत के नवजागरण का साहित्य-पठन से अभिन्न संबंध रहा। भारत में उपनिवेशवाद का विरोध करने की चेतना विशेष रूप से आधुनिक हिंदी साहित्य के पाठकों में विकसित हुई। उपनिवेशवाद जनित दुर्दशा के प्रति सजगता उत्पन्न होने के साथ ही विकृतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाने और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने का प्रोत्साहन भी साहित्य-पठन की प्रक्रिया का परिणाम था।

साहित्य 'सहृदय' जनों के लिए लिखा जाता है। इसमें संवेदना का पुट होता है और इसका सरोकार मानवीय एवं सामाजिक चेतना से होता है। तुलसीदास, सूरदास, कबीरदास, मीराबाई आदि की कविताएँ सहृदय पाठक के लिए भावात्मक उन्नति का आधार प्रमाणित हुई हैं। बिहारी, घनानंद, देव, पद्माकर आदि की रचनाएँ सहृदय के जीवन को आनंदित करती आयी हैं। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा आदि की कविताएँ हर संवेदनशील पाठक के मन में सौन्दर्य के प्रति अनुराग की वृद्धि करती आयी हैं। बीसवीं शताब्दी तक हिंदी साहित्य के पाठक संवेदना-प्रधान साहित्य के पठन के ही शौकीन रहे। कुछ दशक पूर्व दरिद्रता के बावजूद भी साहित्यिक पुस्तकों को खरीदने, उन्हें चाव से पढ़ने अथवा पुस्तकालय में कई घंटे बैठकर साहित्यिक रचनाओं में डूबे रहने की वृत्ति प्रबल थी। उपन्यास-पठन के दीवाने अपने परिचितों से पुस्तकें उधार लेकर और विद्यालय के छात्र अपनी पाठ्य-पुस्तकों में उपन्यास छिपाकर कथाकारों के भावनात्मक संसार से जुड़ने एवं अपनी भावनाओं को बेहतर पहचानने की लालसा लिए उपन्यासों का उत्साहपूर्वक आस्वादन करते थे।

साहित्य-पठन की परम्परागत शौक में वर्तमान काल में आमूल परिवर्तन हुआ है। कम्प्यूटर, इंटरनेट, समाचार चैनलों, टी.वी धारावाहिकों, सिनेमा, अखबार, स्मार्टफोन आदि के प्रचलन ने पुस्तक-पठन की संस्कृति को भारी क्षति पहुँचाई है। विडंबना यह है कि जब पुस्तकों की छपाई नहीं होती थी तब लोग साहित्यिक रचनाओं को येन-केन प्रकारेण उपलब्ध करके पठन की प्रवृत्ति का परिचय देते थे। आज प्रकाशन की सुविधाओं के फलस्वरूप जहाँ साहित्यिक कृतियों के प्रकाशन में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है, वहाँ दुर्भाग्यवश साहित्य के पाठकों की संख्या सिमटकर रह गयी है। यहाँ तक कि विद्यालयों में साहित्य के अध्येता भी पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकों को खरीदकर उनका सम्यक् अध्ययन करने



में शिथिलता दर्शाते हैं। पाठशाला और ट्यूशन के गृहकार्यों में उलझकर रह जाने वाले विद्यार्थी साहित्य-पठन के आनंद से लगभग वंचित ही रह जाते हैं। साहित्य की पुस्तकों से लोगों का सम्बन्ध नित्य टूटता जा रहा है और साहित्यिक पत्रिकाओं के पठन में भी उत्साह मंद पड़ता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

शिक्षित वर्ग और युवा वर्ग में यद्यपि पठन की वृत्ति अभी भी शेष है, तथापि यह वृत्ति संवेदना-प्रधान साहित्य के पठन से न जुड़कर इंटरनेट पर उपलब्ध सूचना-प्रधान सामग्री के पठन से संबंधित है। प्रश्न यह है कि सूचना-प्रधान सामग्री क्या साहित्य की भाँति सत्य, शिव और सुन्दर का साक्षात्कार करा पाएगी? क्या वह मानवतावाद, लोक-कल्याण और अध्यात्म की उत्कृष्ट भावनाओं की अभिवृद्धि कर पाएगी? क्या सोशल मीडिया द्वारा प्रतिदिन परोसी जा रही पठन-सामग्री समाज में हिंसा, चोरी-डकैती, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, बलात्कार, हत्या, घिनौनी राजनीति आदि के फैलाव को रोकने में सक्षम हो पाएगी? सही ज्ञान और शुद्ध आचार-विचार को विकसित करने की जो अद्भुत योग्यता साहित्य में है, वह शायद ही सूचना-प्रधान सामग्री में हो। मनुष्य को श्रेष्ठ मनुष्य बनाने के प्रयोजन से साहित्य-पठन की संस्कृति को संरक्षित तथा विस्तारित करने की आवश्यकता गहनतापूर्वक अनुभूत की जाती है।

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के युग में पठन की विधि में आए परिवर्तन को स्वीकारते हुए आधुनिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले इंटरनेट के माध्यम से हिंदी में विरचित साहित्य को पाठकों तक पहुँचाने और उन्हें साहित्य के पठन का नया अनुभव कराने का बेहतर प्रयास करना होगा। सौभाग्यवश, इस दिशा में समुचित प्रयत्न की श्रृंखला आरम्भ हो चुकी है और साहित्य एक देश की सीमाओं को पार करके बृहत् पाठक वर्ग तक पहुँच रहा है। किन्तु, साहित्य की संस्कृति के नित्य परिवर्द्धन हेतु किए जा रहे प्रयासों को बढ़ाने और हिंदी में मात्र लेखन को नहीं, अपितु गुणात्मक एवं पठनीय लेखन को विश्व-पटल पर प्रस्तुत करने की अनिवार्यता है।

विद्यालयों में हिंदी के शिक्षण के अंतर्गत साहित्य का भी परिचय दिया जाता है। शिक्षकों की सत्प्रेरणा से यदि साहित्य के साथ विद्यार्थियों का गहरा जुड़ाव हो जाए, तो साहित्य-पठन की संस्कृति समृद्धशाली बन पाएगी। नौकरी को ध्यान में रखकर अभिभावक अपने बच्चों को अंग्रेजी, फ्रेंच आदि भाषाएँ सीखने का परामर्श देते हैं और उन विषयों के चयन पर अधिक बल देते हैं, जो आजीविका-उपार्जन में उपयोगी सिद्ध होते हैं। परिणामस्वरूप, माध्यमिक स्तर पर हिंदी विद्यार्थियों की संख्या घट रही है और हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों की संख्या अत्यधिक चिंताजनक है। अब साहित्य के पाठकों का नया वर्ग तैयार करने के लिए यह अनिवार्य है कि साहित्यिक रचनाओं के पठन को हिंदी भाषा तथा हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों तक सीमित न रखकर अन्य अध्ययन-क्षेत्रों के विद्यार्थियों तक विस्तारित किया जाए और साहित्य-पठन मात्र भाषा-अभ्यास या परीक्षाओं की तैयारी के उद्देश्य से ही नहीं, अपितु आस्वाद की दृष्टि से भी किया जाए। साहित्य के रस से एक बार परिचित हो जाने पर विद्यार्थी भविष्य में भले ही डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, वकील आदि क्यों न बन जाएँ, फिर भी यह संभावना रहेगी कि वे जीवन पर्यंत साहित्य के स्वतंत्र पाठक बनकर रहें।

अपने बच्चों को कम्प्यूटर, इंटरनेट, स्मार्टफोन आदि से जोड़ने वाले सर्वप्रथम उनके अभिभावक होते हैं। अतः बच्चों में साहित्य के पठन का संस्कार डालने में भी पहला कदम अभिभावकों को ही उठाना पड़ेगा। यह सामान्य सहमति है कि संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती है। क्यों न माता-पिता और घर के बुजुर्ग सरल, सचित्र और आकर्षक साहित्यिक पुस्तकों का एक कोना घर के भीतर स्थापित करें और स्वयं साहित्य के नियमित पाठक का आदर्श प्रस्तुत करते हुए

अपने बच्चों को साहित्य-पठन का संस्कार विरासत के रूप में प्रदान करें। अभिभावक अपने मासिक वेतन का एक भाग साहित्यिक कृतियों पर खर्च करने का संकल्प करके घर के प्रभावी वातावरण में बच्चों के लिए पुस्तकों की दुनिया अवश्य खोल सकते हैं। बच्चों के जीवन-पद्धति का एक अभिन्न अंग बनने पर ही साहित्य-पठन की संस्कृति नदी की बलवती धारा की भाँति पीढ़ी-दर-पीढ़ी बहती चली जाएगी।

‘विश्व हिंदी समुदाय’ की अमूल्य पहचान साहित्य-पठन की संस्कृति से कराना एक ऐसा सुन्दर स्वप्न है, जिसे साकार करने के लिए विभिन्न स्तरों पर योजनाबद्ध तरीके से कारगर पहल करनी होगी। विश्व में कई सक्रिय संगठन हैं, जिनका प्रधान लक्ष्य हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार करना है। समय की माँग है कि अब ऐसे प्रभावशाली संगठन स्थापित हों, जो विशेष रूप से साहित्य के पठन को समुन्नत करें और साहित्य के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन लाएँ, ताकि जन-सामान्य साहित्य का मूल्य समझें, साहित्य का सम्मान करें और उसके पठन की ओर प्रवृत्त हों। साहित्य की पूर्णता उसके पाठकों में ही संभव है – “जंगल में मोर नाचा, किसने जाना” अथवा “तमाशा नहीं, जिसका कोई तमाशाई नहीं।” संस्थाओं के अतिरिक्त साहित्यकारों, समीक्षकों और प्रकाशकों को एकजुट होकर विश्व हिंदी समुदाय में यह संकल्पना निर्मित करनी है कि साहित्यिक कृतियों के सृजन और प्रकाशन की गति तभी जारी रहेगी जब साहित्य के पाठकों की संख्या बढ़ेगी।

विश्व हिंदी सचिवालय की वार्षिक साहित्यिक पत्रिका ‘विश्व हिंदी साहित्य’ की प्रतियाँ विश्व के कोने-कोने में भेजी जा रही हैं, ताकि वैश्विक धरातल पर रचा जा रहा मौलिक साहित्य अधिकांश पाठकों तक पहुँचे और साहित्य-पठन की संस्कृति निरंतरता प्राप्त करे। हिंदी जगत् में “विश्व हिंदी साहित्य” या किसी भी अन्य साहित्यिक पत्रिका या साहित्यिक कृति का स्थान निश्चित करने का एक सशक्त आधार साहित्य-पठन की संस्कृति का सतत विकास है। ‘विश्व हिंदी साहित्य’ का तीसरा अंक इसी आशा से प्रकाशित है कि आज भी साहित्य-पठन की संस्कृति जीवित है और भविष्य में भी इस संस्कृति का गौरवमय अस्तित्व रहेगा।

डॉ. माधुरी रामधारी  
उपमहासचिव





## अनुक्रम

### लघुकथा

1.	भारत	हिडन पॉलिसी	श्री संतोष सुपेकर	1
2.	भारत	इंटरनेट ऑफ़ बीग्स	डॉ. चंद्रेश कुमार छतलानी	1
3.	भारत	टूटे पत्ते	श्री विजयानंद विजय	2
4.	मॉरीशस	फूल चोर	सुश्री प्रेरणा आर्यनायक	3
5.	मॉरीशस	भूल से न छूना मेरे हिस्से का खाना	डॉ. कुमारदत्त गुदारी	4
6.	अमेरिका	महफिलें बंद हैं	श्री दीपक मशाल	5
7.	अमेरिका	गहरी नींद	डॉ. कुसुम नैपसिक	6
8.	ऑस्ट्रेलिया	अनुयायी	रीता कौशल	6
9.	न्यूजीलैंड	छूमंतर	श्री रोहित कुमार 'हैप्पी'	7

### कहानी

10.	भारत	पीठासीन अधिकारी	श्री ब्रह्म दत्त शर्मा	8
11.	भारत	जीवन—चक्र	श्री धर्मेन्द्र कुमार सिंह	16
12.	भारत	नज़राना	श्रीमती भारती गोरे	21
13.	भारत	सौ नंबर	डॉ. मंजरी शुक्ला	27
14.	भारत	कछु लेना न देना मगन रहना	श्रीमती भावना सक्सेना	33
15.	मॉरीशस	टीस	श्रीमती कल्पना लालजी	39
16.	मॉरीशस	हिम्मत की प्याली	बीबी साहेबा फर्ज़ अली	43
17.	सेशेल्स	पारिजात के फूल	श्री अशोक कुमार 'आशु'	47
18.	अमेरिका	व्यक्ति, बस व्यक्ति	प्रतिभा सक्सेना	50
19.	ऑस्ट्रेलिया	अव्यक्त आकर्षण	डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव	53
20.	यू.के.	सरोज रानियाँ	डॉ. वंदना मुकेश	61

---

## कविता

---

21.	भारत	कोरोना विभीषिका	प्रो. मृदुला जुगरान	66
22.	भारत	वे आँखें	राखी राठौर	67
23.	भारत	भ्रूण हत्या	वर्षा शर्मा	67
24.	भारत	इस हत्यारे समय में	श्री अरविन्द यादव	68
25.	भारत	विलोम	श्री राजकिशोर राजन	69
26.	मॉरीशस	जब हमारी सुबह हुई	श्री घनश्याम शर्मा मोहाबीर	70
27.	मॉरीशस	बोलोम कोरोना	श्री वशिष्ठ कुमार झमन	71
28.	मॉरीशस	कोई तो है!	श्री सहलिल तोपासी	71
29.	मॉरीशस	नास्तिक	श्री अरविन्दसिंह नेकितसिंह	72
30.	मॉरीशस	हम साथ चलेंगे	सुश्री आरती हेमराज	73
31.	ऑस्ट्रेलिया	तिरंगा ध्वज लहराये	श्री हरिहर झा	74
32.	ओमान	नारी	श्रीमती सुनंदा तिवारी	75
33.	ओमान	मातृभूमि	डॉ. अशोक कुमार तिवारी	76
34.	पपुआ न्यू गिनी	उल्लू को इन्सान किसने बनाया	श्री संदीप सिधवाल	77
35.	कतर	इस गुज़रते साल ने कितनी नई बातें सिखाई हैं	शालिनी वर्मा	78
36.	फ़िलिपीन्स	वसुधैव कुटुंबकम्	प्रिया शुक्ला	78

---

## दोहा

---

37.	भारत	दोहे	कर्नल पी.सी. वशिष्ठ	79
-----	------	------	---------------------	----

---

## हाइकु

---

38.	भारत	हाइकु	शालिनी शालू 'नज़ीर'	80
39.	भारत	हाइकु	श्री रमेश कुमार सोनी	81

---

## ग़ज़ल

---

40.	भारत	ग़ज़ल	श्री अरुण कुमार पाण्डेय 'अभिनव अरुण'	83
41.	बेल्जियम	ग़ज़ल	श्री कपिल कुमार	84

---

## नाटक / एकांकी

---

42.	भारत	बोया बीज बबूल का	श्री दिवाकर राय	85
43.	भारत	लॉकडाउन	श्री विवेक श्रीवास्तव	88
44.	मॉरीशस	असली पूंजी	श्री विश्वानंद पतिया	93
45.	अमेरिका	मानस की जात	श्री अनुराग शर्मा	102
46.	न्यूज़ीलैंड	यादें	श्रीमती सुनीता नारायण	104

---

## निबंध

---

47.	भारत	भाषा और अस्मिता	डॉ. प्रमोद कुमार दुबे	108
48.	भारत	विचार-दर्शन	डॉ. भुवनेश्वर दूबे	112
49.	मॉरीशस	भारतीय संस्कृति	सुश्री अनुराधा बुद्धिनाथ	117

---

## संस्मरण

---

50.	भारत	हिंदी के विकास पुरुष : फ़ादर बुल्के	डॉ. केदार सिंह	121
51.	भारत	बुलारी	अनीता गंगाधर	126
52.	मॉरीशस	'भूतहा' कब्रिस्तान	श्रीमती सुनीता आर्यनायक	127
53.	अमेरिका	गुज़ारिश	प्रीति गोविंदराज	129

---

## यात्रा—वृत्तांत

---

54.	भारत	जर्मनी की एक यादगार यात्रा	डॉ. काजल पाण्डे	134
55.	भारत	गंजे पहाड़ों का सौंदर्य	सोनी स्वरूप	135
56.	मॉरीशस	एक अंतिम यात्रा : ईरोड से रामेश्वरम् तक	डॉ. सोमदत्त काशीनाथ	142
57.	कनाडा	मेरी मॉरीशस यात्रा	डॉ. रत्नाकर नराले	148
58.	यूरोप	रोम	शिखा वार्ष्णेय	151
59.	यूरोप	यात्रावृत्तांत	इंदु बरोत	156



---

## व्यंग्य

---

60.	भारत	कोरोना काल की विकराल कथा	डॉ. राकेश शर्मा	161
61.	भारत	चमचा इन दिनों	डॉ. अशोक गौतम	166
62.	मॉरीशस	कौन भागी?	सुश्री चांदनी देवी रामधनी	166
63.	अमेरिका	जोहन की कहानी	डॉ. कुसुम नैपसिक	168
64.	यू.के.	आधुनिक मीडिया की व्यथा—कथा	मधु कुमारी चौरसिया	171
65.	नेपाल	कोरोना की अद्भुत, अनुपम तथा अपार महिमा	वीणा सिन्हा	172

---

## साक्षात्कार

---

66.	भारत	‘संस्कारों की कसौटी पर हिंदी अधिक स्पष्ट भाषा’ : डॉ. हेंस वर्नर वेसलर से बातचीत	डॉ. जवाहर कर्नावट	175
67.	भारत	कथाकार पद्मश्री मालती जोशी से बातचीत	प्रो. खेमसिंह डहेरिया	178
68.	भारत	‘हिंदी ने मुझे बनाया’ : प्रवासी लेखक तेजेंद्र शर्मा से बातचीत	डॉ. दीपक पांडेय	180

# हिडन पॉलिसी

— श्री संतोष सुपेकर  
उज्जैन, भारत

दुकान पर रखी लालटेन अब वैसी नहीं थी, पुराने ज़माने की काली पीली-सी, धुआँ छोड़ती, हाथ और आँखें खराब कर देने वाली.....। अब लालटेन सुंदर रंगों और चार्जबल बैटरी से युक्त साफ़ सुथरी है और शोरूम में रखी है।

इसी नए तथ्य से एंटकर, एक सुबह लालटेन ने एकाएक पास रखी टॉर्च से कहा “मैं अब वो लालटेन नहीं रही, पुराने ज़माने की! अब मैं एक नए रूप में सामने आ गई हूँ, आज के आदमी को जानने लगी हूँ। आज का आदमी अंधेरा चाहे वह खुद करे, पर रहना रोशनी में ही चाहता है। देखना, आज दुकान खुलने दो, सब खरीददार मुझे ही पसन्द करेंगे। मेरे ही मॉडल्स को ले जाएँगे, तुम्हें नहीं।”

“देखना तुम!” ‘तुम’ पर जोर देते हुए टॉर्च ने कहा “तुम आज के आदमी को जानती हो, मैं आज के आदमी की फ़ितरत जानती हूँ। आज का आदमी उजालों से नहीं, अंधेरों से प्यार करता है। अंधेरे में रहना पसंद करता है, ताकि कुछ भी नैतिक, अनैतिक कर सके और किसी को दिखाई न पड़े। अंधेरे में रहकर उजाला, रोशनी, फोकस वह दूसरों पर फेंकना चाहता है। दूसरों को उजागर करना चाहता है। छुपकर मोनिटॉरिंग करना आज के आदमी की फ़ितरत है और ये फ़ितरत, ‘मुझे’ हाथ में पकड़ कर ही पूरी हो सकती है, ‘तुम्हें’ नहीं।”

santoshsupekar29@gmail.com

## इंटरनेट ऑफ़ बींग्स

— डॉ. चंद्रेश कुमार छतलानी  
राजस्थान, भारत

उसका नाम सामनि था। सरगम के पहले, आखिरी और मध्यम स्वरों पर उसके संगीतकार पिता ने यह अजीबो-गरीब नाम रखा था। लेकिन वह खुद को ज़िन्दगी कहती थी। साथ ही यह भी कहती थी “ज़िन्दगी गाने के लिए नहीं है, गुनगुनाने के लिए है और गुनगुनाने के लिए सरगम के तीन स्वर काफी हैं।”

मैं तकनीक का व्यक्ति हूँ, इंटरनेट ऑफ़ थिंग्स पर काम करता हूँ। वह कहती थी कि इंटरनेट ऑफ़ थिंग्स के बजाय इंटरनेट ऑफ़ बींग्स पर दुनिया काम क्यों नहीं करती? कहती थी, काश! ऐसी एक

चिप होती, जो रोज़ रात को ठीक ग्यारह बजे उसके शरीर को शिथिल कर देती, दिमाग को शांत और आँखों में नींद भर देती।

प्रेमिका तो नहीं, वह केवल एक दोस्त थी। सच कहूँ, तो मुझे बहुत पसन्द थी। एक दिन मैंने उससे शादी का प्रस्ताव भी रखा। हँसते हुए बोली “ज़िन्दगी को छूना नहीं चाहिए, ज़िन्दगी को अपने इंटरनेट की तरह ही मानो ... जीने का अर्थ ही आभासी होना है।”

एक दिन तेज़ बारिश में भीगी हुई वह मेरे घर आई। कुछ सामान लेने गई थी कि बारिश हो गई।

मैंने उसे पहनने को अपने कपड़े दिए और कमरे से बाहर चला गया। उसने दरवाज़ा बंद किया। मैं घर पर अकेला ही था। दिल का दानव दिमाग तक पहुँचा और मैंने दरवाज़े के की-होल से उसे कपड़े बदलते हुए भरपूर देखा। देखा क्या, बस अपनी स्मृति में हमेशा के लिए बसा लिया।

वह बेखबर बाहर आई, हम दोनों के लिए चाय बनाई और हम पीते रहे, वह चाय और मैं ... न जाने क्या?

उस बात को लगभग एक साल गुज़र गया है। आज शाम उसने खुदकुशी कर ली। देर रात मैं उसके घर गया, तो पता चला कि किसी ने उसके कपड़े बदलने का वीडियो बना लिया था और उसे इंटरनेट की किसी वेबसाइट पर अपलोड कर दिया। सुनते ही मुझे याद आया कि उस दिन मेरा लैपटॉप भी तो ऑन ही था, इंटरनेट भी चल रहा था और

शायद ... कैमरा भी... हाँ—हाँ कैमरा भी तो ऑन था। शायद उसी वक्त मेरी तरह ही किसी और ने भी इंटरनेट के ज़रिए उसे अपनी स्थायी मेमोरी में बसा लिया था। लेकिन सिर्फ़ बसाया ही नहीं, उजाड़ भी दिया उस उज्जड़ ने।

मैं उसके घर से भागा। अपने घर पहुँचकर अपने कमरे में गया। लैपटॉप आज भी ऑन था। उसे बंद किया, तो कुछ चैन—सा मिला। मैं अपने कमरे से निकल आया और दरवाज़ा बंद कर दिया। डाईनिंग रूम में जाकर बैठ गया और आँखें बंद कर लीं। इस तरह जैसे ज़िन्दगी को कभी देखा ही नहीं हो। आज भी घर में मैं अकेला था। रात के ग्यारह बज रहे थे।

और उसी वक्त पूरा डाईनिंग रूम चाय की खुशबू से महक उठा।

**chandresh.chhatlani@gmail.com**

## टूटे पत्ते

— श्री विजयानंद विजय  
बिहार, भारत

वह सुबह—सुबह अपने बगीचे में टहल रहा था। ठंडी—ठंडी हवा तन—मन को सुकून और ताज़गी दे रही थी। कतारों में सजे रंग—बिरंगे फूल मुस्कुरा रहे थे। पक्षी गीत सुना रहे थे और रंग—बिरंगी तितलियाँ इंद्रधनुषी रंगों की छटा बिखेर रही थीं। आज सब कुछ उसे बहुत अच्छा लग रहा था कि अचानक पेड़ से एक पत्ता गिरा। उसने नीचे झुककर उस पत्ते को छुआ और उससे पूछा —

“तुम डाल से टूटकर क्यों गिरे?”

“मैं खुद टूटकर नीचे नहीं आया हूँ भाई। इस पेड़ ने ही मुझे अपनी शाखाओं से अलग कर दिया है।” (पत्ता बहुत दुखी था।)

“क्यों?”

“उसने कहा कि अब तुम हमारे किसी काम के नहीं रहे।” पत्ते ने रुआँसे स्वर में कहा।

“क्यों भाई? तुम तो इस पेड़ का एक अनिवार्य अंग थे? वह तुम्हें ऐसे कैसे अलग कर सकता है?”

“वही तो मैंने भी समझाया। पर वह कुछ समझने को तैयार ही नहीं हुआ और मुझे खुद से अलग कर दिया।”

“क्या उसे नहीं पता कि तुम उनके लिए सूर्य का ताप सहकर भोजन बनाते हो। जीने के लिए उन्हें ऑक्सीजन देते हो? फिर भी...?”

“हाँ। फिर भी।”

“वाह भाई वाह। ये तो बेरहमी है।” — फिर

उसने पेड़ को संबोधित करते हुए कहा — “क्यों भाई पेड़, तुम्हारे अंकुरण से लेकर आज तक इन पत्तों ने ही तो तुम्हारा पालन-पोषण किया है। तुम्हें जीवित रखा है। ये पत्ते न होते, तो क्या तुम्हारा अस्तित्व होता?”

“सही कह रहे हो।” — पेड़ ने कहा — “इसीलिए हम नहीं चाहते कि हमारा कोई भी सगा हमसे कहीं दूर जाए। अपना जीवन-चक्र पूरा कर आखिर एक दिन सबको मिट्टी में ही मिलना है। इसलिए शाखों से अलग होने के बाद भी हम पत्तों को अपने पास ही रखते हैं। अपनी मिट्टी में ही रखते हैं, ताकि इसी मिट्टी में घुलकर ये फिर से हमारी रगों में रच-बसकर पनप जाएँ। हम तुम्हें कभी अपने से

दूर नहीं कर सकते, प्रिय पत्ते।” — कहते हुए पेड़ भावुक हो गया।

पत्ते ने भी अभिभूत होकर पेड़ को अपनी बाहों में समेट लिया।

पेड़ और पत्ते की बातें सुनकर सहसा उसकी आँखों से आँसू की दो बूँदें ज़मीन पर टपकीं और होंठ बुदबुदाए — “बाबूजी।”

वह विह्वल होकर बगीचे से बाहर निकल गया।

उसके तेज़ कदम वृद्धाश्रम की ओर मुड़ गये थे....।

**vijayanandsingh62@gmail.com**

## फूल चोर

— सुश्री प्रेरणा आर्यनायक  
न्यूग्रोव, मॉरीशस

बहुत दिन हो गए देखते हुए, आज शाम से मैं अपने घर के आँगन पर बैठी थी, उसका इंतज़ार कर रही थी। प्रतिदिन कोई मेरे बगीचे में आकर फूल तोड़ जाता है, बगीचे को ध्वस्त और वीरान करके चला जाता है। कल सुबह सूरज निकलने से पहले वह फूल तोड़ने तो अवश्य ही आएगी, तब उसे पकड़ना है। ‘फूल चोर’, इतना ही पूजा में फूल चढ़ाने की लालसा है, तो अपने घर पर मेहनत कर क्यों नहीं फूलों के पौधे लगाते। दूसरों की मेहनत पर पानी फेरना क्या पुण्य का काम है?

अड़ोस-पड़ोस से पता किया, तो मालूम हुआ कि फूल तोड़ने वाली एक औरत है। वह पास में ही कहीं रहती है, जो हमारे घर से ज़्यादा दूर नहीं है, पर मैं उसे व्यक्तिगत रूप से नहीं जानती थी। जब वह सुबह शिवालय जाती, तो मोहल्ले में घूम-घूमकर फूल चुराती थी। कल तो उसने सारी सीमा ही पार कर दी। हमारे घर पर लगे सारे

सुंदर-सुंदर गुलाब तोड़ लिए, सीक से फूल खींचने के कारण मेरा गमला भी नीचे गिरकर टूट गया।

इस बात की चर्चा जब मैंने अपने पड़ोसियों से की, तब पता चला कि यह किसकी करतूत है। मेरी दीदी की सहेली ने तो मुझे उसका नाम और पता देते हुए यह भी बताया कि ‘‘बहिन जी वह मेरे भी घर में कई बार फूल तोड़ चुकी है, परन्तु वह कभी मेरे हाथ नहीं आ पाती, नहीं तो उसे अच्छा मज़ा चखाती।’’ मैं छत पर छिपकर उसके आने का इंतज़ार कर रही थी और मन-ही-मन सोच रही थी कि आने दो उसको, आज उसका हिसाब बराबर करती हूँ। यह कौन-सी बात है कि दूसरे के घरों से फूल चुराकर उससे भगवान की पूजा करो। मैं इतनी मेहनत करती हूँ, इतना खर्च करती हूँ कि मेरे बगीचे की सुंदरता बनी रहे, पर आजकल सबको मुफ़्त में मज़ा करने की आदत जो पड़ गई है।

लगभग एक घंटे से अधिक मैं अपने घर के

बाहर चहलकदमी करती रही। उसकी बेसब्री से प्रतीक्षा करती रही। फिर घर के अंदर से दादी ने आवाज़ दी "कब तक टहलती रहोगी ऐसे ही और कोई काम नहीं है क्या? चाय तैयार है, अंदर आकर पी लो।" मैं अपनी योजना को असफल होते देख बेमन-से घर में आ गई।

पर वह आज आई क्यों नहीं? यह सवाल मेरे अंतर्मन में कौंध रहा था कि आती तो जरूर मैं उसे दिन में तारे दिखा देती। यह सोचते-सोचते चाय कब खत्म कर ली, पता ही नहीं चला। मैंने दादी से कहा मुझे आज चाय अच्छी नहीं लग रही और मेरा ध्यान बार-बार दरवाजे पर ही जा टिकता था।

मैंने सोचा चलो थोड़ा घूम कर आते हैं, बाहर रास्ते में पुनः दीदी की सहेली मिल गई। नमस्कार के बाद उन्होंने पूछा "आज तो आपके फूल टूटे नहीं होंगे बहिनजी?" मुझे लगा दीदी की सहेली ने देख लिया होगा मुझे अपने घर के बगीचे की रखवाली करते हुए। सो मैंने कहा आज वह फूल तोड़ने आती, तो जरूर मार खाती मेरे हाथों से 'फूल चोर कहीं की'।

दीदी की सहेली ने थोड़ा गम्भीर होकर बताया "बहिन जी, वह अब नहीं आएगी, सुबह-सुबह फूलों के साथ वह भी भगवान के पास पहुँच गई।" मैं स्तब्ध रह गई सुनकर। अगले ही पल सब बदला-बदला नज़र आने लगा। मन एकदम दुखी हो गया उसकी मृत्यु की खबर सुनकर। कुछ भी हो मौत एक शाश्वत सत्य है, जिसके सामने सब झूठ है, मृत्यु सारे द्वेष, अहम् भाव को मिटा देती है और हर कोई मृत आत्मा की शांति की कामना करता है।

मैंने बिना विलम्ब किए घर जाना ही उचित समझा। घर आकर मैंने अपने गमलों पर नज़र डाली। तरोताज़ा गुलाब के फूल प्रतिदिन की तरह सूरज की लालिमा के साथ खिले हुए बहुत सुन्दर दिखाई दे रहे थे, पर फूलों में सुबह की मुस्कुराहट, वो आभा दिखाई नहीं दे रही थी, क्योंकि उन्हें भी आभास हो गया था कि अब कोई उन्हें तोड़कर भगवान के मस्तक पर नहीं चढ़ाएगा और इस कारण से उन्हें अपने भाग्य पर इटलाने और इतराने का भी अवसर नहीं मिलेगा।

[preranaaria@gmail.com](mailto:preranaaria@gmail.com)

## भूल से न छूना मेरे हिस्से का खाना

— डॉ. कुमारदत्त गुदारी  
ग्रँ गोब, मॉरीशस

गली में दो कुत्ते रहते थे। दोनों अनाथ। अन्धों की तरह। पर दोनों में गहरा प्रेम था। हमेशा आसपास एक साथ ही दिखते। नितांत स्वतंत्र थे। गली ही उनका आँगन था। गली के लोग उनके अपने थे। जहाँ भी कुछ मिला, खा लिया। निगरानी सभी की करते। मालिक उनके तो सभी थे, पर स्वामी भक्त का दर्जा उन्हें किसी से भी प्राप्त नहीं था। तब भी वे मैले, गन्दे जानवर, थे बड़े खुश।

उसी गली में एक बड़ा घर था। सुबह काम

पर निकलते सज्जन मालिक अपनी गाड़ी के शीशे को उतारते हुए, दोनों कुत्तों को साथ बैठे देख सोचा करता कि किसी रोज़ दोनों को अपनाएगा। आखिर दिन एक और आया, जब दोनों कुत्तों को मालिक मिला। गली छोड़ उन्हें अब बंद आँगन में रहना पड़ा।

मालिक के नौकर जब दोनों कुत्तों को अलग-अलग प्लेट में खाना देते, तब गहरी मित्रता वाले दोनों कुत्तों में लालच आ जाता। अपने हिस्से

को सुरक्षित रख, पहला कुत्ता अपने प्लेट के खाने को छोड़ दूसरे का पहले खाने लगता। यही बात दूसरे कुत्ते की भी थी। दोनों एक दूसरे पर नाराज़।

एक दूसरे पर भौंकने लगे और धीरे-धीरे हिंसक बन, एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे।

[drgoodary@gmail.com](mailto:drgoodary@gmail.com)

## महफिलें बंद हैं

— श्री दीपक मशाल  
कोलम्बस—ओहायो, अमेरिका

हफ़ते या पंद्रह रोज़ में वे चारों एक बार ज़रूर मिलते। जब भी मिलते गिलास टकराते, हँसी-ठट्ठे होते, मस्ती और खिंचाई होती। चारों का ही इस दुनिया से चालीस-बयालीस साल पुराना परिचय था और आपस में भी लगभग इतना ही। एक जो तनिक कम बोलता था, उसे अक्सर ज़्यादा सुनाया जाता।

“क्यों रे पिंटू कैसा चल रा काम धंधा? सब ठीक?” वह चुप रहता।

कोई दूसरा टोकता

“और कब कर रा बाल-बच्चे? उमर निकल रई अब तो..”

पहला या तीसरा फिर कह उठता “हमारी वालियाँ तो दूसरा-तीसरा जनने को आई, तू काए को पिछड़ रा है?”

अक्सर इस तरह भूमिका बना, आखिर में कोई तीखा सवाल दाग देता “कोई ऐसी-वैसी दिक्कत हो तो बता बे!”

वह चुपचाप या तो खाली या भरे गिलास को घूरता रहता या चखने को।

“हाँ और क्या!! आखिर दोस्त ही दोस्त के काम आते... कुछ हो तो बता ना!!” और बाकी तीनों एक दूसरे को कुहनी या आँख मारकर विद्रूप हँसी हँसने लगते।

इस तरह के मज़ाक उसे पसंद तो न थे, लेकिन बचपन के दोस्त थे, सो खामोश रह जाता!! फिर एकाकीपन सबको काटता है, इसलिए वह सुनकर अनसुना कर देता था।

शहर के एक बार में इस बारी फिर चारों का मिलना हुआ। चौथे पैग के रीतते-रीतते चुप रहने वाला बोला —

“सुनो”

बाकियों के हैरान गिलास मेज़ पर टिक गए।

“तुम लोग हमेशा कहते थे कि दोस्त ही दोस्त के काम आते हैं, तो फिर आज सुनो..”

तीनों ने एक दूसरे को देखा और मुस्कुराए।

“हम दोनों मियाँ-बीवी ठीक हैं। लेकिन इनके यूटेरस में कुछ समस्या है। डॉक्टर ने बोला है कि कोई कोख मिल जाए, तो आई.वी.एफ. तकनीक से बच्चा हो सकता है।”

सब खामोश थे। वह फिर बोला —

“अब मेरी माली हालत तो तुम सब जानते ही हो। पढ़े-लिखे हो सो मेरी मुश्किल भी समझ सकते हो। कोई अपने घर पर बात करो अगर इस दोस्त की मदद कर सको तो..”

तब से चार महीने हुए, महफिलें बंद हैं।

[mashal.com@gmail.com](mailto:mashal.com@gmail.com)



# गहरी नींद

— डॉ. कुसुम नैपसिक  
नॉर्थ केरोलाइना, अमेरिका

कोलाहल और उत्तेजना ने हृदय में भय पैदा कर दिया। नींद नहीं आ रही थी। कभी इस करवट, कभी उस करवट। अभी-अभी अख़बार में पढ़ा कि गोली मार दी गई दिन दहाड़े एक काले लड़के को, जो जॉगिंग कर रहा था। बस लोगों को डर था कि उसके पास हथियार हो सकता है। बलात्कार किया गया एक लड़की का, जुर्म था लड़की होकर आधी रात के बाद घर लौटी थी। बेमक़सद स्कूल में गोलियाँ चलाई एक सत्रह वर्ष के युवक ने और भून डाला आठ-दस जीवन को। सब कुछ एक ही दिन में कैसे हो सकता है?

क्या हो रहा है इस अमेरिकी समाज को? कैसे सब आँखें मूँदे सो सकते हैं? कोई कुछ बोलता भी नहीं। भीतर एक भँवरजाल—सा बनता जा रहा था। हृदय धौंकनी की तरह चल रहा था। दिल में कुछ कर गुज़रने की चाह करवट लेने लगी। लेकिन कोई रास्ता नज़र नहीं आ रहा था। तभी खुद से ही

सवाल-जवाब का सिलसिला शुरू हो गया।

सवाल “क्या मैं काला हूँ?”

जवाब “नहीं”

सवाल “क्या मैं लड़की हूँ?”

जवाब “नहीं”

मन कुछ शांत—सा हो रहा था। फिर ख़याल आया कि मेरे तो बच्चे भी नहीं हैं, जब होंगे तब चिंता की जाएगी। मैंने तो आज तक किसी मक्खी को भी नहीं सताया, फिर मेरा क्या बुरा हो सकता है? समाज में ये सब तो चलता ही रहता है, इसे कौन रोक सका है! जो अपनी लक्ष्मण-रेखा पार करेगा भुगतगा ही।

अब तो मन की खलबली पूर्णरूपेण स्थिर हो चली। तन और मन दोनों शिथिल होने लगे। गहरी नींद ने मुझे अपने आगोश में भर लिया।

[kusum.knapczyk@duke.edu](mailto:kusum.knapczyk@duke.edu)

## अनुयायी

— रीता कौशल

वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया

वह बदलाव की बड़ी-बड़ी बातें करता है...बहुत से धार्मिक मिशन से भी जुड़ा है। खासतौर पर ‘गायत्री परिवार’ में विशेष आस्था है उसे। सच्चा अनुयायी मानता है, वह स्वयं को ‘गायत्री परिवार’ का। उसकी सुबह गायत्री मंत्र के उच्चारण से शुरू होती और दिन की समाप्ति भी गायत्री मंत्र से होती। पीले वस्त्र धारण करके वह घर के आँगन में बैठकर हर रविवार को गायत्री का हवन भी करता और हवन

की समाप्ति पर, अग्नि को साक्षी मानकर उच्च स्वर में “नारी का हम सम्मान करेंगे...हम बदलेंगे, जग बदलेगा...जागेगी, भई जागेगी, नारी शक्ति जागेगी” जैसे नारे भी लगाता, क्योंकि गायत्री परिवार दहेज जैसी कुरीतियों की खिलाफ़त और स्त्री-सम्मान की पैरवी करता है।

‘गायत्री परिवार’ में उसकी आस्था इतनी ज़्यादा है कि अपने विवाह के तुरंत बाद दहेज में माँग कर

ली गई, उस खास ब्रैंड की महंगी कार को वाहन पूजन की रस्म के लिए ऑवल खेड़ा स्थित गायत्री शक्तिपीठ लेकर गया था। और हाँ, दांपत्य जीवन के शुभारम्भ की मंगलकामना के साथ नई नवेली पत्नी कृतिका को भी साथ ले जाना नहीं भूला था। वहाँ पहुँचकर कृतिका किंकर्तव्यविमूढ़—सी उसके

पीछे—पीछे चलती, पूजा—अर्चना की औपचारिकताएँ पूरी कर रही थी। न चाहते हुए भी कृतिका की दृष्टि बार—बार मुख्य पूजास्थल के सामने रखी दान पेटी पर जा टिकती, जिसपर बड़े काले अक्षरों में साफ—साफ लिखा था “महंगी शादियाँ हमें दरिद्र व बेईमान बनाती हैं!”

rita210711@gmail.com

## छूमंतर

— श्री रोहित कुमार ‘हैप्पी’  
न्यूजीलैंड

इन दिनों सड़कें सुनसान थीं। लोगों का आना—जाना बंद था। कोरोना अपने चरम पर था, लेकिन चाहतों पर किसकी पाबन्दियाँ? राजन और शिखा तो कोई न कोई बहाना लगाकर मिल ही लेते हैं। आज भी मिले।

“मैं तुम्हें बहुत चाहता हूँ....।”

“सच!”

“बिल्कुल सच। अपनी कसम।” राजन ने अपने कंठ को छूकर, शपथ लेने के अंदाज़ में कहा।

“मेरे बिना रह नहीं पाओगे? सदा साथ रहोगे?” शिखा ने चुहल की।

“तुम्हारे बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता। बिल्कुल रहूँगा।”

दोनों की नई—नई दोस्ती हुई थी। आते—जाते कई बार एक—दूसरे को गले लगाया करते थे।

शिखा ने फिर से एक सवाल किया—“चाहे मुझे कोरोना हो?”

संवादों के बीच एक सन्नाटा पसर गया। प्रश्न मुँह बाए खड़ा था, उत्तर को जैसे लकवा मार गया। इश्क का भूत? छूमंतर!

editor@bharatdarshan.co.nz

# पीठासीन अधिकारी

— श्री ब्रह्म दत्त शर्मा  
हरियाणा, भारत

हमारे स्कूल पहुँचने की खबर गाँव में आग की भाँति फैल गई थी। गाँववासी यूँ भागे चले आए, मानो पोलिंग के बजाय, हम कोई नौटंकी पार्टी हों और गाँव में तमाशा दिखाने वाले हों। वैसे हमारे देश में चुनाव तमाशा से कम हैं भी नहीं। बड़ों की देखा-देखी बच्चे भी कौतूहलवश दौड़े आए थे। वे हम पाँचों को टकटकी लगाए घूरते रहे और फिर हममें कुछ भी विशेष न पाकर निराश लौटने लगे। स्कूल गेट पर खड़ी कुछ निम्नवर्गीय महिलाएँ भी हमें किसी अजूबे की भाँति देखे जा रही थीं। हाथ में दरांती लिए वे शायद खेत में घास काटने जा रही थीं। किसी ने उन्हें डाँटा और वे टिठकती हुई आगे बढ़ गई।

सरपंच का चुनाव लड़ रहे एक उम्मीदवार के समर्थक जल्दी ही दूध, मिठाई, पकौड़े आदि लेकर हाज़िर हो गए। गोया कि उन्होंने पहले ही पूरा इंतज़ाम कर रखा था। फिर से लगा जैसे चुनाव के बजाय हम किसी बारात में आए हों। लोकसभा और विधानसभा के विपरीत, जहाँ पोलिंग पार्टियों को कई बार खाना भी नसीब नहीं होता, पंचायती चुनाव में दामाद की भाँति खूब आवभगत होती है। यह उसी की पहली बानगी थी।

स्कूल प्रांगण में सर्दियों की गुनगुनी व सुनहली धूप खिली थी। खा-पीकर हम सुस्ताने के लिए चारपाइयों पर लेट गए। हमारे पी.ओ. यानी पीठासीन अधिकारी शीघ्र ही खर्राटे भरने लगे। साँस लेने से उनका बाहर को उभरा हुआ पेट ऊपर-नीचे हिलता थोड़ा अजीब लग रहा था। वे सामान्य कद के मोटे-ताजे व्यक्ति थे। चेहरे पर बारीक और नुकीली मूँछें थीं। आगे से उनकी खोपड़ी गंजी थी, जिसे उन्होंने लम्बे बालों से छुपाने की काफी हद तक

सफल कोशिश की थी। उन्हें इस कदर सोता देख सभी हैरान थे, क्योंकि कल के चुनाव की तैयारी का काम इतना ज़्यादा था कि देर रात से पहले निपटने वाला न था। सुरेश कुमार जी, जो टीम में नंबर दो की हैसियत रखते थे, मुस्कराए “अरे, ये साहब तो ऐसे सोने लगे मानो चुनाव ही निपट गया हो। पहली बार इतना बेफ़िक्र और लापरवाह अफ़सर देख रहा हूँ, वरना चुनाव की चिंता में प्रिज़ाइडिंग को दोपहर छोड़ रात में भी ठीक से नींद नहीं आती।”

राधेश्याम जी को गहरी नींद से जगाया गया। फिर हम बूथ-सेटिंग में लग गए। धीरे-धीरे भीड़ छँटने लगी, लेकिन उम्मीदवारों के समर्थक वहीं डटे रहे। वे अपनी आवभगत, बातों और हाव-भाव से हमें प्रभावित करने में लगे थे। उनकी अभी भी वही पुरानी मान्यता थी कि चुनावी हार-जीत में मतों के अलावा पोलिंग पार्टी का ‘आशीर्वाद’ भी ज़रूरी होता है। हम चाहते थे वे चुपचाप हमें अपना काम करने दें, किंतु राधेश्याम जी उन्हें श्रोता के रूप में पाकर धन्य हो गए थे।

बेशक ग्रामीणों के लिए सरपंच का चुनाव ही सबसे महत्वपूर्ण था, किंतु वोट तो पंच, ब्लॉक-समिति और ज़िला परिषद् के लिए भी डलने थे। दो मतों के लिए मशीन और दो में मतपत्र का प्रयोग होने से मतदान प्रक्रिया काफी जटिल थी। मतपत्रों पर मोहर लगाकर उनमें वार्ड-संख्या, बूथ-संख्या, ब्लॉक-समिति-संख्या आदि भी भरा जाना था, जो एक लंबा और उबाऊ कार्य था। बूथ-सेटिंग के बाद हम उसे ही निपटा रहे थे। सर्दियों के दिन छोटे होते हैं; अतः जल्दी ही दिन ढल गया। इसी क्षण का बेसब्री से इंतज़ार कर रहे एक उम्मीदवार

के समर्थक शराब, कबाब आदि लेकर उपस्थित हो गए।

देखते ही राधेश्याम जी ने नाक-भौंह सिकोड़ी, “भैया मैं तो सिर्फ बढ़िया ब्रांड ही पीता हूँ।”

हमें जैसे विश्वास ही नहीं हुआ, क्योंकि सुबह से राधेश्याम जी लगातार दोहराए जा रहे थे कि गाँव में जाकर हम बिल्कुल निष्पक्ष रहेंगे। न ही किसी से कुछ ‘खाएँगे’ और न ही ‘पीएँगे’ और अब वे स्वयं ही ब्रांड की माँग कर रहे थे। हालाँकि ग्रामीण उन्हें खुश करने की खातिर चिड़िया का दूध भी लाने को तैयार थे।

राधेश्याम जी का मनपसंद ब्रांड आ चुका था, जिसकी गंध में काम करना उनके लिए मुश्किल हो गया “अरे, कागज़-वागज़ छोड़ो! बाद में पूरे होते रहेंगे। आखिर करतारपुर के चौधरियों की मेहमाननवाज़ी हमें कब नसीब होनी है!”

विनोद सेठी को ताज्जुब हुआ “सर, पहले कुछ काम तो निपट जाए!”

राधेश्याम जी बेफ़िक्री से बोले “अरे, निपट जाएगा! क्यों टेंशन लेते हो? मैंने आज तक इलेक्शन ही करवाए हैं।”

जब ऑफिसर ही चाह रहे, फिर बाकियों को भी क्यों चिंता होने लगी। शीघ्र ही सुरेश कुमार और संदीप चौधरी भी उनके साथ बैठकर जाम छलकाने लगे। मुफ़्त का माल देखकर मुझे और विनोद सेठी को भी ख़ूब अफ़सोस हो रहा था, किंतु चाहकर भी उनमें शामिल नहीं हो सकते थे। दोनों की ताज़ा-ताज़ा नौकरी लगी थी और अभी हम पर आदर्शवाद कुछ ज़्यादा ही हावी था। दूसरा, चुनावी रिहर्सल के दौरान अधिकारियों ने भी ख़ूब डराया-धमकाया था “यदि पोलिंग पार्टी का कोई भी सदस्य बूथ पर शराबनोशी करते पकड़ा गया, तो उसके खिलाफ़ सख़्त कार्यवाही की जाएगी।” न जाने क्यों हम कुछ ज़्यादा ही डर गए थे, किंतु वे तीनों ऐसी धमकियों को एक कान से सुनकर दूसरे से बाहर निकालने वाले ‘अनुभवी’ और ‘पुराने’ लोग थे।

उन्हें दावत का लुत्फ़ उठाते, जोर-जोर से बतियाते और हँसते देख, भला हमसे भी कहाँ काम होने वाला था? कागज़ों का पुलिंदा एक कोने में समेटकर हम गाँव में टहलने निकल पड़े।

लगभग घंटे भर बाद वापस आए, तो राधेश्याम जी के इर्द-गिर्द अच्छी खासी भीड़ जुट चुकी थी। बूथ की सुरक्षा में तैनात सिपाही भी अब बहती गंगा में हाथ धो रहे थे। खाते-पीते भी राधेश्याम जी का प्रवचन किसी धर्मगुरु की भाँति लगातार जारी था। वे चुनाव, राजनीति, खेती-बाड़ी, खेल, फिल्म आदि पर धारा-प्रवाह बोले जा रहे थे। श्रोता मंत्रमुग्ध बैठे सुन रहे थे। उनके इस एकालाप के बीच ही हम खाना खाने बैठ गए।

राधेश्याम जी खाना देखते ही बोले “भैया, स्लाद वगैरह तो लाए ही नहीं।”

गाँव में रात को ऐसी चीज़ें भला कहाँ उपलब्ध होती हैं, फिर भी बेचारों ने जैसे-तैसे फटाफट इंतज़ाम कर दिया। सलाद आते ही उनकी दूसरी फरमाइश आ गई “भैया, अचार और हरी मिर्च भी ले आते।” फिर से एक लड़के को दौड़ाया गया। उनकी हरकतों पर हम शर्मिंदा थे, परंतु वे बेफ़िक्र थे। मानो पीठासीन अधिकारी के बजाय वे किसी रियासत के नवाब हों और अपनी सेवा करवाने का उन्हें नैतिक व कानूनी अधिकार प्राप्त हो।

खाने के बाद हम बचा हुआ कार्य निपटाने की तैयारी में थे, किंतु राधेश्याम जी की मंशा कुछ और ही थी “मुझे अब घर जाना होगा। मेरी माँ की तबियत ज़्यादा खराब है।”

हमारे साथ-साथ सुरक्षाकर्मियों ने भी उन्हें आश्चर्य से घूरा। पीठासीन अधिकारी को रात में पोलिंग बूथ छोड़ने की इजाज़त ही नहीं होती। ठीक-ठाक चुनाव निपटाने की चिंता में डूबे किसी अधिकारी को ऐसा खयाल तक भी नहीं आता और ये जनाब बिना कोई कामकाज निपटाए घर जाने की फ़िराक में थे।

हमने विरोध किया तो बोले “यार, मजबूरी भी

तो कोई चीज़ होती है।”

कोई भी उनसे सहमत नहीं था। हमें संतुष्ट न होते देख तसल्ली देने लगे, “आप ख्वाहमख्वाह टेंशन ले रहे हैं। देखना सुबह चार बजे आकर मैं ही आपको जगाऊँगा। जब तक आप नहा-धोकर तैयार होंगे, मैं मॉक-पोल के सारे कागज़ तैयार कर चुका होऊँगा। अपनी ज़िम्मेदारी बखूबी समझता हूँ।”

राधेश्याम जी के अब तक के व्यवहार को देखते हुए उन पर यकीन करना मुश्किल था, किंतु उन्हें रोकना हमारे अधिकार क्षेत्र से बाहर था। दूसरा, हो सकता है उनकी माताजी सचमुच में ही बीमार हों, वरना यूँ रात में पन्द्रह किलोमीटर दूर जाने का रिस्क कौन उठाएगा?

हालाँकि संदीप चौधरी हमसे इत्तेफ़ाक नहीं रखता था, “यार, हम एक झूठे और चालू आदमी के साथ फँस गए हैं। मुझे नहीं लगता यह कल भी ठीक-ठाक चुनाव करवा पाएगा!”

किसी ने उनका समर्थन नहीं किया, परन्तु सभी को कल की चिंता सताने लगी थी।

रात को सोने के लिए सबकी चारपाइयाँ एक बड़े कमरे में बिछा दी गई थीं। मुझे तो पहले ही अनजान जगह पर नींद नहीं आती, दूसरा रही-सही कसर एक सिपाही के खर्चों ने पूरी कर दी। उसकी कभी हेलीकॉप्टर उड़ाने और कभी ट्रेन की सीटी बजाने की आवाज़ों के बीच रात दो बजे के बाद ही मेरी आँख लगी होगी। सुबह पौने पाँच बजे अलार्म कर्कश आवाज़ में बज उठा। मेरा टंड और सुस्ती में बिल्कुल भी उठने का मन नहीं था, किंतु चुनावी ड्यूटी में रियायत की कोई गुंजाइश ही नहीं होती।

पोलिंग एजेंट निर्धारित समयानुसार ठीक छह बजे पहुँच चुके थे। हम भी नहा-धोकर तैयार थे, किंतु हमारे पी.ओ. साहब नदारद थे। हम बार-बार उन्हें फोन मिलाते, किंतु वे उठा ही नहीं रहे थे। आखिर वही हुआ जिसका अंदेशा था। हमारी बेबसी को एजेंट्स भी सवालिया नज़रों से घूर रहे थे। कोई

चारा न चलता देख अंततः सुरेश कुमार जी ने ही मॉक-पोल की कमान संभाल ली। यह एजेंटों को आश्वस्त करने के लिए किया जाता है कि मशीन ठीक-ठाक काम कर रही है और इसमें पहले से कोई वोट मौजूद नहीं है। मॉक-पोल निपटाकर मशीन को सील किया जाना था, जिसे सिर्फ़ पीठासीन अधिकारी ही कर सकता था; क्योंकि उनके कई जगह दस्तखत होने थे। वक्त मुट्ठी से रेत की भाँति फिसलता जा रहा था और राधेश्याम जी का दूर-दूर भी नामोनिशान न था। फोन तो वे उठा ही नहीं रहे थे। पौने सात बजे ही बाहर उत्साहित मतदाताओं की लाइन लगनी शुरू हो गई। इनमें ज़्यादातर ऐसे शराबी थे, जिन्हें पिछले दो महीने से सिर्फ़ वोट के लिए ही पिलाई जा रही थी। उम्मीदवार उन्हें सुबह-सुबह निपटाकर कम से कम आज का खर्च और दिनभर चलने वाले ड्रामे से मुक्ति चाहते थे।

सात बजते ही सबने शोर मचाना शुरू कर दिया। किसी को सुबह-सुबह वोट डालकर कहीं दूर जाना था, तो किसी की कोई अन्य मजबूरी थी। मानो सभी ज़रूरी काम उन्हें अभी याद आ गए थे। समय होने पर भी वोटिंग शुरू न होने पर वे बेहद क्रोधित और लड़ने के मूड में थे। ऊपर से यह एक संवेदनशील बूथ था और पिछले चुनाव में पोलिंग पार्टी को पुलिस ने बड़ी मुश्किल से पिटने से बचाया था। इस वजह से हम अत्यंत डरे और घबराए हुए थे। हमारे हाथ-पाँव फूले थे और चेहरों पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

ऐसे में उच्च अधिकारियों को बतलाने के अलावा हमारे पास दूसरा कोई विकल्प ही नहीं था। वैसे तो उन्हें पहले ही अवगत करा देना चाहिए था, किन्तु न बतलाए जाने का भी एक ख़ास कारण था। प्रशासन चुनाव को बेहद गंभीरता से लेता है। अधिकारी राधेश्याम जी के खिलाफ़ तुरंत कार्यवाही करते हुए उन्हें सस्पेंड भी कर सकते थे। हो सकता है वे सचमुच ही किसी मुसीबत में फँस गए हों और बाद में हमें अफ़सोस हो।



अंततः धर्म—संकट से मुक्त होकर जैसे ही सुरेश कुमार जी ने सुपरवाइज़र को फोन मिलाया, राधेश्याम जी अचानक प्रकट हो गए। मानो कहीं अदृश्य में छिपे इसी क्षण की ही प्रतीक्षा कर रहे हों।

आते ही बोले “सॉरी, माँ की तबियत रात अचानक ज़्यादा बिगड़ गई थी। अभी—अभी उन्हें अस्पताल में दाखिल करवाकर आया हूँ। जल्दबाज़ी में मोबाइल घर ही छूट गया था। पता नहीं ज़िंदा भी बचेंगी या नहीं!”

सुनकर हमारी नाराज़गी काफ़ी हद तक दूर हो गई थी। ग्रामीण तो उलटा गुस्सा छोड़कर उनसे सहानुभूति जताने लगे। सिर्फ़ संदीप ही मंद—मंद मुस्करा रहा था।

फटाफट मशीनों को सील करके बची हुई कागज़ी कार्यवाही पूरी की गई। साढ़े सात बजे तक ही मतदान शुरू हो पाया।

चुनाव—प्रक्रिया काफ़ी लंबी और उलझी हुई थी, क्योंकि एक मतदाता द्वारा चार मत डाले जा रहे थे। सर्वप्रथम मतदाता का वोटर लिस्ट में नाम ढूँढना, वोटर कार्ड चेक करना, रजिस्टर में दस्तखत या अंगूठा लगवाकर वोटर स्लिप जारी करना, उँगली पर स्याही लगाना, पंच के मतपत्र पर भी दस्तखत या अंगूठा लगवाना और फाड़कर देना, स्याही लगाकर मोहर थमाना, सरपंच के वोट के लिए कंट्रोल यूनिट का बटन दबाना जैसे अनेक काम थे। इतना कुछ करने पर भी सिर्फ़ दो ही वोट डालते थे और बाकी बचे दो के लिए भी कमोबेश यही प्रक्रिया दोहराई जाती थी। मतदाताओं में काफ़ी अनपढ़, पर्दा करनेवाली औरतें, बुजुर्ग और शराबी थे। उन्हें बार—बार समझाना पड़ता, जिससे वोटिंग में कुछ ज़्यादा ही वक्त लग रहा था। कहने को तो सात सौ ही वोटर थे, किंतु वास्तव में अटार्डिस सौ वोट पोल होने थे। मतदाताओं की लम्बी कतार रोककर हमने फटाफट दोपहर का खाना खाया और शाम पाँच बजे तक हमारी गर्दन भी सीधी नहीं हुई थी।

हम चारों ने अपनी—अपनी सुविधानुसार काम बाँट रखा था। राधेश्याम जी पर कागज़ पूरे करने की ज़िम्मेदारी थी, किंतु वे किसी खूटे से बंधकर बैठने वाले प्राणी न थे। काम निपटाने के बजाय वे भीतर—बाहर डोलते हुए ग्रामीणों से लगातार बतियाए जा रहे थे। वोटिंग के दौरान एजेंटों के बीच तीखी झड़पें भी हो रही थीं। राधेश्याम जी न सिर्फ़ उन्हें समझाते, बल्कि ग्रामीण भाईचारे पर एक अच्छा—खासा भाषण भी पिला देते। सुन—सुनकर हमारे साथ—साथ एजेंट भी पक चुके थे। कई बार समझाते—समझाते राधेश्याम जी उनसे लड़ भी पड़ते। हम अपना काम छोड़कर बीच—बचाव करते और उन्हें चुपके से संवेदनशील बूथ होने की दुहाई देते, परन्तु वे अपने बातूनीपन के हाथों मजबूर थे। कागज़ पूरा करने की याद दिलाने पर लापरवाही से कहते — “अरे, निपटा लूँगा! क्यों टेंशन लेते हो?”

शाम पाँच बजे मतदान समाप्त हो गया। एजेंटों को छोड़कर बाकी सभी को सुरक्षाकर्मियों ने चारदीवारी से बाहर का रास्ता दिखा दिया। हम फटाफट काम निपटाने में लग गए। सबसे पहले ब्लॉक—समिति की मतपेटी और ज़िला परिषद की वोटिंग मशीन को सील किया गया, क्योंकि उनकी मतगणना बाद में कहीं और की जानी थी। फिर पंच की मतपेटी को उलटा कर उसमें से मतपत्र बाहर निकाले। उन्हें वार्ड के अनुसार अलग—अलग करके गिना और पंचों के परिणाम घोषित कर दिए। उसके बाद सरपंच की बारी आते ही एजेंटों की धड़कनें बढ़ गईं। उनके चेहरों पर चिंता व तनाव साफ़ झलकता था। मशीन ने दो मिनट में ही एक उम्मीदवार को चौदह मतों से विजयी घोषित करके अपना फैसला सुना दिया। विजेता पक्ष के एजेंट खुशी से उछलते हुए एक—दूसरे से हाथ मिलाने लगे, तो हारे हुए के चेहरों पर मुर्दनी छा गई। राधेश्याम जी ने नवनिर्वाचित पंचों व सरपंचों को बुलाकर जीत के सर्टिफिकेट थमा दिए। सरपंच ने सर्टिफिकेट लेते ही इनाम के तौर पर



पाँचों सदस्यों के लिए खुशी-खुशी पाँच हजार रुपये राधेश्याम जी को पकड़ा दिए।

परिणाम घोषित करते-करते सात बज गए थे। अब फटाफट बाकी काम निपटाकर हमें यहाँ से जल्द-से-जल्द रवाना होना था, परंतु कागज़ देखते ही सुरेश कुमार जी परेशान हो उठे। खफ़ा होकर बोले “सर, सभी फॉर्म खाली पड़े हैं! आखिर सुबह से आप क्या कर रहे हैं?”

वे हमेशा की भाँति निश्चित थे “मैं तो दिन-भर ग्रामीणों को शान्त करने में ही उलझा रहा, वरना उनके लड़ाई-झगड़े के बीच कभी भी इलेक्शन पूरा नहीं होने वाला था। कागज़ भी पूरे हो जाएँगे। क्यों टेंशन लेते हो?”

उनसे उलझने के बजाय हम फॉर्म भरने बैठ गए। न जाने कितने-कितने फॉर्म और लिफाफे थे। मॉक-पोल का सर्टिफिकेट, चुनाव के आरंभ और समापन का सर्टिफिकेट, मशीन और मतपेटी सील करने का सर्टिफिकेट, मशीन की बैटरी निकालने व ‘क्लोज़’ बटन बंद करने का सर्टिफिकेट। इतना ही नहीं पोलिंग एजेंटों से बैंक लोन लेते वक्त की भाँति जगह-जगह हस्ताक्षर लिए जाने थे। टेंडर वोट व चैलेंज वोट का लेखा-जोखा; पेपर सील, स्ट्रिप सील, स्पेशल टैग के अलग-अलग फॉर्म और लिफाफे आदि भी थे। इनमें से कुछ लिफाफे लाख से सील करने थे, कुछ गोंद से चिपकाने थे और कुछ खुले ही रखने थे। इसके अलावा हर दो घंटे बाद मतदान प्रतिशत, दिव्यांगों, स्त्री व पुरुष मतदाताओं की अलग-अलग संख्या, जीते-हारे उम्मीदवारों के मतों का लेखा-जोखा, जैसी सैकड़ों अन्य सूचनाएँ भी पी.ओ. डायरी में भरी जानी थी। बहुत से फॉर्मों का कहीं कोई उपयोग ही नहीं था; फिर भी उनके मौजूद होने का औचित्य समझ न आने से एक अलग ही परेशानी पैदा हो रही थी। इतने सारे कागज़ देखकर हमारे तो होश ही उड़ गए। उन्नीस सौ बावन के प्रथम चुनाव से शुरू हुए कागज़ तो अभी तक चल ही रहे थे, साथ में

वोटिंग मशीन की वजह से असंख्य दूसरे और नए भी उनमें शामिल हो गए थे। कुल मिलाकर मतपेटियों और मशीनों के कागज़ों का एक अजीब घालमेल था, जो किसी को भी परेशान कर सकता था। ऊपर से हमारे पीठासीन अधिकारी सुभान अल्लाह!

अभी हमने थोड़ा-सा काम ही निपटाया था कि बस आकर हॉर्न बजाने लगी। पिछले तीन गाँवों की पोलिंग पार्टियाँ अपना काम निपटाए उसमें बैठी थी। उन्हें पहुँचा देखकर हमारी घबराहट, बेचैनी और खीझ कई गुणा बढ़ गई थी। चारों तरफ़ कागज़ बिखरे पड़े थे और हाथ-पाँव फूलने की वजह से हमें कुछ सूझ ही नहीं रहा था। सुरक्षाकर्मियों से हमारी हालत छुपी न थी। हमारे कहे बिना ही वे बस में बैठे एक पीठासीन अधिकारी को मदद के लिए बुला लाए।

दूसरे पीठासीन अधिकारी को देखकर हमें राहत मिली, लेकिन वे एक-एक फॉर्म को देखते और हैरानी से पूछते “अरे अभी तक यह भी नहीं भरा?”

राधेश्याम जी बड़ी मासूमियत से पूछते “इसमें क्या भरा जाना था?”

थोड़ी देर बाद किसी अन्य कागज़ को देखकर कहने लगते “यार, इसे तो कल शाम ही भरकर सील कर देना चाहिए था!”

हमें अपने नकारापन पर शर्म आ रही थी।

अगले गाँवों में काम निपटाए, बस के इंतज़ार में बैठी पोलिंग पार्टियों के बार-बार फ़ोन आने लगे थे। हम ‘निकम्मों’ का इंतज़ार वे क्यों करें? मदद करने आए पी.ओ. ने सुझाव दिया “अभी तो आपको बहुत टाइम लगना है। आप अपना सामान समेट लें और बाकी काम वहीं बैठकर आराम से पूरा करें।”

उनसे सहमत होने के अलावा हमारे पास कोई और चारा ही नहीं था।

सुरेश कुमार जी का घर करतारपुर से चार किलोमीटर दूर था। उन्होंने राधेश्याम जी को पहले दिन से ही पक्का कर रखा था कि वे इधर से इधर ही चले जाएँगे। राधेश्याम जी ने भी उन्हें

खुशी-खुशी जाने की इजाजत दे दी, मानो उनका सारा काम निपट गया हो या उन्हें मालूम ही न हो कि सबसे मुश्किल काम तो सामान जमा करवाना ही होता है।

हमें परेशान देखकर उन्होंने अपना तकिया कलाम दोहराया “क्यों टेंशन लेते हो? सब निपट जाएगा। मैं हूँ ना!”

सुरेश कुमार जी विदा लेते-लेते बोले “सर, मेरे हिस्से के हजार रुपये?”

फटाफट काम निपटाने के चक्कर में अपना इनाम तो हम भूल ही गए थे। राधेश्याम जी लापरवाही से बोले “अरे वे! .....वे!.....वे तो मैंने उन्हें वापस भी कर दिए। हम किसी से बख्शीश क्यों लें? आखिर सरकार हमें इतनी तनखाह किसलिए देती है!”

सब उन्हें आश्चर्य और नाराजगी से घूरने लगे। वापस करने होते तो लिए ही क्यों थे? दूसरा, वे शाम से हमारे साथ ही थे, फिर वापस कब और कैसे कर दिए?

गेट पर खड़ी बस में बैठे कर्मचारी अधीर और बेचैन थे। वे हम पर जल्दी करने के लिए चिल्ला रहे थे। राधेश्याम जी से उलझने का समय नहीं था; फिर ‘बख्शीश’ के लिए उलझना भी क्या?

हमसे पहले ही कलेक्शन सेंटर, जो एक कॉलिज में बना था, में बहुत-सी पोलिंग पार्टियाँ पहुँच चुकी थीं। इससे पहले कि भीड़ और बढ़ जाए, बस में बैठी पार्टियाँ नीचे उतरते ही सामान जमा करवाने सरपट दौड़ पड़ी। उनकी देखा-देखी हम भी भागे, लेकिन कदम वहीं ठिठक गए। अपने कागज़ पूरे न होने का खयाल आते ही हमें ऐसे रोना आया, जैसे मोर अपने पोंव देखकर रोता है। न जाने कागज़ कब पूरे होंगे, हर पल बढ़ती जाती भीड़ के बीच कब जमा होंगे और हम कब घर जा पाएँगे? सुरेश कुमार जी, जिन्हें थोड़ा-बहुत काम आता था, हमें बीच मझधार में छोड़कर पहले ही जा चुके थे।

एक बार फिर से कागज़ों को पूरा करना था। हालाँकि और काम करने की हिम्मत अब बिल्कुल भी बची न थी। हम पिछले सोलह घंटों से ‘नॉनस्टॉप’ चुनावी ड्यूटी कर रहे थे। स्कूल में मात्र छह घंटे की ड्यूटी करने वालों को इतना अधिक काम करने की आदत ही नहीं थी। शरीर और दिमाग बुरी तरह थके थे। ऊपर से रात को ठीक से न सो पाने की वजह से आँखों में नींद भरी थी। मन करता था बिना कुछ खाए-पिए बस यहीं लेटकर सो जाएँ, परंतु सामान जमा करवाए बिना किसी भी सूरत छुटकारा न था। जल्द जमा होने की कोई संभावना भी न थी, जिससे राधेश्याम के प्रति हमारी खीझ और गुस्सा चरम पर पहुँच गया था। उन्हें एकाध खरी-खरी सुना भी दी थी।

वहाँ बिछी कालीन पर सामान रखकर राधेश्याम जी फॉर्म भरने लगे। भरकर वे संदीप और विनोद को थमाते। वे संबंधित लिफाफा ढूँढकर उसमें डाल देते और फिर मोमबत्ती से लाख गर्म करके उसे सील कर देते। हमारे आस-पास और भी पोलिंग पार्टियाँ बैठी अपना काम निपटा रही थीं। हरे कालीन पर जली मोमबत्तियाँ ऐसे लग रही थीं, मानो किसी ने अपने आँगन में दीवाली के सैकड़ों दिये एक साथ जला दिए हों। चुनाव सचमुच ही लोकतंत्र पर्व मालूम हो रहा था।

थोड़ी देर बाद मालूम हुआ कि आसपास ज्यादातर वे पार्टियाँ थीं, जिनके कागज़ों में जमा करवाते वक्त छोटी-मोटी कमी निकल आई थी। वे उन्हें फटाफट ठीक करके लिफाफे दोबारा सील कर रहे थे, ताकि जल्दी जमा करवा सकें। हम तो अभी एक बार भी नहीं गए थे। राधेश्याम जी को देखते हुए कमियाँ निकलनी लाज़िमी थीं। हो सकता है सबसे ज्यादा हमारी ही हों, जिससे सबसे आखिर में निपटें। सोचकर ही घबराहट और खीझ होने लगती। आज तो बहुत बुरे फँसे।

राधेश्याम जी बार-बार किसी न किसी फॉर्म पर अटक जाते। उन्हें न तो कुछ आता था और

न ही उन्होंने सीखने की कोई कोशिश की थी। दूसरा उन्हें न आने की कोई फिक्र—चिंता, शर्म या अफसोस भी नहीं था। मैं आसपास किसी से पूछकर उन्हें बतलाता। मेरे बार—बार पूछने से पार्टियाँ तंग आकर मुझे जवाब ही नहीं दे रही थीं, क्योंकि सबको अपनी—अपनी पड़ी थी। इसलिए अब मैं आसपास को छोड़कर दूर बैठे एक जानकार पी.ओ. से पूछने चला गया, जिसमें कुछ ज़्यादा ही समय लग गया था।

मैं वापस लौटा तो राधेश्याम जी मौजूद नहीं थे। संदीप चौधरी और विनोद सेठी काफी चिंतित और परेशान दिखाई दिए। उनका कागजों की तरफ़ कोई ध्यान ही नहीं था। मैंने घबराकर वजह जाननी चाही तो बोले “एक बुरी खबर है! अभी—अभी राधेश्याम जी की माँ की मृत्यु हो गई!”

अप्रत्याशित खबर सुनकर मुझे झटका लगा। राधेश्याम जी के लिए दुख और चिंता हुई।

संदीप चौधरी एक अलग ही पश्चाताप में डूबा था “यार, मैं कल से ख्वाहमख्वाह उन पर शक कर रहा था। हम भी कई बार किसी को कितना गलत समझ बैठते हैं।”

तभी राधेश्याम जी वापस आए। वे चिंतित और दुखी दिखाई दिए। मैं उनकी माता की मौत पर दुख व्यक्त करने के लिए सही शब्द तलाशने लगा, परन्तु तुरंत कुछ सूझ ही नहीं रहा था। राधेश्याम जी की उम्र देखते हुए बेशक बूढ़ी होंगी, लेकिन माँ तो आखिर माँ ही होती है।

मेरे कुछ कहने से पहले ही राधेश्याम जी बोले “मैंने अधिकारियों से बातचीत कर ली है। आप फटाफट सामान समेटकर मेरे पीछे—पीछे आओ।”

दुख की इस घड़ी में भी राधेश्याम जी की हिम्मत देखकर उन्हें सलाम करने को जी चाहा। वरना उनके चले जाने के बाद हमें सामान जमा करवाने के लिए दर—दर भटकना पड़ता। एक पल में ही हमने जैसे उनकी पिछली सभी गलतियों को माफ़ कर दिया था।

अपने सिरों पर मशीनें व बैल्ट बक्से उड़ाए और

कंधों पर अपने बैग टाँगे हम भीड़ में घुस गए। अब तक दूरदराज के इलाकों की पोलिंग पार्टियाँ पहुँचने से तीनों काउंटर पर भारी भीड़ ऐसे टूट पड़ी थी, जैसे मरुस्थल में मीलों भटकने के बाद अचानक उन्हें कोई नखलिस्तान दिखाई पड़ गया हो। सामान लेने वाले भी अजीब नौसिखिये थे, जिन्हें खुद ही स्पष्ट नहीं था कि क्या—क्या चेक करके लेना है? वे बार—बार उठकर दूसरे काउंटर पर पूछने जाते, जिससे लाइन आगे ही न सरकती थी। घंटों लाइनों में खड़े लोगों के सब्र का पैमाना छलक गया। आगे बढ़ने के लिए अब वहाँ धक्का—मुक्की और हो—हल्ला मच गया था। कई तो आपस में गाली—गलौज और हाथापाई पर भी उतर आए थे। पढ़े—लिखे, नौकरी—पेशा और तथाकथित ‘समझदार’ लोगों को अनपढ़ और जाहिलों की भाँति पेश आते देखकर आश्चर्य और दुख हुआ। प्रशासन भी कम कसूरवार न था। बेहतर व्यवस्था के उसके तमाम दावे एक बार फिर धरे के धरे रह गए थे। इन्हीं वजहों से तंग आकर ही कर्मचारी सिफ़ारिशों और झूठे मेडिकल सर्टिफ़िकेट के सहारे चुनावी ड्यूटी कटवा लेते हैं। सिर्फ़ हम जैसे बिना सिफ़ारिशी ही फँसते हैं!

हमारे यूँ आगे बढ़ने पर भीड़ ने कड़ा एतराज जताया, किंतु राधेश्याम जी के पीछे—पीछे भीड़ को चीरते हुए हम आगे बढ़ रहे थे। अंततः सब ने शोर मचाकर हमारा रास्ता रोक लिया; जैसे जानना चाहते हों कि जल्दी जमा करवाने का तुम्हारे हाथ ऐसा कौन—सा अलादीन का चिराग़ लग गया है?

तभी सामान लेने वाले एक कर्मचारी ने चिल्लाकर उनकी जिज्ञासा शांत की “प्लीज़, इन्हें आगे आने दीजिए। इनके परिवार में डैथ हो गई है।”

न चाहते हुए भी हमारे लिए जगह बनाई गई। आगे बढ़कर राधेश्याम जी ने लिफ़ाफ़े और हमने मशीनें व मतपेटियाँ उन्हें थमाईं। सिर से भारी बक्सा उतरते ही मुझे राहत महसूस हुई। सामान अपने नज़दीक रखवाकर लिफ़ाफ़े लेते हुए वही कर्मचारी

बड़ी आत्मीयता से पूछने लगा “मदर की डैथ कब हुई?”

राधेश्याम जी गंभीर और धीमी आवाज़ में बोले “सर, अभी एक घंटा पहले। आज सुबह ही अस्पताल में दाखिल करवाकर आया था। मन बड़ा दुखी है।”

बस में हमारे साथ आई पोलिंग पार्टियाँ पिछले डेढ़ घंटे से लाइन में खड़ी थीं। हमारी मदद करने आया पीठासीन अधिकारी भी उनमें शामिल था। चाहे कितनी भी बड़ी मजबूरी क्यों न हो, किंतु हमारा सबसे पहले सामान जमा करवाना उनसे जैसे बर्दाश्त ही नहीं हो रहा था।

लेकिन तभी वही कर्मचारी कहता सुनाई दिया, “सर, हमें आपसे पूरी हमदर्दी है, किंतु कागज़ तो पूरे होने ही चाहिए।”

राधेश्याम जी की माता के गुम में डूबे हम भूल ही गए थे कि अभी हमारे कागज़ भी पूरे नहीं हुए थे। अब क्या होगा? हमारी धड़कनें बढ़ गईं। राधेश्याम जी मिन्नतें करने लगे। हमने तमाम देवी-देवताओं को एक पल में ही याद कर डाला, लेकिन वह टस-से-मस न हुआ “सॉरी सर! आप उच्च अधिकारियों से बात कर लीजिए।”

राधेश्याम जी अभी भी गिड़गिड़ा रहे थे, जिससे पास बैठे दूसरे कर्मचारी को उन पर तरस आ गया “मुझे दिखाओ क्या दिक्कत है?”

उसने फॉर्म लेकर दो-तीन गलतियाँ खुद ही ठीक कर दीं। उस पल वह हमें किसी देवदूत की भाँति नज़र आया। बाकी गलतियाँ तो शायद सील किए हुए लिफाफों में छिप गई थीं। अन्य सामान

भी फटाफट जमा हो गया। रिलीविंग स्लिप हाथ में लेकर राधेश्याम जी ने उन्हें धन्यवाद दिया। सहसा हमें यकीन ही नहीं हुआ कि सामान सचमुच इतनी जल्दी जमा हो चुका था। हम चुपचाप भीड़ से बाहर निकल आए।

भीड़ का शोर, धक्का-मुक्की और गाली-गलौज पहले से कहीं ज़्यादा बढ़ गया था। व्यवस्था बनाने के लिए अब पुलिस को बुला लिया गया था। सुबह चार बजे तक भी पोलिंग पार्टियाँ नहीं निपटने वाली थी।

कई बार मनचाहा काम होने पर भी आप प्रसन्न नहीं हो पाते। ऐसा ही हमारे साथ भी हुआ था। हम बेशक इतनी ही जल्दी निपटना चाहते थे, परन्तु इस वजह और तरीके से बिलकुल भी नहीं! जल्दी घर जाते हुए हममें से कोई भी खुश नहीं हो पा रहा था।

भीड़ को पीछे छोड़ हम पार्किंग स्थल की तरफ अपनी बाइक उठाने चल पड़े। राधेश्याम जी गाड़ी में थे। हम उनके लिए परेशान और दुखी थे, किन्तु होनी को कौन टाल सकता है? इसलिए चाहकर भी कुछ नहीं कर सकते थे। जैसे ही वे गाड़ी लेकर हमारे नज़दीक आए, संदीप चौधरी ने हाथ से इशारा करके गाड़ी रुकवाई “सर, ऐसी हालत में आप अकेले कैसे जा पाएँगे? मैं ड्राइव करके आपको घर छोड़कर आता हूँ।”

हमें संदीप की दरियादिली अच्छी लगी थी।

लेकिन राधेश्याम जी ने हमें घूरा और फिर अचानक मुस्कराए “अरे, क्यों टेंशन लेते हो? माँ को मरे तो पाँच साल हो गए हैं!”

**brahamduttsharma8@gmail.com**

## जीवन—चक्र

— श्री धर्मेन्द्र कुमार सिंह  
भारत

नगर के सरस्वती शिशु मंदिर की कक्षा तृतीय में सारे बच्चे विह्वल होकर गीत गा रहे थे —

“कल की छुट्टी परसों आना,  
चना भुनाकर लेते आना,  
पंडित जी को देते आना।”

छुट्टी मात्र कल की नहीं थी, अपितु ग्रीष्मकालीन अवकाश था, दो मास का। अभी—अभी विद्यालय का चपरासी कक्षा में नोटिस लेकर आया था, जिसे अध्यापक ने पढ़कर सुनाया। अतः अध्यापक के जाने के पश्चात् समस्त विद्यार्थियों का समवेत स्वर में उपर्युक्त हर्षोल्लासपूर्ण गीत गान प्रारम्भ हुआ।

यूँ तो सभी बच्चे हर्षित थे, लेकिन सबसे ज्यादा उत्साहित था, एक विद्यार्थी ‘धर्मू’। इसे ग्रीष्मावकाश में अपने गाँव जाकर रहने से जो अतीव प्रसन्नता प्राप्त होती थी, वैसा किसी भोगी को इंद्रलोक में भी न मिले। यह प्रसन्नता अकारण नहीं थी। गाँव में उसकी माँ थी, जो खेत—खलिहान संभालती थी। वर्ष भर माँ से विलग रहने के बाद मिलने का बाल सुलभ मोह। खूब सारे बालसखा थे गाँव के। चाचा—ताऊ के बच्चे, जो दूर नगर में अध्ययनरत थे, वो भी गाँव आ जाया करते थे इस अवकाश में और यदि किसी का विवाह भी आन पड़ा इस बीच, फिर तो नाते रिश्तेदार भी आ के जम जाते महीने भर। उन दिनों परिवार बड़े होते थे, अतः प्रतिवर्ष किसी—न—किसी का विवाह पड़ ही जाता था। खूब सारे लोग और खूब धमा चौकड़ी हँसी—ठट्ठा। घर के बाहर बड़ा—सा खुला द्वार था और अन्दर दो आँगन, एक छोटा आँगन व एक बड़ा। यह द्वार वैसे तो खलिहान रखने, मड़ाई करने, गन्ने का रस पेरने इत्यादि के काम आता था, लेकिन ग्रीष्म ऋतु में

खलिहान के कार्य समाप्त हो जाते थे। तब यह बन जाता था बच्चों का क्रीड़ा मैदान। छोटे आँगन में वेदका थी, जिसके ऊपर विवाह मण्डप लगता था और बड़े आँगन में रात्रिकाल के वक्त औरतों व बच्चों के लिए चारपाइयाँ बिछ जातीं। उसी बड़े आँगन में एक कुआँ भी था, जो नहाने धोने के काम आता।

द्वार वाले मैदान के एक ओर विशाल नीम का वृक्ष था, जिसके नीचे चबूतरा बना था। चबूतरे के तीन ओर किनारे पर गाय, भैंस, बैल बाँधे जाते थे। ऊपर हौज बने थे, उन्हें भूसा—खाना परोसने के लिए। चबूतरे के ऊपर चारपाइयाँ पड़ी होती थीं। ग्रीष्म काल की पहली फुहार में जब मदमस्त पुरबिया बयार चलती और घर के अन्दर उमस होती, तो इस नीम की छाया का सुख पाँच—सितारा होटल से कहीं बेहतर हो जाता था। यहाँ चौपाल लगती थी गाँव की। ताश के फड बिछ जाते। दहला पकड़, बादशाह पकड़, कोट पीस, ट्वेंटी नाइन जैसे ताश के खेल की बाजियाँ चलती रहतीं, पूरी दोपहरी। कबड्डी की बदी—बदा होती चबूतरे के नीचे चौथी तरफ़, जिधर पशु नहीं बाँधे जाते थे। कोड़ा जमाल होता था “कोड़ा जमाल खाए, पीछे देखे मार खाए” और यदि नीम से जी भर जाए, तो उसी के बगल में एक बरगद का उतना ही विशाल वृक्ष था, जिसकी शाखाएँ व जटाएँ नीचे ज़मीन तक आती थीं। कहते हैं इस नीम व बरगद की आयु गाँव में किसी को ज्ञात न थी। कोई बोलता दो सौ वर्ष, कोई तीन सौ। बच्चे उन बरगद की जटाओं पर झूला झूलते थे। शाखाओं पर चढ़कर चिल्लोर खेलते थे। अब चूँकि ग्रीष्म ऋतु में धूप अत्यंत तीव्र होती थी, तो पेड़ों के नीचे ही रहा जा सकता था या खेला जा सकता था। हाँ संध्याकाल में बड़े मैदान

वाले खेल प्रारम्भ हो जाते, जैसे क्रिकेट, वालीबॉल, फुटबॉल, गुल्ली-डंडा, झाबर इत्यादि।

नीम व बरगद से भी जी भर जाए, तो बच्चों की टोली चल देती थी आम के बाग में। खोज शुरू होती थी पेड़ पर लदे आमों में से पके, पीले आम ढूँढ़कर निकालना। फिर उसे तोड़ना या पत्थर ढेला मारकर गिराना। गिरने के बाद आम की लूट और बंदरबाँट। उन्हीं आम के पेड़ों के मध्य कुछ जामुन के वृक्ष भी थे। गाँव में यह प्रचलन था कि जामुन का पेड़ सबके लिए खुला था। यानी किसी के पेड़ का फल कोई भी खा सकता था। सारे दिन बच्चों की टोली घूम-घूमकर हर बाग के जामुन के पेड़ों पर चढ़कर ताज़ा तुरंत का पका फल खाती थी। उस काले जामुन का जो स्वाद मिलता था, वो अवर्णनीय है। बड़े बूढ़े चिल्लाते रहते “धर्मू मत चढ़ो। जामुन के पेड़ की डाल कमजोर होती है। टूट जाएगी”। मगर धर्मू व अन्य बच्चे कहाँ सुनते।

पेड़ पर चढ़े दर्जनों बच्चे धम्म-धम्म नीचे कूदते, यदि भोंपू की आवाज़ सुनाई दे जाती। ये आवाज़ आती एक साइकिल सवार से, जो पीछे कैरियर पर लकड़ी के बक्से के अन्दर आइसक्रीम लेकर चलता था। यह आइसक्रीम रंगीन पानी में सिक्रीन डाल के जमाया हुआ बर्फ़ होता था, जिसके अन्दर एक लकड़ी की डंडी होती थी, पकड़ने के लिए। साधारण आइसक्रीम तीन पैसे व विशिष्ट वाली पाँच पैसे की मिलती थी। उस तपती दोपहरी में बच्चों को वो साधारण आइसक्रीम अमृत जैसी लगती थी। पैसे तो कोई लेकर चलता नहीं था, अतः ललचाई नज़रों से सारे बच्चे एक-दूसरे का मुँह देखते। तभी एक चतुर बच्चा ‘गप्पू’ जाकर दो किलो आम ले आता और उस बर्फ़ वाले से ‘बार्टर डील’ कर लेता पाँच आइसक्रीम के लिए। वो बच्चा पाँच आइसक्रीम पाकर विश्व का सबसे बड़ा शहंशाह बन जाता और सारे बच्चे उसके गुलाम। एक अदद आइसक्रीम के लिए उसकी हर बात मानने को तैयार।

आमों के पकने का समय आने पर उन्हें कच्चा

ही तोड़ लिया जाता और झुआ में भूसे के बीच रखकर, ऊपर से बोरा डालकर पैक कर दिया जाता था। झुआ बनता था अरहर के पौधे के तने से, जिसे करीने से बुनकर एक बड़े पात्र का आकार दे दिया जाता। इस पात्र से खेती का सामान जैसे भूसा इत्यादि की ढुलाई होती या पशुओं को चारा परोसा जाता था। इस पात्र में डले आम को पकने में हफ़्ते-दस दिन लग ही जाते थे, लेकिन धर्मू को इतना धैर्य कहाँ था। चार-पाँच दिन पश्चात् ही वो चुपके से उस पात्र वाले कक्ष में प्रवेश कर जाता था, भरी दोपहरी में जब घर की औरतें लू की वजह से सो रही होती थीं। आराम से भर पेट आम खाता, थोड़े कम पके ही सही। गुठली और छिलके उसी झुआ में वापस डाल चुपके से निकल लेता। समय पूर्ण होने पर माँ जब पात्र खोलती, तो आधे आम व आधी गुठलियाँ निकालतीं।

अब ऐसा सुख धर्मू को कहाँ मिलता नगर में। वहाँ तो घर से बाहर निकलते ही पक्की सड़क और उसपर चलते वाहन। एक बार घर में ऐसे ही खेलते हुए गेंद लेने बाहर भागा, तो साइकिल से टकरा गया। दूसरी बार गया, तो रिक्षे से। भला हो उस ज़माने में लोगों के पास बड़ी गाड़ियाँ क्रय शक्ति के बाहर थीं, वरना टकराने का अंजाम गंभीर होता। नगर में न तो कोई पेड़, बाग-बगीचे, न ही गाँव के बाल गोपाल। ज़्यादा लोग मोहल्ले में उसे जानते नहीं थे और मोहल्ले के बाहर तो कोई भी नहीं। जबकि गाँव का हर घर उसे या उसके परिवार को जानता था। जेठ की दोपहरी में आम के बाग में घूमते हुए प्यास लगने पर किसी के भी घर पहुँच जाते और वो लोग सभी बच्चों को चुल्लू में पानी पिला देते थे। इसलिए धर्मू को नगर में रहना फूटी आँख नहीं सुहाता था। जब भी मौका मिलता, हर अवकाश में पिता के साथ गाँव भाग लेता और वापस आने के वक्त माँ से लिपटकर रोता पीटता नगर न जाने के लिए। माँ का हृदय विदीर्ण हो जाता। कहती चलो ठीक है “मैं कल बाबूलाल के साथ



भिजवा दूँगी”। मगर पिता इस मामले में बहुत ही अनुशासन पसन्द। एक भी विद्यालय का पाठ नहीं छूटना चाहिए, बच्चे के अच्छे भविष्य के लिए।

समय का पहिया घूमता गया। धर्मू बड़ा हुआ। प्राथमिक पाठशाला से माध्यमिक में गया और फिर उच्च-माध्यमिक। पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ता। हिंदी फ़िल्में देखता। क्रिकेट कमेंटरी सुनता। एक बार उसे महानगर प्रयाग जाने का अवसर मिला, तो बड़े महानगर की चकाचौंध से प्रभावित हुआ। चौड़ी सड़कें, रात में रोशन जगमगाता सिविल लाइन। साथी विद्यार्थियों से सुना था दिल्ली, बंबई जैसे महानगर और भी ज़्यादा चमकीले व आकर्षण के केंद्र हैं। किसी सहपाठी ने कहा पेरिस में शीशे की सड़कें हैं। तो दूसरे ने बोला वेनिस में पानी की सड़कें हैं। ये सब सुनकर धर्मू किसी कल्पित सपनों की दूसरी दुनिया में पहुँच जाता और सोचता मैं भी किस तरह उन सब बड़े स्थानों को देखूँ। समय बदला, वो बड़ा होता गया और उसकी सोच भी बदलती गई। गाँव का आकर्षण कम होता गया। नगरीय आकर्षण बढ़ता गया। ग्रामवासी उसे गँवार पिछड़े लगने लगे। महानगरीय लोग विकासशील व संभ्रांत लगे। गाँव की भाषा अवधी त्याग, उसने हिंदी बोलना शुरू किया। कालान्तर में हिंदी भी पिछड़ी लगी और उसने अंग्रेजी में अपना भविष्य ढूँढना प्रारम्भ किया। तीव्र इच्छा जगी कैसे और किस तरह शीघ्रातिशीघ्र मैं भी महानगरों की राह पकड़ूँ और यदि हो सके तो उससे भी आगे विदेश की।

जहाँ चाह वहाँ राह। धर्मू अभियंत्रण (इंजीनियरिंग) महाविद्यालय में प्रवेश पा गया, जो उस समय अत्यंत प्रतिष्ठित माने जाते थे। पूरे प्रदेश में मात्र आधे दर्जन संस्थान थे और उनमें प्रवेश पाने के लिए कठिन संग्राम होता था, प्रतिभावान विद्यार्थियों के बीच। इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम उत्तीर्ण करने के पश्चात् नौकरी मिल गई। जीवन के अभीष्ट साधन व भोग-विलास की सारी सुख-सुविधाएँ उसे शनैः शनैः प्राप्त होती गई। क्लब, स्वीमिंग पूल,

टेनिस, बिलिअर्ड, डांस फ़्लोर, देर रात की पार्टियाँ, मोटर साइकिल, कार इत्यादि सभी कुछ। दिल्ली में गृहस्थी जमाई, घर क्रय किया। विदेशों में कई दौरे लगे। यूरोप, जापान जैसे विकसित देशों को करीब से देखा, परखा। कई देशों में लंबा प्रवास भी हुआ। दो दशक निकल गए, इसी भागमभाग में। काफी पैसा कमाया, सारे भौतिक साधन इकट्ठा किए, लेकिन कहते हैं कि हर यात्रा का एक अंत होता है। धीरे-धीरे उसे यह जीवन नीरस लगने लगा।

सुबह तड़के घर से निकलता और दिल्ली महानगर की सड़कों पर जाम में जूझता हुआ डेढ़ घंटे में ऑफिस। यही होता वापसी में। सूर्यदेव के दर्शन न होते। कैल्शियम व विटामिन-डी की कमी से अस्थि व जोड़ों के रोग हो चले। प्लास्टिक के पैकेट के दूध में लोगों ने तरह-तरह की खामियाँ निकालनी शुरू कीं।

धर्मू कहता “हमारे गाँव में गाय रोज़ दस लीटर शुद्ध दूध देती है। मिलावट का नाम नहीं। लेकिन कोई पीने वाला नहीं है और यहाँ हम सिंथेटिक दूध पीकर मर रहे हैं। पुरखों ने कई बीघे ज़मीन हड़डी तोड़ मेहनत से कमा कर हमारे लिए रख छोड़ी और हम हैं कि यहाँ महानगर में फ़्लैट खरीदकर इकट्ठा कर रहे हैं। जब हमने अपने पुरखों की छोड़ी ज़मीन नहीं प्रयोग की, तो हमारी आने वाली पीढ़ियाँ हमारी उपार्जित संपत्ति का उपयोग भला क्यों करेंगी?”

महानगरों में लोगों की भीड़ तो बहुत ज़्यादा, लेकिन सब अनजान और अपनी-अपनी छोटी-सी दुनिया में मग्न। विदेशों में तो हालत और भी ज़्यादा नाजुक। कार्यालय से आकर घर से बाहर कदम रखता सांध्य-भ्रमण के लिए, तो सारे मार्ग सुनसान। वहाँ पैदल चलने का रिवाज़ ही न था। न कोई बोलने वाला, न बात करने वाला। फ़ेसबुक व वाट्सएप्प की आभासी दुनिया में व्यस्त हुआ। पाँच हजार मित्र बन गए। रचनात्मक कहानियों व फ़ोटो पर सैकड़ों लाइक्स व कमेंट आते। कुछ वर्ष यह सब अच्छा लगा, लेकिन फिर धीरे-धीरे



वास्तविकता अपने पर्व उधाड़ती चली गई। यह सब एक दिवास्वप्न लगने लगा। स्वप्न समाप्त, आँखें खुलीं, तो सब कुछ गायब। न कोई भौतिक क्रियाकलाप न मेल-मिलाप। आँखें अलग से खराब होतीं दिन भर मोबाइल पर गड़ाने से।

धर्मू की अब इच्छा हो चली अपने वही गाँव वाले बचपन के दिन जीने की। पत्नी से कहता “बेकार में इतना बड़ा घर बनवा लिया दिल्ली में। क्या करना है अब वहाँ रहकर सेवानिवृत्ति के पश्चात्? चालीस वर्ष नौकरी कर ली, कितना करूँगा? और यदि करना भी चाहूँ, तो क्या स्वास्थ्य इसकी अनुमति देगा? विश्व का सर्वाधिक प्रदूषित महानगर है। दीवाली के आसपास सात सौ का आँकड़ा पार कर जाता है प्रदूषण-स्तर। गाँव देहात में नब्बे वर्ष जी सकने वाला धर्मू इस महानगर में सत्तर भी नहीं पहुँच पाएगा। मैं तो अब गाँव ही जाऊँगा। वहाँ नीम के नीचे शुद्ध ऑक्सीजन का सेवन करूँगा। लोगों के साथ दहला पकड़ खेलेँगा। गाय का शुद्ध दूध पीऊँगा। अपने खेत का बिना यूरिया वाला अनाज खाऊँगा। सीधे पेड़ की डाल से तोड़ आम, अमरुद, जामुन खाने का तो जैसे स्वाद ही भूल गया हूँ। गाँव की चौखट से निकल किसी भी तरफ़ चल दूँगा। किसी के भी दरवाज़े पर बैठ जाऊँगा, वहीं लग जाएगी चौपाल। हर कोई तो जानता है वहाँ हमें और हमारे खानदान को। रामलीला व दशहरे का मेला देखूँगा। माघ महीने में कुम्भ मेला में एक महीने का कल्पवास करूँगा। बचपन वाले सारे बाल सखाओं को एकत्र करके फिर से एक फौज बनाऊँगा। अब मैं वहीं गाँव में एक घर बनवाऊँगा।”

पत्नी ने कहा “मुझे नहीं रहना वहाँ। तुम्हें रहना है तो घर बनवाने की क्या ज़रूरत है। एक कमरा तो है ही हमारा अपने पुश्तैनी घर में। जाओ कुछ दिन रहकर देखो। यदि अच्छा लगे तो फिर घर भी बनवा लेना”।

धर्मू — “अच्छा क्यों नहीं लगेगा? वहाँ की मिट्टी और हवा में हमारे पुरखों की सम्मोहनकारी

सुगंध है। बहुत पहले मैं वहीं अपना बचपन छोड़ आया हूँ। अब इस काया में उसी बचपन के किरदार को प्रविष्ट कराने की तीव्र अभिलाषा है।”

सेवानिवृत्ति पश्चात् धर्मू कुछ दिन अपने फण्ड इत्यादि को व्यवस्थित करने में लगे रहे। जब सब कुछ निपट गया, तो अपने गाँव गमन के लिए ट्रेन में विराजमान हुए। रात्रिकालीन यात्रा पश्चात् सुबह तड़के उतर गए प्लेटफॉर्म पर। भतीजा वहाँ पहले से ही स्वागत में कार लिए खड़ा था। उन्हें याद आया अपना बचपन। कैसे इसी स्टेशन पर लोगों को लेने के लिए हमारी पुरानी बैलगाड़ी आया करती थी। एक कि.मी. पक्की सड़क छोड़ने के पश्चात् कच्ची सड़क जाती थी एक और कि.मी. घर तक। उस सड़क में कुछ जगह गड्ढों में पानी भर जाता था, तो धर्मू भी कई अन्य लोगों के साथ बैलगाड़ी के पहिये को घुमाने के लिए जोर लगाता हुआ चिल्लाता था “इत्ती बित्ती भईसा, जोर लगा के हईसा।”

और कुछ ज़्यादा सोच पाता कि कार घर के दरवाज़े पर आकर रुकी। जिस रास्ते को तय करने में बैलगाड़ी घंटे लगाती थी, वह दो मिनट में सर्र से उड़ गया। पूरी सड़क पक्की और चौड़ी हो चुकी थी घर तक। धर्मू हर्षातिरेक से उछल पड़ा। गाँवों में भी विकास हो गया। अब रहने में भला क्या परेशानी है। उतरे और बैठ गए उसी नीम के नीचे चबूतरे पर। चारों तरफ़ जायज़ा लिया। कच्चे मकान सब गायब हो चुके थे और उनकी जगह या तो रिक्त थी या पक्के मकान आ गए थे। चबूतरे के चारों तरफ़ के जानवर गायब हो चुके थे। केवल एक गाय बंधी थी। पूछने पर पता लगा पूरे गाँव में एक भी बैल नहीं है। सारी खेती ट्रैक्टर से होती है। धर्मू थोड़ा चिंतित हुआ। स्वास्थ्योपयोगी ऑर्गेनिक अनाज उगाने के लिए गोबर की कम्पोस्ट खाद कैसे मिलेगी बिना बैलों के?

खैर कोई बात नहीं चलो चाचा, ताऊ के घर वालों से मिल लेते हैं। बड़े भाई ने बताया “कोई नहीं रहता अब”।

“क्यों कहाँ गए प्रधान जी? उन्होंने तो नौकरी छोड़ खेती-बाड़ी को ही अपना जीवन उद्देश्य मान इस मिट्टी से जुड़ गए थे।”

भाई — “वो भी बनारस में मकान बना के वहीं रहते हैं अब”।

धर्मू — “मेरे बालसखा बाबा और चुन्नन तो होंगे ही?”

“बाबा की रंजिश हो गयी थी तुकों से। उन्होंने बीच बाज़ार उन्हें बम से उड़ा दिया और चुन्नन की किडनी खराब होने से कई वर्ष पहले मौत हो गयी।”

धर्मू को झटका लगा “किडनी तो महानगरों की बीमारी है, यहाँ गाँव में कैसे सुनाई दे गयी?”

“अब गाँव में भी शुरगर और हृदयाघात के रोग आम हो चुके हैं। लोग बाग हल चलाते नहीं। सब कुछ मशीनों से होता है। कई लोग तो डॉक्टरों के कहने पर सुबह टहलते हुए मिल जाएँगे सड़क पर।”

आरंभिक निराशा के बाद भी धर्मू उठ खड़ा हुआ पूरे गाँव का जायज़ा लेने के लिए। अपनी निकर पहनी और चल पड़ा गाँव की पगडंडियों पर। कई जगह बच्चे दिखे। नौजवान भी दिखे। किसी ने धर्मू को न पहचाना, न ही धर्मू ने किसी को। काफी घंटे भर घूम टहलने के पश्चात् भी धर्मू को वह दृश्य अवलोकित न हुआ, जिसकी उसे तलाश थी। वो तलाश रहा था कबड्डी, चिल्होर, गुल्ली-डंडा, झाबर, कोड़ा-जमाल। चलो ये गाँव के खेल न सही कोई क्रिकेट, फुटबॉल ही दिख जाए। मगर निराशा ही हाथ लगी। हाँ कुछ जगह लोगबाग दिखे चाय-पान की दुकानों पर गप्प मारते हुए। ज्यादातर लोग अकेले दिखे मोबाइल पर आँखें गड़ाए हुए।

संध्याकाल में भाई के साथ अपने पुराने मंदिर कुटी के लिए चल पड़े। इस कुटी के प्रांगण में बचपनकाल में रामलीला होती थी। पीछे वृहद् मैदान में दशहरे का मेला लगता था। रावण मारने व जलाने के लिए राम-लक्ष्मण की पालकी यहीं से

उठती थी। मंदिर के पुजारी ने बताया, रामलीला तो काफी पहले ही बंद हो चुकी थी। राम पालकी भी अब यहाँ से नहीं उठती। मेला मैदान दूसरे ग्राम-समाज के भौगोलिक परिसीमन में चला गया। इस चक्कर में काफी झगड़ा फसाद हुआ वर्चस्व को लेकर कि मेला प्रबंधन व रावण-दहन किसके हाथ में होगा। इसलिए जिला प्रशासन ने रावण-दहन पर रोक लगा दी। बस मेला लगता है, रावण-दहन नहीं होता।

धर्मू बड़ा दुखी हुआ, फिर भी हिम्मत नहीं हारी। अगले दिन आम के बाग की राह पकड़ी। मौसम तो नहीं है आमों का, लेकिन पुराने दिनों की थोड़ी याद ताज़ा हो जाएगी। कैसे किस डाल पर हम भागते-फिरते थे, आम तोड़ने के लिए। वो नशपतिअहवा आम का पेड़, जिससे चुन्नन गिरे और जीवन भर लंगड़ाते फिरे, लेकिन आम के बाग में पहुँचकर सन्न रह गया। वो घना बाग, जहाँ दिन में भी ज़मीन पर प्रकाश नहीं आता था, जहाँ बंदरों के डर से हम बच्चे दिन में भी आने से डरते थे, अब खेत में परिवर्तित हो चुका था। सारे पेड़ काटे जा चुके थे। कुछ बागों में नाम मात्र के वृक्ष बचे थे। मायूस हो वापस घर आ गया।

दोपहर हो चली। सोचा चलो पम्पिंग सेट की टंकी में जाकर स्नान किया जाए। यह बचपन में गाँव का स्वीमिंगपूल हुआ करता था। कुएँ से लोहे की मोटी पाइप से पानी निकलकर पहले टंकी में भरता, फिर वहाँ से गिरकर खेत में जाता नालियों के जरिये, लेकिन वहाँ पहुँचकर देखा टंकी तो यथावत थी, लेकिन कुआँ और पाइप गायब हो गए थे। भाई ने बताया “अत्याधिक जल दोहन की वजह से भूजलस्तर नीचे गिरता चला गया। सारे कुएँ सूख गए। चाँपाकल बेअसर हो गए। सभी लोगों ने सबमर्सिबिल पम्प लगवा लिए। इसमें एक पाइप डाली जाती है, काफी गहरी और वाटर पम्प उसके अन्दर काफी नीचे होता है, जलस्तर के समीप ही। पाइप से सीधे खेतों में पानी पहुँचाया जाता है। टंकी

में संचित करने की आवश्यकता ही नहीं है।”

धर्मू अब काफी निराश हो चुका था। घर आकर अपने कक्ष में गया और मोबाइल निकाल लिया। सोचा चलो आधुनिकता वाली ज़िन्दगी ही जी जाए। फ़ेसबुक और व्हाट्सएप्प खोला, लेकिन डाटा ही नहीं चल रहा था। बाहर आया द्वार पर। वहाँ भी सिग्नल न मिला। भाई ने बताया दूर मंदिर पर जाना पड़ेगा तब चलेगा। धर्मू ने कहा “आप वाई-फ़ाई क्यों नहीं लगवाते?”

भाई — “लैंडलाइन सबने कटवा दी है। वैसे भी यहाँ बहुत निम्न गति मिलती है वाई-फ़ाई पर। उसका लगाना, न लगाना एक बराबर है। ऑप्टिकल फ़ाइबर से वाई-फ़ाई देने वाला कोई है नहीं यहाँ।”

धर्मू ने अपना सर पटक लिया। अरे ये कहाँ पहुँच गया मैं? ये कौन-सी जगह है? यहाँ न आधुनिकता है, न प्राचीनता। पुराने जान-पहचान वाले काफी लोग स्वर्गवासी हो गए। नए नौजवान नगरों को पलायन कर गए, बेहतर भविष्य की तलाश में। जो कुछ बचे-खुचे हैं, वो हमें पहचानते ही नहीं। पुरानी बचपन वाली संस्कृति तो रही नहीं। नगरों की आधुनिकता भी नदारद है। यह परिवर्तित ग्राम अपनी अस्मिता और नए पहचान की तलाश में भटक गया है शायद कहीं। ऐसे ही सभी लोग यदि

नगरों को पलायन करते गए, तो खेतों में फ़सल कौन उगाएगा? क्या हम मशीनों को ही खाकर पेट भरेंगे? घर के घर सभी खाली पड़े हैं गाँवों में। हमारे अपने ही घर में अगली पीढ़ी में कोई रहने वाला न बचेगा। हमारे बच्चों को तो ये भी नहीं पता उनके खेत कितने हैं, कहाँ हैं, उनकी सीमा कहाँ तक है। परिस्थिति बहुत ही चिंतनीय और विकट है। स्वयं धर्मू का अपना पुत्र गाँव तो क्या, देश ही छोड़ निकल गया। गहन विचारों में मग्न धर्मू खेतों के मध्य पगड़ंडियों पर चलते कहीं दूर निकल गया। तभी मोबाइल की घंटी बजी। उठाने पर पत्नी की आवाज़ उधर से आई।

“अजी सुनते हो। हमारी सोसायटी के वरिष्ठ-नागरिकों का ग्रुप 15 दिन की पिकनिक यात्रा पर जा रहा है, कुलू-मनाली। मैंने भी अपना नाम दे दिया है। तुम तो इस बीच आओगे नहीं, फिर भी मैं फ़्लैट की चाबी बगल वाले अग्रवाल जी के यहाँ छोड़ जाऊँगी।”

धर्मू ने कहा “चाबी देने की कोई ज़रूरत नहीं है।”

“क्यों भला?”

धर्मू — “मैं भी साथ चलूँगा। कल वापस आ रहा हूँ।”

**dksinghdk@gmail.com**

## नज़राना

— श्रीमती भारती गोरे  
औरंगाबाद, भारत

“लड़कियाँ माँओं-सा मुकद्दर क्यों रखती हैं  
दिल सहारा आँख समंदर क्यों रखती हैं”

भक्ति इशरत आफ़री की ग़ज़ल पढ़ रही थी और मन में कौंध गई नज़राना। उसका मन बीस साल पीछे चला गया। अतीत की यादें भी कितनी अजीब होती हैं। कुछ रुलाती हैं, कुछ हँसाती हैं, कुछ

गुदगुदाती हैं। कुछ यादें ऐसी होती हैं, जिन्हें बार-बार याद करने को जी करता है, तो कुछ यादें ऐसी भी होती हैं, जिन्हें याद करने से जी चुराया जाता है। नज़राना की याद से भक्ति हमेशा जी चुराती आई है, लेकिन उसकी याद है कि बात-बेबात चली ही आती है। नज़राना कहाँ होगी, कैसी होगी, किस

हाल में होगी यह सोचकर भी भक्ति की रूढ़ काँप उठती है और उसका मन अपराध बोध से भर जाता है।

बीस साल बीत गए, ओह! बीस साल। कितना चाव था उन दिनों... कितने सपने... कितना जोश... अस्थायी नौकरी में भी कितना उत्साह। शायद अस्थायी दिनों में ही ज़्यादा समर्पण के साथ काम किया जाता है। अब चालीस की दहलीज़ पार करते-करते सब ठंडा हो चुका है। लेकिन नज़राना की याद अभी भी ताज़ा तरीन है। क्या हुआ होगा नज़राना के उस चाव का, उसके सपनों और उसके जोश का... गर्दन को झटका देकर भक्ति नज़राना की याद को झटकने की कोशिश करती है। एक नज़र घड़ी की ओर डालती है, तो चौंक जाती है। नज़राना के खयाल में एक घंटा बीत चुका था। उसे अगली क्लास में जाना था। ताबड़तोड़ उसने चॉक-डस्टर और किताब को समेटा और क्लास की ओर चल पड़ी। प्रथम वर्ष की क्लास। अभी-अभी प्लस टू का पड़ाव पार कर चुके बच्चों की खिलंदड़ और बचपने से भरी क्लास। यह क्लास भक्ति को हमेशा लुभाती है। कच्ची मिट्टी-से बच्चे... इन्हें जैसे चाहे ढाल लो। एम.ए. तक पहुँचते-पहुँचते बच्चे इतने पक्के हो चुके होते हैं कि उनमें किसी नई सोच या विचार को पैठाना बड़ा मुश्किल होता है। क्लास में जाते ही डेढ़ सौ बच्चों ने एक साथ उठकर 'नमस्ते मैम' कहा, तो भक्ति गदगद हो गई। भक्ति सोचने लगी, नज़राना भी उससे पहली बार मिली, तो प्रथम वर्ष की छात्रा थी। ओह! फिर से नज़राना... वैसे इतनी बड़ी क्लास में किसी एक बच्ची का इस कदर ज़हन में पैठ जाना, वाकई अजीब-सी बात है, लेकिन नज़राना थी ही ऐसी।

भक्ति को नज़राना ऐसे याद आने लगी, जैसे कल ही की बात हो। अकादमिक वर्ष की शुरुआत में जब वह क्लास में दाखिल हुई थी, पहली ही कतार में बैठी साँवली, दुबली-पतली लड़की ने उसका

ध्यान आकर्षित कर लिया था। वह लड़की बड़ी नियमित रूप से कक्षा में आती और पूरे मनोयोग से भक्ति की एक-एक बात सुनती, कोई महत्वपूर्ण बात हो तो लिख लेती। भक्ति को क्लास में चुटकुले सुनाने की आदत थी। वह लड़की क्लास में कहे गए चुटकुले का मर्म समझती और उसके गंभीर चेहरे पर हँसी की एक लकीर चमक जाती। इसी लड़की को भक्ति ने सिर झुकाकर आँसू पोंछते हुए देखा था, जब वह 'माँ पर नहीं लिख सकता कविता' पढ़ा रही थी। भक्ति अब इस चेहरे से भली-भाँति परिचित हो चुकी थी। इतनी छात्रप्रिय शिक्षक होने के बावजूद एक बार भक्ति को कुछ बच्चों ने नाराज़ होकर कहा था 'मैम आप तो नोट्स ही लिखवाकर नहीं देती।' गुस्सा हो गई थी वह! 'मैं पढ़ाती हूँ ... पीले पड़ चुके पन्ने नोट्स के तौर पर लिखवाकर देने वाली शिक्षक नहीं हूँ मैं' वह बोल गई थी। अब हँसी आती है। सोचती है, नई उम्र नया-नया जोश ... हाँ, तो नज़राना ... नज़राना उस समय भी उन बच्चों में शामिल नहीं थी जो नोट्स के लिए ख़फ़ा हो रहे थे।

लगभग एक तिहाई साल बीतने लगा था, लेकिन भक्ति अब भी उस साँवली लड़की का नाम नहीं जानती थी। मन अतीत में क्या चला गया, परत-दर-परत खुलने लगी और याद आया वह प्रसंग जिसने उस साँवली लड़की को उससे मिलवाया था।

उस दिन क्लास में एक बच्चे ने अपनी आशंका पूछते हुए भक्ति को 'तुम' कहकर पुकारा। भक्ति का पारा फिर चढ़ा। हिंदीतर भाषी प्रदेशों में खासकर महाराष्ट्र में पढ़ाते हुए इस दिक्कत से बहुत ज़्यादा उलझना पड़ता है। बच्चे तो क्या, बड़े भी 'तू', 'तुम', 'आप' का फ़र्क नहीं समझते। मिनटभर में उस बच्चे की किताबी आशंका से निपटकर पूरा घंटा भक्ति भाषा की अहमियत, मैनर्स समझाती रही। शायद समझाया कम, डाँटा ज़्यादा कि भाषा बड़ी अनमोल वस्तु है, उसे सावधानी से इस्तेमाल कीजिए। अपने

से बड़ों को (और संभव हो तो छोटों को भी) आदर के साथ 'आप' कहकर संबोधित करना चाहिए आदि-आदि। बेचारा बच्चा सहमकर भक्ति का मुँह ताकता रह गया, लेकिन भक्ति क्या रुकने वाली थी? वह तो उस लड़के के बहाने पूरी क्लास पर बरस रही थी कि 'भाषा सिर्फ संवाद का माध्यम नहीं है, वह आपके पूरे व्यक्तित्व का परिचय देती है। ऐसी तू-तड़ाकवाली भाषा से हमारे कुसंस्कार ही उजागर होते हैं। गलती से भी ऐसी गलती नहीं होनी चाहिए। अपनी जिह्वा को आदत डाल लीजिए 'आप' की ... 'उफ़! घंटा न बजा होता, तो भक्ति और न जाने कितनी देर यह मैनर्स की घुट्टी पिलाती रहती, भगवान जाने। तमतमाये चेहरे से वह स्टाफ़ रूम में आकर बैठी ही थी कि उस साँवली लड़की को उसने सहमी-सहमी हालत में सामने पाया। भक्ति ने आँखें, भौहें उठाकर जानना चाहा, तो बच्ची बोली "मैडम, मैं नज़राना खान"

"कहिए बेटा"

"मैडम, मुझे माफ़ कर दीजिए" नज़राना ने हाथ जोड़े। भक्ति चौक गई, "भई, यह माफी किसलिए? आप तो मुझसे पहली बार मिल रही हैं, फिर माफी क्यों? पहला संवाद और शुरुआत माफी के साथ?"

"पहला संवाद नहीं है मैडम यह। जब से आप पढ़ा रही हैं, तब से मैं दिन-रात आपसे बात करती हूँ... मन-ही-मन, लेकिन गलती आज समझ में आई। मैं आपसे 'तुम' कहकर बतियाती थी। आप मेरे लिए इतना सब करती हैं, मुझे सही राह बताती हैं और मैं मूर्ख आपसे 'तुम' कहकर बात करती रही हूँ। लेकिन अब आइंदा ऐसी गलती नहीं करूँगी। मुझे माफ़ कर दीजिए।"

भक्ति मुसकुराई। सोचा, शिक्षक होना कितनी सुंदर बात है। आप कुछ नहीं करते। अपनी ड्यूटी के तौर पर महज़ पढ़ाते हैं, बच्चों को चार बातें सिखाते हैं और बच्चे आपको अपना आयडॉल बना लेते हैं। अपनी सोच से उबरकर भक्ति ने पूछा,

"अच्छा तो नज़राना, क्या करना चाहती हैं आप? क्या बनना चाहती हैं आगे?"

हर छात्र से पूछा जानेवाला रूटीन-सा सवाल पूछा था भक्ति ने, लेकिन नज़राना की आँखें चमक उठीं - "मैडम मैं कलेक्टर बनना चाहती हूँ या उसी रैंक की कोई पोस्ट... मुझे यही करना है, बस्स यही करना है। अभी से तैयारी करूँगी, तो जीत पाऊँगी। आप बताती हैं न क्लास में कि आजकल हर दूसरा बच्चा अफ़सर बनने के ख्वाब देखता है, लेकिन मेहनत जीरो। मैम, देखिए आपकी बताई हर किताब पढ़ी है मैंने। पढ़ती हूँ, अपने नोट्स बनाती हूँ। जो-जो आप क्लास में बताती हैं, मैं सब करती हूँ ..." और उसने अपना झोला भक्ति के सामने खोल दिया। भक्ति चकित। इतनी छोटी बच्ची इतने कायदे से प्रतियोगिता परीक्षाओं के नोट्स बना सकती है? भक्ति ने उसमें एक जुनून देखा। उसने सोचा, नज़राना से यह पहली मुलाकात याद रहेगी।

उस दिन भक्ति को कॉलिज पहुँचने में थोड़ी देर हो गई। मस्टर पर हस्ताक्षर करने के लिए वह जल्दी-जल्दी ऑफिस जा रही थी। वैसे सीधे क्लास में भी जा सकती थी, लेकिन अस्थायी काम करने वाले लोगों को मस्टर पर हस्ताक्षर करना बड़ा लुभाता है। 'हम भी कहीं काम कर रहे हैं, खाली बेरोज़गार नहीं बैठे हैं' का संतोष देता है शायद यह हस्ताक्षर। परीक्षा फीस भरने का समय था। बच्चे फीस भरने के लिए कतार बनाकर खड़े थे। नज़राना कतार में खड़ी होने के बजाय बगल में खड़ी हो कतार देख रही थी। भक्ति ने गरजकर कहा "नज़राना, नो शॉर्टकट, क्यू में खड़ी हो जाइए।" तभी एक लड़की बेहयाई से हँसी और बोली "मैडम, क्यू में खड़े होने के लिए पहले फीस का पैसा चाहिए। पैसा हो तो न, क्यू में खड़ी रहेगी।"

अपनी गरीबी का यूँ खुला मज़ाक देख नज़राना की बड़ी-बड़ी आँखें डबडबा आईं। अपमान ने उसके चेहरे को लाल बना दिया। भक्ति नज़राना के पास



गई — “नज़राना, यदि आप बुरा न मानें तो आपकी फीस मैं दे दूँ?” बिना कुछ बोले नज़राना इंकार में सिर हिलाती रही। उसके सिर हिलाने में भी एक निश्चय था। भक्ति उसे समझाने लगी, “ऐसी ज़िद भला किस काम की नज़राना? उधार दे रही हूँ। जब आपके पास पैसे हों, लौटा देना ... लेकिन नज़राना मना करती रही। होंठ चबाती रही।

उसी शाम नज़राना भक्ति के घर आई। “मैडम, आप पैसे देकर मेरी मदद करना चाहती हैं न, तो प्लीज़ मुझे कोई काम दिला दीजिए। मैं पूरी ईमानदारी से काम करूँगी और आपको शिकायत का कोई मौका नहीं दूँगी।”

भक्ति को कुछ सूझ नहीं रहा था कि वह क्या कहे। वह खुद एक अदद नौकरी पाने के लिए, एक ज़मीन पाने के लिए दर-दर भटक रही थी। बस, इतना बोल सकी “नज़राना, बेटे मैं आपको क्या काम दूँ ... मैं तो खुद ...” नज़राना भक्ति के चेहरे पर उभर आई बेबसी देखती रही। उसकी बात काटकर कहने लगी, “न न मैडम, मैं किसी ऊँचे ओहदे की बात नहीं कर रही हूँ। क्या मैं आपके घर का काम कर सकती हूँ? भक्ति सकते में आ गई, “गुडनेस नज़राना, मैं आपसे ऐसा कोई काम नहीं करवा सकती... घर का काम — झाड़ू पोंछा, बरतन मलना, बाज़ार से सब्ज़ी-सामान लाना — ना ना इम्पॉसिबल”

“मैडम, आपके घर के बर्तन मला करूँगी ... प्लीज़”

“तौबा नज़राना, यह छोटा काम मैं आपको...”

“क्यों? आप ही तो पढ़ाती हैं न मैडम कि कोई काम छोटा या बड़ा नहीं होता”

भक्ति उस बच्ची को क्या समझाती कि शायद ही कोई ऐसा शिक्षक होगा, जो क्लास में कही अपनी ही बातों पर शिद्दत से अमल करता होगा, लेकिन कुछ तो अपनी ही कही बात की लाज रखने के लिए और कुछ नज़राना की ज़रूरत, उसका स्वाभिमान भाँपकर भक्ति ने कहा, “ठीक है नज़राना,

जैसा आप ठीक समझें।”

एक महीने के एडवांस के तौर पर भक्ति उसे हजार रुपये देने लगी, लेकिन नज़राना ने कहा, “मैडम, मैंने बाकी जगह पता किया है। यहाँ पाँच सौ रुपये में बरतन मले जाते हैं।” “अब बहस बंद कीजिए” भक्ति ने डपटकर कहा, तो नज़राना चुपचाप काम में जुट गई। पूरी ईमानदारी से बिना नागा किए वह अपना काम कर जाती।

धीरे-धीरे भक्ति नज़राना के बारे में जानने लगी। पता चला, शराबी अब्बा, बीमार अम्मा और बिगड़ैल भाई-बहनों के घर में एक अकेली नज़राना ही थी, जो आँखों में बड़े-बड़े सपने पाल बैठी थी। उसके सपने देखने-कहने भर तक सीमित नहीं थे। वह वाकई भक्ति के घर के बरामदे में रात-रात भर जागकर पढ़ती थी। भक्ति ने उसे एक-दो बार कहा भी कि वह घर के भीतर आकर पढ़ा करे, लेकिन नज़राना ने याचना भरे स्वर में कहा था, “यहीं ठीक है मैडम, बस बरामदे की बत्ती जलाए रखिए।” शायद नज़राना समझती थी कि भक्ति के एक कमरे के उस घर में बैठकर वह पढ़ेगी, तो भक्ति सोएगी कहाँ और कब? दूसरों की दिक्कतें पहचानने की अद्भुत कला थी नज़राना में।

उन्हीं दिनों भक्ति अंतर्गत परीक्षा के पर्चे तैयार कर रही थी। नज़राना की लगन देखकर अपने पेशे से गद्दारी करते हुए भक्ति ने एक बार उससे कहा, “नज़राना, चाहो तो पेपर में पूछे जाने वाले सवाल बता दूँ?”

“ना मैडम, आप सिर्फ मुझे रुकने मत दीजिए। मेरे लिए दुआ कीजिए। वादा कीजिए कि आप हर हाल में मेरा साथ देंगी। आपका सहारा हो तो मैं मंज़िल पाकर रहूँगी।”

“हाँ वादा नज़राना, मैं आपके साथ हूँ, हमेशा रहूँगी।”

भक्ति ने सोचा न था कि इस वादे की आजमाइश की घड़ी भी बहुत जल्द आएगी।

पेपर सेटिंग का काम और समय भौंपकर नज़राना अपनी अम्मा को काम पर भेजने लगी, तो भक्ति उसका स्वाभिमान देखकर दंग रह गई।

नज़राना की अम्मा रोती-झींकती-कराहती काम पर आती। कराहते-कराहते अपने शराबी खाविंद को बहुत कोसती, अपनी बर्बाद ज़िंदगी का रोना रोती। नज़राना जब यह जान लेती, तो बहुत गुस्सा होती, लेकिन कुछ कहने के बजाय खामोशी से होंठ चबाती रहती। उसे अपनी अम्मा से बेहद प्यार था, लेकिन अपनी लाचारी, मजबूरी और दुखों का प्रदर्शन उसे ज़रा भी अच्छा न लगता। यह सब देखकर भक्ति सोचती कि अपनी तथाकथित मजबूरियों-लाचारियों का रोना रोकर सामने वाले की सहानुभूति की लहर पर सवार होकर अपना उल्लू सीधा करने के ज़माने में खुद नज़राना का क्या होगा?

भक्ति को भली-भाँति वह दिन याद है, जब उसे तार मिला कि उसकी नानी बहुत बीमार है। उसकी आँखों के सामने ननिहाल, वहाँ बितायी छुट्टियों की मौजमस्ती, प्यारा बचपन कौंध गया। उसे महसूस हुआ कि नानी से मिलना चाहिए। लेकिन छुट्टी? छुट्टी मिलेगी क्या? वह थोड़े ही स्थायी सेवा में है, जो अधिकार से छुट्टी माँग सके। उसका मन कहने लगा, छुट्टी माँगकर तो देखो... शायद मिल जाए। मन कड़ा कर वह प्रिंसिपल मैडम की कैबिन में दाखिल हुई। नमस्कार की औपचारिकता निभाने के बाद क्लास में गरजनेवाली भक्ति बुदबुदायी “मैडम, मुझे तीन दिन छुट्टी मिल जाती तो...”

“मिस भक्ति, मैं आप ही को याद कर रही थी। बात यँ है कि तीन दिन क्या, आपकी हमेशा के लिए छुट्टी। दरअसल, शर्मा मैडम लौट रही हैं। आप तो जानती हैं कि शर्मा मैडम अपनी पी-एच.डी. पूरी करने के लिए रिसर्च लीव पर थीं और उनकी वेकेंट पोस्ट पर आपका चयन हुआ था। शर्मा मैडम अपनी लीव कौंसिल कर परसों ज्वाइन कर रही हैं, सो आप ... “क्या कहे भक्ति? जस-तस इस नौकरी ने,

अस्थायी ही सही, जीने का बंदोबस्त तो किया था ... घर याद आने लगा ... माँ का ऑपरेशन, भाई की पढ़ाई ..., पापा की पेंशन कितनी नाकाफी है... भक्ति की आँखें भर आने लगीं। पलभर के लिए लगा, नज़राना उससे कितनी बेहतर है, जो चार लोगों में आँखों को छलकने से रोकने की ताकत रखती है। सपाट चेहरे से प्रिंसिपल ने कहा “मिस भक्ति, आपको उज्ज्वल भविष्य के लिए शुभकामनाएँ।” प्रिंसिपल मैडम के चेहरे पर कोई भाव नहीं था। जीवन का स्थैर्य क्या सामने वाले की छिन्न-भिन्न मनोदशा को समझने की ताकत सोख लेता है? कोई इतने सपाटपन के साथ किसी को अलविदा कैसे कह सकता है? “थैंक यू मैडम” कहकर भक्ति भारी कदमों से ऑफिस के बाहर आ गई। यह कॉलिज, क्लास, खिलखिलाते बच्चे, उनका अपनापन और नज़राना ... ओह! पलभर में सारी दुनिया उससे छिटककर दूर खड़ी हो गई। अब न पैरों तले ज़मीन न सिर पर आसमान ... अंधेरा भविष्य मुँह बाये खड़ा था उसके सामने...

दूसरे दिन टैपो खड़ा था भक्ति के घर के सामने और वह अपना बोरिया-बिस्तर लदवा रही थी उस पर। कॉलिज का दिया कमरा खाली करना था उसे। लोग आ रहे थे, मिल रहे थे। कोई साथिन कहती “हाय! कितनी मेहनती थी, यहीं परमानेंट हो जाती, तो कितना अच्छा होता।” कोई दिल से कहता, तो कोई अपने सुरक्षित होने की संतुष्टि के साथ औपचारिकता निभाता। भक्ति सभी की असली-नकली शुभकामनाएँ स्वीकारते हुए पंख झड़ी मोरनी-सी खड़ी थी कि हाँफ़ती हुई नज़राना आई। शरीर पर चोटों के निशान, चेहरे पर सूजन, आँखों में आँसू...

“नज़राना, क्या हुआ आपको?” भक्ति लगभग चीख उठी।

“मैडम, मुझे बचा लीजिए। आपने वादा किया है, मेरा साथ देने का, बचा लीजिए मुझे...”

“लेकिन बात क्या है आखिर?”



“मैडम, अब्बू बाजी और मामू ने मेरा निकाह तय किया है। अब्बू ने अपने जैसा शराबी, जुआरी ट्रक ड्राइवर ढूँढा है मेरे लिए। मैं अम्मी की तरह नहीं बनना चाहती मैडम। मैं पढ़ना चाहती हूँ, कुछ बनना चाहती हूँ। मैडम, आपने हमेशा मेरी मदद की है। इस बार, आखरी बार मेरी मदद कीजिए। मुझे बचा लीजिए... आखरी बार... आइंदा आपको परेशान नहीं करूँगी... वरना मैं खुदकुशी कर लूँगी, चाहे फिर अल्लाह की निगाह में कितनी ही बड़ी गुनहगार क्यों न बन जाऊँ। आप कहती हैं कि जीवन में संघर्ष करना चाहिए। हार नहीं माननी चाहिए, लड़ाई का मैदान छोड़कर भागना नहीं चाहिए। इस बार आपने न बचाया, तो आपकी सीख नहीं मानूँगी। मैं मर जाऊँगी... मैं मर जाऊँगी पर निकाह नहीं करूँगी... इससे पहले कि भक्ति कुछ कहती, नज़राना की अम्मी उसके अब्बू और मामू को लेकर वहाँ आ धमकी। “मैं न कहती थी कि यहीं होगी। इस मैडम ने उसका दिमाग खराब कर रखा है। सीधे उठाकर ले चलो, चार दिन भूखी रहेगी, तो सारी बातें मान जाएगी। अरी, कलक्टरनी बनना किस्मत में होता, तो गरीब के झोंपड़े में पैदा होती क्या तू करमजली” और भक्ति की आँखों के सामने नज़राना के घरवाले उसे उठाकर ले गए। भक्ति खामोश देखती रह गई। नज़राना उसे ऐसी देखती रह गई मानो कह रही

हो, “आपने मेरे साथ विश्वासघात किया मैडम, मेरे साथ दगा किया, वादा तोड़ दिया...।”

आज बीस साल बाद नज़राना की वह आँखें, उसकी आँखों में उभरा विश्वासघात का दर्द, तोड़े गए वादे की कसक भक्ति को टीसती है। जब भी नज़राना याद आती है, भक्ति अपने आप को लाचार ही नहीं, गुनहगार भी पाती है। वह याद नहीं करना चाहती नज़राना को। वह नहीं सोचना चाहती कि नज़राना के साथ आगे क्या हुआ होगा। फिर भी वह जानना चाहती है, क्या नज़राना ने अपने हाथों अपनी तकदीर सँवारी या अम्मी की राह पर चलकर दिल को सहरा-आँख को समुंदर बना लिया... ना-ना... नहीं सोचना है नज़राना के बारे में... भक्ति ने फिर से गर्दन को झटका दिया। नज़राना की याद से घिरी भक्ति को अपने ऊपर कोपत हुई। “क्या बकवास दिन है” उसने खुद से कहा तभी सामने से लाल बत्ती की अफ़सर वाली अम्बेसडर कार गुज़री। आगे पीछे पुलिस की दो गाड़ियों के बीच चलती सफ़ेद झकझक अम्बेसडर में लगे पर्दों के बीच से भक्ति ने देखा एक साँवली महिला पूरे कड़कपन के साथ बैठी थी। भक्ति जानती थी, वह नज़राना नहीं है। बावजूद उसकी ज़बान से आह बन निकला ‘नज़राना’।

**drbharatigore@gmail.com**

## सौ नंबर

— डॉ. मंजरी शुक्ला  
हरियाणा, भारत

पता नहीं कैसे और कब अचानक ही मैं अपने ही घर में कैद हो गई। बेबस, लाचार और बेसहारा जैसे शब्दों से मुझे जीवन भर घृणा रही, पर आज यही तीन शब्द मेरे वजूद के पर्यायवाची बन चुके हैं।

सत्तर की उम्र में भी ऐसा लगता है, मानो मैं अश्वथामा की तरह हजारों सालों से ज़िन्दा रहते हुए एक अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर हूँ।

बेटे के साथ-साथ मेरी बहू और मेरे पोते ने भी मुझे घर का पुराना कबाड़ समझ लिया था। बस मुझमें और कबाड़ में सिर्फ इतना अंतर था कि इन लोगों ने मुझे दुछ्ती पर बनी कोठरी पर बेकार पड़े सामान के साथ नहीं फेंका था।

मैं बेवजह ही सबको देखकर मुस्कुराती थी कि शायद कोई मुझे देखकर मुस्कुरा दे या फिर दो घड़ी मेरे पास बैठकर बातें कर ले, पर इन लोगों ने जैसे मुझे अदृश्य समझ लिया था। उनकी नज़र छत के किसी कोने पर नए मकड़ी के जाले पर तो चली थी, पर मुझ पर नहीं।

आज भी मैंने बहू की तरफ मुस्कुराकर देखा, पर वह साड़ी का पल्लू सँभालती मेरे बगल से ऐसे निकल गई, जैसे मुझे जानती ही न हो।

रसोईघर से आती पराँठों की महक से मेरी भूख बढ़ती जा रही थी, पर घर में सबके खाने के बाद ही मुझे खाना दिया जाता था। इसलिए मैं चुपचाप बैठी रसोईघर की तरफ ताकती रही।

मैं अपना ध्यान भटकाने के लिए इधर-उधर ताकने लगी। तभी मुझे मेरे पोते सागर के हँसने की आवाज़ आई। मैंने पीछे मुड़कर देखा, तो वह एक दुबली पतली—सी लड़की के साथ अपने कमरे की तरफ जा रहा था।

उसकी आँखों में कोई शर्म न देखकर मैंने शुतुरमुर्ग की तरह रेत में छुपने का उपक्रम किया और ऐसे बैठ गई, जैसे मैंने किसी को देखा ही नहीं हो। वैसे भी मेरा वजूद तो उस घर में पूरी तरह से नकार दिया गया था। वरना क्या ये संभव था कि बीस साल का पोता खुलेआम मेरे सामने ही रोज़ कोई—न—कोई लड़की लेकर अपने कमरे में जाए और अंदर से कुंडी बंद कर ले।

कई बार मैंने सोचा कि अपने बेटे को इस के बारे में बताऊँ, पर हिम्मत नहीं पड़ती थी। डर था कि कहीं सब मिलकर मुझे घर से ही न निकाल दे।

तभी सागर ने मुझे देखा और सीटी बजाते हुए लड़की का हाथ पकड़ लिया।

मैंने नज़रें नीची कर ली और माला फेरने लगी।

मैंने बहू को देखा पर वह भी कहीं नज़र नहीं आ रही थी। हो सकता है वह इतनी देर में कहीं आस-पड़ोस में चली गई हो। वैसे भी आज तक मुझे उसने अपने आने-जाने का कुछ भी नहीं बताया था।

इस घटना के तीन दिन बाद ही जब मैं आँगन में बैठे हुए कबूतरों को चावल के दाने डाल रही थी, तो सागर एक लड़की का हाथ पकड़े हुए आया और मुझे घूरते हुए सीधा अपने कमरे में चला गया।

थोड़ी ही देर बाद लड़की के चीखने चिल्लाने की आवाज़ें आने लगी।

घबराहट और डर से मेरे पैर काँप उठे।

मैं जब तक व्हीलचेयर को धक्का लगाती, तब तक कमरे से ज़ोर-ज़ोर से हँसने की आवाज़ें आने

लगी।

मेरे हाथ कुर्सी के पहियों पर रुक गए।

मैंने अपने अगल-बगल कातर निगाहों से देखा, पर मुंडेर पर एक नन्हीं गौरैया के अलावा दूर-दूर तक कोई नजर नहीं आया।

मेरे कानों की लवें जैसे लाल हो गई थीं। एक-एक पल युगों के समान बीत रहा था। तभी मुझे मेरा बेटा आता दिखाई दिया।

वह मुझे देखते ही मुड़ने को हुआ कि मैं चिल्लाई, “झबलू, जल्दी से इधर आ।”

बेटे का चेहरा उतर गया। उसकी चाल की तेजी अचानक ही सुस्ती में बदल गई। वह मेरी ओर ऐसे चला आ रहा था, जैसे फाँसी के फंदे की ओर बढ़ रहा था। अपने ही बेटे को अपनी ओर ऐसी मजबूरी में आता देख मेरी आत्मा कलप उठी। पर बात इस समय मेरे मान-सम्मान की नहीं थी, बल्कि मेरे पोते के साथ-साथ उस लड़की की भी थी, जो इस समय उसके साथ बंद कमरे में थी। इतनी-सी उम्र के बच्चे लोक-लाज, शर्म-लिहाज सब भूल चुके थे।

तभी मेरा बेटा पास आया और गुस्से से बोला, “पूरे पचास साल का हो गया हूँ मैं, क्या जब देखो तब झबलू-झबलू चिल्लाया करती हो।”

“तो क्या बुलाऊँ तुझे कलेक्टर साहेब।” मैंने प्यार और दुलार से कहा। तभी पता नहीं कहाँ से मेरी बहू प्रकट हो गई और हाथ नचाते हुए बोली, “हे राम, पहली माँ ऐसी देखी है जो अपने ही बेटे की उन्नति और प्रसिद्धि देखकर जली मरी जा रही है। अरे, जब सारी दुनिया आपके बेटे को कलेक्टर साहेब बुला रही है, तो आपको क्या समस्या हो रही है।”

मेरी तो ऐसी जली-कटी बातें सुनने की आदत पड़ चुकी थी, इसलिए बहू की बात को मैंने नजरअंदाज करते हुए कहा, “आजकल सागर रोज़ कोई-न-कोई लड़की लेकर आता है और अपना

कमरा बंद कर लेता है। आज तो एक लड़की जोर-जोर से चीख भी रही थी।”

ये सुनते ही बेटे का चेहरा डर के मारे पीला पड़ गया और वह सागर के कमरे की ओर भागा। उसने गुस्से में दरवाज़े पर जोर से हाथ मारा पर ये क्या, दरवाज़ा तो खुला हुआ था। मैं भी तब तक अपनी व्हीलचेयर सरकाते हुए सागर के कमरे तक पहुँच चुकी थी। सामने ही सागर और वह लड़की बैठे हुए किसी किताब के पन्ने देखते हुए अपनी नोटबुक में कुछ लिख रहे थे।

हम लोगों को देखते ही सागर और लड़की उठ खड़े हुए। लड़की ने मुस्कुराते हुए मेरे पास आकर मेरे पैर छुए और फिर मेरे बेटे के जूतों पर हाथ रख दिए। बेटा खुशी के मारे गदगद हो उठा। उसने दोनों हाथ आशीर्वाद की मुद्रा में उठा दिए।

वह कुछ कहता उससे पहले ही सागर बोला, “पापा, अगले महीने से परीक्षाएँ शुरू होने वाली हैं और हर किताब खरीदना बहुत महंगा पड़ता है, इसलिए हम सभी दोस्त आजकल एक दूसरे के घर जाकर नोट्स बना लेते हैं।”

जहाँ पैसा बचाने की बात होती है, वहाँ मेरी बहू की खुशी देखते ही बनती है। वह तुरंत नई साड़ी के गुणा भाग में लग जाती है। इसलिए खुशी से बावरी होते हुए वह तुरंत बोली, “बहुत अच्छी बात है बेटा, ऐसे ही खूब मेहनत से पढ़ाई किया करो।”

बेटे ने भी मुस्कुराते हुए उसका समर्थन किया और मुझे खा जाने वाली नजरों से देखता हुआ कमरे के बाहर चला गया। बहू भी मुझे घूरते हुए कमरे के बाहर चली गई।

उन दोनों के जाने के बाद सागर मुस्कुराता हुआ मेरे पास आया और बोला, “प्यारी दादी, आप इस उम्र में जासूसी करते अच्छी नहीं लगती हो। पता है, आपको सब पागल समझते हैं और अगर आप ऐसे ही करती रहोगी, तो आपके ही घर के लोग एक दिन आपको पागलखाने में डाल देंगे।”

शर्म और अपमान से मेरे आँसू छलक उठे। मैंने उस लड़की की तरफ देखा कि शायद वह सागर को टोके, पर वह तो किताब को अपने मुँह पर चिपका कर ऐसे बैठ गई थी, जैसे अक्षरों को पढ़ने के बजाय निगलने की कोशिश कर रही हो। शर्म और अपमान से गिरते आँसू न चाहते हुए भी मेरी हथेली पर टपक गए।

इसी पोते के पैदा होने के लिए मैंने महीने भर तक एक समय फलाहार खाकर व्रत रखा था। सब लोग पीछे पड़े थे कि बेटा कलेक्टर है, दूसरी शादी करा दो। सुबह शाम लड़कियों के घरवाले मेरी एक हाँ के इंतज़ार में घंटों खड़े रहते थे। पर मैं बहू के आगे चट्टान बनकर खड़ी रही थी, क्योंकि एक औरत होकर मैं किसी दूसरी औरत के ऊपर अत्याचार कैसे कर सकती थी। आखिर तीन साल के बाद ऊपरवाले को मेरे ऊपर रहम आया और उसने सागर को भेजा। आज यही बहू मुझसे सीधे मुँह बात नहीं करती और मेरा यह पोता मुझे पागलखाने भेजने की धमकी दे रहा है। उस दिन के बाद जो मेरा थोड़ा बहुत लिहाज़ बाकी था, वो भी सागर ने करना छोड़ दिया था। मैं आज सुबह से ही रो रही हूँ। अगर मेरे पैर सही होते तो कम-से-कम थोड़ी देर जाकर मंदिर हो आती। पर पता नहीं ईश्वर ने किन कर्मों की सज़ा दी है। तभी मेरी नज़र इमरती पर पड़ी। खुशी के मारे, मेरी चीख निकल गई।

जब मैं इस घर में ब्याह कर आई थी, तो पिताजी ने उस को भी मेरे साथ ही भेज दिया था। पूरा जीवन हम दोनों ने साथ ही जिया था। अगर किसी को पता न हो कि वह घर में काम करती थी, तो सब उसे मेरी बहन ही समझते थे। पर मेरी बहू से मेरी खुशियाँ नहीं देखी गई और उसने इमरती को इतना सताया कि बेचारी को अपना बोरिया-बिस्तर बाँधकर भाग जाना पड़ा। उसके जाने के बाद मैंने उसे महीनों ढूँढ़ा था और फिर कहीं से कोई खबर नहीं पाकर उसके आने की आस ही छोड़ दी थी।

पर आज उसे सामने देखकर मेरी बूढ़ी कमज़ोर आँखों में चमक आ गई और मैंने जैसे ही उसका हाथ पकड़ा, मेरा गला रुंध गया और आँखों से आँसू बहने लगे। इमरती ने भी रोना शुरू कर दिया। हम दोनों बिलख-बिलख कर रो रहे थे और मन का हाल एक-दूसरे को बता रहे थे। मैं रुंधे गले से बोली, “मेरे दुर्दिनों के बीच ही तू किसी ठण्डी हवा के झोंके-सी आ गई है, इमरती।”

इमरती भर्राये गले से बोली, “जिज्जी, क्या ज़रूरत थी अपने जीते-जी सब कुछ दान करने की, तुम्हारे न रहने के बाद भी तो इन्हीं लोगों को सब कुछ मिलना था।”

मेरा सारा शरीर काँप गया। शायद वह सच ही कह रही थी। जिस दिन से मैंने घर, ज़मीन, जायदाद और गहने सब बहू को दे दिए, उसी दिन से मेरी स्थिति बद से बदतर होती चली गई।

मैंने रुलाई रोकते हुए कहा, “बहू तो पराये घर से आई है, पर कभी सोचा नहीं था कि जिसे कोख में नौ महीने रखा वह भी ऐसा करेगा।”

तभी इमरती ने अपनी साड़ी का पल्लू खोला और उसमें से चार सोने की पतली चूड़ियाँ निकालीं और मेरे झुर्रीदार हाथों में पहना दीं।

मैंने चूड़ी उतारते हुए कहा, “पागल हो गई हो इमरती। इतनी रईस हो गई है तू कि सोने की चूड़ियाँ पहना रही है मुझे।”

इमरती धीरे से बोली, “जिज्जी, इतने बुढ़ापे तक, गहनों के नाम पर यही चार चूड़ियाँ ही तो बनवा पाई हूँ।”

वह कुछ और कहती कि तभी मेरी बहू वहाँ आ गई और इमरती को देखते ही चीखते हुए वहाँ से जाने को कहने लगी।

मैंने अपराधिनी की तरह सिर झुका लिया। मैं अपने ही घर में इतनी लाचार और बेबस थी कि इमरती का हाथ पकड़कर उसे रोक भी नहीं सकती थी।

इमरती धीरे से बोली, “बाबूजी ने हमारे पास बहुत सारे गहने रखवा दिए थे, तो उन्हीं में से चार चूड़ी जिज्जी को देने आई थी।”

गहनों का नाम सुनते ही मेरी लालची बहू के तेवर तुरंत ही बदल गए।

उसने तुरंत कहा, “चाय पी कर जाना।”

“हाँ, मैं सोच रही थी कि अगर तुम्हें एतराज ना हो, तो कुछ दिन यहाँ रह लूँ।”

“गहने कितने हैं और बाबूजी ने तुम्हें क्यों दिए? मुझे तो इस बारे में कुछ पता नहीं है।” बहू ने चिंतित स्वर में कहा।

इमरती गंभीर स्वर में बोली, “तुम्हारे ब्याह के समय दिए थे। घर में इतने मेहमानों का आना जाना था, इसलिए चोरी-चकारी का डर था। फिर मैंने भी अपने गाँव जाकर रख दिए थे और तुमसे तो गाँव जाने की जब भी छुट्टी माँगी तुमने एक दिन के लिए भी नहीं जाने दिया।”

इमरती का दिमाग देखकर मैं दंग रह गई। ये बात सोलह आने सच थी कि बहू इमरती से जानवरों की तरह काम करवाती थी और बेचारी को एक घड़ी भी आराम नहीं करने देती थी, इसलिए उसने इमरती को एक दिन के लिए भी कभी छुट्टी नहीं दी थी।

अपने कर्म याद आते ही बहू तुरंत बात बदलते हुए बोली, “तो सारे गहने क्यों नहीं लेकर आई?”

“अब पहले का ज़माना तो रहा नहीं कि तकिये के नीचे गहनों की पोटली दबा लो। मेरा लड़का पढ़ा लिखा है इसलिए उसने लौकर खुलवाकर गहने बैंक में रख दिए हैं।”

“ठीक है तो हम लोग आज ही तुम्हारे गाँव चलकर गहने ले आते हैं, फिर तुम आराम से माँ जी के साथ इसी घर में रहना।” बहू बनावटी हँसी हँसते हुए बोली।

बहू ने जैसे ही मुझे माँ जी कहा, मैंने तुरंत सकपकाते हुए उसे देखा, क्योंकि बुढ़िया छोड़ तो

उसने कभी मुझे बुलाया ही नहीं था। पर उस लालची औरत ने पल भर में ही ऐसे रूप बदला था कि मुझे और इमरती दोनों को ही विश्वास नहीं हो रहा था कि ये मेरी बहू ही है या आसपास से निकलती हुई किसी महान आत्मा ने उसके शरीर में प्रवेश कर लिया है।

इमरती खड़ी हो गई और बोली, “मेरा लड़का तो दो महीने के लिए उसके साहब के साथ आगरा गया हुआ है और मैं ठहरी अनपढ़ गँवार, इसलिए उसके आने के बाद ही बैंक से गहने मिलेंगे।”

बहू का चेहरा ये सुनते ही उतर गया। वह ऐसे दुखी होकर खड़ी हो गई, जैसे दो महीने बाद प्रलय आ रहा है और सबसे पहले वह ही डूब जाएगी। बहू बेचारी इतनी ज़्यादा गमगीन हो गई कि हवा में ही देखते हुए और न जाने क्या सोचते हुए वहाँ से चली गई। उसके आँखों से ओझल होते ही मैंने खुश होते हुए कहा, “इमरती तू सच में मेरे साथ रहेगी न... छोड़ के तो नहीं जाएगी न मुझे?”

“कभी नहीं जिज्जी, अब तुम्हें इन सबकी गाली खाने को नहीं छोड़ेंगे।” इमरती ने मेरा हाथ पकड़ते हुए कहा।

“पर दो महीने बाद क्या होगा?” मैंने घबराते हुए पुछा

“उसका हल भी निकल ही आएगा। बुढ़ापे के जिस दिन इज्जत से दो समय की रोटी मिल जाए, समझो गंगा नहा लिए है जिज्जी”, कहते हुए इमरती की आँखें डबडबा उठी। थोड़ी ही देर बाद देखा कि बहू एक ट्रे में चाय नाश्ता लिए चली आ रही है।

इतनी इज्जत और मान-सम्मान की मुझे आदत नहीं थी, इसलिए मैंने संकोच से कहा, “इतने सारे नौकर-चाकर हैं, तुम बेकार ही परेशान हुई।”

“लो माँ जी, आपकी और इमरती चाची की सेवा का मौका मैं भला कैसे जाने दूँ। यही तो पुण्य है, जो लोक-परलोक में काम आते हैं।” बहू अपने स्वर में चाशनी घोलते हुए बोली। अगर उस समय



धरती फट जाती और मैं व्हीलचेयर समेत उसमें समा जाती, तो भी मुझे उतना आश्चर्य नहीं होता, जितना बहू की बात सुनकर हुआ।

मैंने इमरती की ओर देखा पर वह आराम से मुस्कुराते हुए चाय की चुस्कियाँ ले रही थी, मानो उसे पता हो कि ये सब होने वाला था। इमरती के आने के बाद जैसे मेरी साँसे वापस आ गई थीं।

मुझे इमरती के साथ रहकर सब याद आने लगा। बचपन के वो दिन, जिनमें मैं अपनी सारी सहेलियों के साथ मिलकर गुड़िया का ब्याह रचाती थी। मैं नाचती थी और इमरती मंजीरा बजाया करती थी। मेरे अलावा सब कहते थे कि इमरती इतना उटपटांग मंजीरा बजाती है कि कान दर्द करने लगते हैं, पर बड़े लोगों को भला क्या समझ में आता कि वही मंजीरा तो ब्याह की शान था। आखिर बिना बाजे—गाजे के भी भला कोई ब्याह होता है। इमरती न जाने कितनी बचपन की बातें याद दिलाती और मैं हँस—हँस कर दोहरी हो जाती थी। मैं बहुत खुश थी। सालों बाद मैं खुलकर हँसने लगी थी। कभी—कभी मैं डर भी जाती कि कहीं मेरी हँसी को मेरी ही नज़र न लग जाए। उधर मेरी बहू हर दो तीन दिन में आकर इमरती से उसके लड़के के लौटने का पूछ जाती। मैं ऊपर से तो गंभीर बनी रहती, पर बहू के पूछते ही मेरा कलेजा घबराहट के मारे काँप उठता था।

मैं सोचती कि अगर दो महीने बाद इमरती चली जाएगी, तो मुझे पहले की तरह हर समय मुँह सिलकर घर के एक कोने में चुपचाप पड़ा रहना होगा। एक रात जब इमरती मेरे पास बैठी थी, तो न जाने क्यों मेरी रुलाई फूट पड़ी।

इमरती ने घबड़ाते हुए पूछा, “क्या हुआ जिज्जी?”

“दो महीने बाद जब तुम इस घर से जाओगी तो मुझे भी अपने साथ ले चलना इमरती। इस लाचार शरीर से तो कुछ हो नहीं पाएगा, पर रात भर तेरे

घर के दरवाजे पर बैठकर चौकीदारी कर दिया करूँगी। दो रोटी दे देना, पर इन राक्षसों के साथ मुझे छोड़कर मत जाना।” कहते हुए मैं इमरती के पैरों की तरफ झुकने लगी।

इमरती पर वज्रपात—सा हो गया। वह मेरे दोनों हाथों को पकड़कर बुक्का फाड़कर रो पड़ी। उस दिन हम दोनों न जाने कब तक एक दूसरे का हाथ पकड़ कर बैठे रहे।

अगली सुबह इमरती मुझे चाय का गिलास हाथ में पकड़ाते हुए बोली, “झबलू तुमसे बात नहीं करता है?”

मैंने चोर नज़रों से इधर—उधर देखा। आस—पास किसी को नहीं पाकर मैंने फुसफुसाते हुए कहा, “उसको झबलू मत बोलो। उसने मुझे उसका नाम लेने से मना किया है। मैं माँ होकर भी उसका नाम नहीं ले सकती हूँ।”

“तो उसे क्या बुलाना है?” इमरती ने हैरत से पूछा।

“कलेक्टर साहब... कलेक्टर साहब कहना है उसे।” मैंने धीरे से कहा।

इमरती के चेहरे पर वितृष्णा के कई भाव एक साथ आकर चले गए। वह कुछ कड़वा बोलना चाहती थी, पर रुक गई। मैं जानती थी कि मेरे बेटे को पालने में उसने दिन—रात एक कर दिए थे। नहलाने—धुलाने से लेकर तेल मालिश तक की पूरी ज़िम्मेदारी उसने अपने ऊपर ले ली थी। अगर कभी मैं झबलू को नहला देती, तो इमरती गुस्से में मुँह फुला कर बैठ जाती और फिर झबलू को रात तक मुझे न देती। मुझे आज भी याद है कि झबलू के साथ बातें करते हुए वह हम सबसे भी तुतला कर बोलने लगी थी। पर उसने जिसे अपने बेटे से ज्यादा प्यार किया था, वही झबलू मेरे साथ—साथ इमरती को भी अनदेखा करते हुए सामने से निकल जाता है। बचपन में इमरती की साड़ी का पल्लू पकड़कर घूमने वाला बच्चा अब “कलेक्टर साहब”



जो हो गया था।

तभी बहू आई और बोली, “मैं बाहर जा रही हूँ। शाम को लौटूँगी।”

इमरती और मैंने उसे देखा और हाँ में सर हिला दिया। मेरी भला कहाँ हिम्मत थी कि उससे पूछूँ कि वह कहाँ जा रही है। मुझे तो बताया ही पहली बार गया था, वरना कौन घर में आता था, कौन जाता था और जब घर में ही कोई रहता था, तो भला मुझसे दो बोल बोलने की फुर्सत किसे थी। वो तो इमरती की चार सोने की चूड़ियों की लीला थी, जिसने रिश्तों में नई चमक की आभा ला दी थी। भले ही बहू का व्यवहार पूर्ण रूप से बनावटी था, पर कम-से-कम अब मेरा खुलेआम अपमान तो न होता था। इमरती के आने के बाद ही सही मुझे कम-से-कम इन्सान तो समझा जाने लगा था।

बहू के जाने के बाद मैं और इमरती साथ में बैठे धूप सेंक रहे थे कि तभी सागर एक लड़की के साथ आया। मैंने गौर से देखा। यह लड़की तो बहुत छोटी लग रही थी। कहीं से भी वह सागर की हमउम्र नहीं लग रही थी। घुटनों तक की फ्रॉक पहने और दो कसी चोटियाँ बनाए हुए वह सागर के पीछे-पीछे चली आ रही थी। मेरा हृदय किसी अनजानी आशंका से धड़क उठा। इस लड़की की उम्र तो सोलह-सत्रह बरस से अधिक न होगी, फिर भला इसके साथ कौन-सी पढ़ाई करनी है सागर को!

ये सोचते हुए मैंने सागर को आवाज़ लगाई और पूछा, “ये लड़की तेरी कक्षा में है क्या?”

सागर ने मेरी बात को हमेशा की तरह अनसुना कर दिया और लड़की को लेकर अपने कमरे में चला गया।

इमरती मुझे चिंतित देखकर बोली, “अरे, कई बार बच्चे अपनी उम्र से कम दिखाई देते हैं। वो झबलू का बेटा है, कुछ गलत कर ही नहीं सकता।”

“हाँ, झबलू अपनी बीवी के साथ मिलकर अपनी माँ को जानवरों से भी बदतर स्थिति में रखे हुए है। कभी मुझसे दो शब्द की बात नहीं करता। उसकी बीवी मेरे मुँह पर मुझे पागल कहती है और वह अनसुना करके चल देता है, तो अगर मेरा पोता उससे चार कदम आगे निकल जाए, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है?”

इस नंगी सच्चाई को सुनकर इमरती का चेहरा मुरझा गया। वह बात बदलते हुए बोली, “मैं अभी तुम्हारे लिए अदरक वाली चाय बनाकर लाती हूँ।”

मुझे जैसे इस समय कुछ सुनाई ही नहीं दे रहा था। मेरे कान सागर के कमरे की ओर ही लगे हुए थे। तभी मुझे अंदर से कुंडी लगने की आवाज़ आई। कुछ समय भी न बीता था कि कमरे से सामान टूटने की आवाज़ें आने लगी।

मैंने काँपते हाथों से व्हीलचेयर सरकाई और सागर के कमरे के बाहर जाकर चिल्लाने लगी, “दरवाज़ा खोल सागर।”

“छोड़ दो भइया... जाने दो मुझे... नहीं चाहिए मुझे आपके नोट्स”, कहते हुए लड़की ज़ोर-ज़ोर से रो रही थी।

मेरे हाथ पैर सुन्न हो गए। मैं गला फाड़कर चिल्ला रही थी, पर मेरी आवाज़ ही नहीं निकल रही थी। मैं बिलख-बिलखकर रोने लगी।

लड़की ज़ोर-ज़ोर से चीख रही थी और साथ में तमाचों की आवाज़ भी आ रही थी।

“सागर, मत मार उस बच्ची को, जाने दे उसे, देख तेरे पापा आ गए हैं, दरवाज़ा खोल।” कहते हुए मैं पागलों की तरह दरवाज़ों की तरफ़ बढ़ी और व्हीलचेयर से सरकने की कोशिश करने लगी। तभी व्हीलचेयर पलट गई और मैं ज़मीन पर गिर पड़ी। व्हीलचेयर के गिरने की आवाज़ सुनकर इमरती ने रसोईघर से झाँका और मुझे फर्श पर पड़ा देख वह बदहवास-सी दौड़ती हुई आई।

“क्या हुआ जिज्जी... क्या हुआ...”, इमरती

चीखी।

“पुलिस बुला, जल्दी बुला...”, मैं काँपते स्वर में बोली।

लड़की अब ज़ोर-ज़ोर से चीख रही थी। पल भर में ही इमरती सब कुछ समझ गई। वह आँगन में पड़ा सिल-बट्टा उठाते हुए बोली, “पुलिस के आने तक तो उस बच्ची की ज़िंदगी बरबाद हो जाएगी।”

मैं कुछ समझ नहीं पा रही थी। तभी इमरती ने सागर की खिड़की के काँच पर सिल-बट्टा दे मारा। पल भर में ही काँच के टुकड़े चारों ओर बिखर गए। इमरती खिड़की से अंदर कूद गई। लड़की का चिल्लाना अचानक ही बंद हो गया। मेरा दिल इतनी ज़ोरों से धड़क रहा था कि हर धड़कन मुझे साफ़ सुनाई दे रही थी। मैं एकटक दरवाज़े की तरफ़ देख रही थी। इतनी देर हो गई इमरती दरवाज़ा क्यों नहीं खोल रही। एक-एक पल एक-एक युग के समान बीत रहा था। कुछ देर बाद दरवाज़ा खुला और लड़खड़ाते कदमों से वह बच्ची बाहर निकली। उस बच्ची को देखते ही मेरा कलेजा मुँह को आ गया।

उसके चेहरे पर उभरे हुए उँगलियों के निशान, जगह-जगह से फटी फ़ॉक और पैरों से गिरता खून देखकर मेरी आँखें शर्म और दुख से पृथ्वी में गड़

गई। मेरी आँखों से गर्म आँसू बह निकले। वह बच्ची दरवाज़े का सहारा लेकर आगे बढ़ी और मेरी गोदी में आकर निष्प्राण-सी पड़ गई।

इमरती रोते हुए बोली, “सागर, तूने अनर्थ कर दिया। कुल को कलंकित कर दिया तूने...”

इमरती कुछ और कहती इससे पहले ही सागर उसे टोकता हुआ बोला, “तू भी इस व्हीलचेयर वाली बुढ़िया के साथ पागलखाने जाएगी क्या? इस घर में रहना है, तो चुपचाप पड़ी रह। मैं रोज़ लड़कियाँ लाऊँगा और जो मेरा मन होगा मैं करूँगा।”

“अरे पापी, कुछ तो भगवान से डर।” कहते हुए इमरती का स्वर काँप उठा।

“कलेक्टर है मेरा बाप समझी।” कहते हुए सागर ने दरवाज़ा भड़ाक से बंद कर लिया। मैंने इमरती से कहा, “मोबाइल देना अपना।”

इमरती ने मुझे भरपूर नज़रों से देखा और कुर्सी पर पड़ा मोबाइल मुझे पकड़ा दिया। मैंने बच्ची के चेहरे की तरफ़ देखा, जो मेरी गोद में बेसुध पड़ी रह-रहकर सिसकियाँ भर रही थी। मैंने उसके माथे पर हाथ फेरते हुए कहा, “अब मेरे जीते जी, मेरी आँखों के सामने अब कभी किसी बच्ची के साथ गलत नहीं होगा।” और अपने आँसू रोकते हुए मैंने “सौ नंबर” लगा दिया।

manjarishukla28@gmail.com

## कछु लेना न देना मगन रहना

— भावना सक्सैना

भारत

कोई खास बात नहीं थी उसमें और ना ही कहीं से शक्ल, रंग-रूप, कद-काठी या हाव-भाव ही मिलते थे, फिर भी उसके स्वर ने उसके गर्दन झटकने और बोलने के अंदाज़ ने ज़िंदगी के एक बरसों पुराने पात्र की याद दिला दी थी। सामान्य

दिनचर्या के अनुरूप दफ़्तर जाने के लिए वह ऑटो रिक्शा में बैठी थी और अपने ख्यालों में खोई बहुत-सी बातें सोच रही थी कि सहसा लाल बत्ती पर ऑटो के रुकने और ऑटो चला रहे व्यक्ति के साथ ही आकर रुके दूसरे ऑटो वाले से बात शुरू

करते ही वह स्मृतियों की तह में उतरती चली गई...

नेताजी!!!

नेताजी का असली नाम याद नहीं था उसे, सुनील, सुशील या शायद कुछ और! खैर असली नाम से फर्क भी नहीं पड़ता। वह तो बस नेताजी थे। हम बच्चे उन्हें नेता मामाजी पुकारते थे, बाकी सबके लिए वह नेताजी थे। यहाँ तक कि हमारी दादी अम्मा के लिए भी। यूँ तो वे हमारी चाची के भाई थे, लेकिन परिवार के सभी बच्चों पर उनका अगाध स्नेह था। नेताजी से ना कोई समानता थी और न ही कोई रिश्ता। पता नहीं उनका यह नाम पड़ा भी कैसे था। शायद उनकी बड़ी हथेलियों से या उनके पिताजी के सुभाषचंद्र बोस के प्रति आदर और सम्मान के कारण। बहुत छोटे थे तब ही पिता की छाया से वंचित हो गए थे, लेकिन उनका दिया नाम चलता रहा था। उनकी माँ और नानी ने बड़े लाड़ से पाला उन्हें।

नानी के अपार स्नेह की छाया में पले होने के कारण वह स्वयं भी स्नेह की प्रतिमूर्ति थे। उनके मन में स्नेह का अगाध सोना था। बचपन से यही एक छवि अंकित थी उनके मन पर। जब आते ढेरों चीजें लाते, खेल-खिलौने, मिठाई और लेमनचूस की गोली भी। लंबे स्वरथ हृष्ट-पुष्ट, घने-घुंघराले बालों वाले और सदैव चित्ताकर्षक मुस्कान लिए। बड़ी-बड़ी नॉकदार मूँछों को जब ऐंठकर ताव देते, तब जरूर मुस्कान पर नेताजी की छवि आ जाती थी और रोबीला व्यक्तित्व आसपास के लोगों पर छा जाता था। जब ज़ोर से हँसते, तो वादियाँ गूँज जातीं। इतनी प्रफुल्लित निश्चल हँसी, जिसे सुनकर आसपास वाले स्वयं ही मुस्कुरा उठते।

अधिक पढ़े-लिखे न थे। पढ़ाई से हमेशा उनका बैर ही रहा, स्कूल का बस्ता पेड़ पर टाँग दिनभर पतंग उड़ाना, मास्टर की खिल्ली उड़ाना उनके प्रिय शगल थे। पाँचवी तक तो इसलिए पढ़ लिए कि नानी उस स्कूल में मास्टरनी थीं। छठी से बड़े स्कूल

जाना था, सो शरारतों को नया आकाश मिला। ये सब उसने किस्सों में सुना था। फिर न जाने कब कौन-सी कक्षा में उन्होंने पढ़ाई छोड़ी होगी, नहीं मालूम। जब से याद है वह एक दुकान के मालिक दिखे, बस दुकान में भरा सामान बदलता रहता था। पिता की छोड़ी तीन दुकानें थी, जिनमें से दो किराए पर चढ़ी रहती, जिससे घर का खर्च चलता था। एक दुकान उनके शौक के लिए उनके पास थी। जाने कितने प्रयोगों के बाद मिठाई की दुकान पर स्थिर हो गए थे। उनका कहना था, मीठा खाओ, मीठा बोलो, मगन रहो... दुकान का काम तो सब हलवाई ही करते थे, लेकिन जब उनका मन आता वह सबको भगा स्वयं मिठाई बनाने बैठ जाते थे। मिठाइयों पर नए-नए प्रयोग करना खूब भाता था उन्हें। कभी बर्फी में नमकीन सेव मिला देते, तो कभी रबड़ी में गुलकन्द और मोतीचूर के लड्डू। हमारे लिए तो बस मौज होती थी।

गरमियों की छुट्टियाँ हों और नेताजी के गाँव न जाया जाए, ऐसा होता नहीं था। उस समय वैसे भी छुट्टियों में घूमने का अर्थ मामा, मौसी, बुआ, चाचा के घर जाना ही हुआ करता था। हमारी हसरत होती हम सारी की सारी छुट्टियाँ नेताजी के गाँव में बिताएँ... एक तो उनका लाड़ और दूसरा उनकी दुकान चुंबक की तरह आकर्षित करती थी हमें।

कितना स्पष्ट है जून की तपती दोपहर का वह चित्र, जब बस स्टैंड पर उतरकर हम सीधे दुकान पहुँचे थे और भीषण गर्मी में नेताजी भट्टी के सामने बैठकर बड़ी-सी कढ़ाई में रबड़ी बना रहे थे। गर्दन में पड़े गमछे से पसीना पोंछते झट से चौड़ी-सी मुस्कान बिखेर दी थी। मुँह में दबे पान को एक ओर सहेज बोले थे, “अभी उठकर नहीं आऊँगा, उठा तो रबड़ी चिपकने लगेगी, ज़रा देर रुको तुम लोग।” वहीं बैठे-बैठे पड़ोस के दुकानदार को हाँक लगाकर बोले, “अरे फटाफट ठंडे लेमन की बोतलें निकालकर देजा और पाइप (स्ट्रॉ) डालकर लाइयो, शहरातन हैं मेरी भतीजियाँ।” फिर जैसे जादू से

हमारे सामने स्ट्रॉ डली नींबू-सोडा की बोतलें उपस्थित हो गई थी। जब तक हमारा नींबू-सोडा खत्म हुआ, वह घर चलने को तैयार थे और संग में थी मिट्टी की सौंधी खुशबू वाली हड़िया में ताज़ी रबड़ी जिसे पत्ते से ढक, वे चल पड़े थे।

बच्चों से विशेष लगाव तो था ही उन्हें, उनको पढ़ता देख हमेशा बहुत खुश होते, कोई अच्छे नंबरों से पास होता तो उपहार लाते, किसी के नंबर कम आने पर उसे समझाते और प्रलोभन भी देते रहते। कभी-कभी समझ नहीं आता था कि जो व्यक्ति स्वयं पढ़ाई से इतना दूर भागता रहा हो, वह दूसरों को प्रेरित करने के लिए इतना प्रयास क्यों करता है। हाँ शायद कुछ सच वक्त गुज़रने के बाद समझ आते हैं, संभवतः उनके साथ भी ऐसा ही था।

बरस-दर-बरस उनके कच्चे लिपे आँगन वाले घर में नीम की सघन छाँव में बिताई गरमियों की छुट्टियों की छाप है मन पर।

एक और शौक था उनका कबूतर पालने का। एक बार छुट्टियों में पहुँचे, तो देखा आँगन के एक छोर पर ऊँची-ऊँची दो अलमारी-सी लगी हुई थी, जिनकी ऊँचाई में छः और लंबाई में चार बक्से थे। उन सभी में सुंदर नर्म रुई से... छोटे-छोटे सफ़ेद कबूतर। साँझ को उन्हें दाना-पानी देकर उड़ने के लिए छोड़ा जाता, तो वे आकाश में गोल-गोल चक्कर काटकर वापस लौट आते। हम बच्चे हैरान होते कि कबूतरों को घर याद कैसे रहता है। इस पर नेताजी हँसकर कहते, “मैंने उन्हें जादू सिखाया है।” सच हमारे लिए बड़े जादूगर थे वे।

जब उनका विवाह हुआ था, वह बारात में गई थी! गाँव की बारात में महिलाएँ नहीं जाती थीं, लेकिन बच्चियाँ जाती थी। सभी लड़कियाँ गई थीं धूल भरे रास्ते पर बस की लंबी यात्रा और यात्रा के अंत में एक सपनों का सा गाँव, सीधे-साधे लगभग एक जैसे बड़े-बड़े घर रंगीन कागज़ों की तिकोनी झंडियों से सजा गली द्वार और बहुत बड़ा-सा आंगन। मुख्य द्वार खुलता था दालान में और उससे

दो सीढ़ी नीचे उतरकर था आंगन। आंगन के दो छोरों पर बरामदे और उनके भीतर कमरे, एक ओर एक बड़ा रसोईघर। छत पर चढ़ने को बिना दीवार की लिपी हुई सुंदर-सी खुली सीढ़ियाँ।

दो दिन की बारात में जमकर खातिरदारी हुई। आज बड़े-बड़े पाँच सितारा होटलों में किसी विवाह में जाने पर भी मन ऐसा प्रसन्न नहीं होता, जैसा वहाँ उस छोटे-से गाँव में हुआ था। आत्मीयता और नेह की बरसात में रस्मों-रिवाज़ों से भरे दो दिन ऐसे बीते कि पता ही नहीं लगा। घी बूरे वाले चावल और लड्डू की याद आज भी ताज़ा है स्मृतियों में और उतनी ही ताज़ा है सभी पुरुषों की पीठ पर पड़े हल्दी के छापे। खैर विदा हुई और हम लाल साड़ी और गोटे वाली चुनरी में लिपटी हाथ भर का घूँघट काढ़े, प्यारी-सी किरण मामी को घर ले आए। बहुत प्यारी पतली-दुबली परियों-सी सुंदर थी। नानी और मामा का छोटा-सा संसार परी के आगमन से ठीक तरह से सज-सँवर भी न पाया था कि क्रूर नियति ने उसे उनसे छीन लिया। केरोसिन का स्टोव फटा था और नायलॉन की साड़ी ने इतनी तेज़ी से आग पकड़ी कि बुरी तरह झुलस गई थी मामी। ऐसी कि कोई कुछ भी ना कर सका। नानी ने बहुत कोशिश की थी बचाने की, उनके हाथ भी बुरी तरह जल गए थे। हफ्तों लगे थे, उन्हें ठीक होने में। पूरे परिवार पर ऐसा ग्रहण लगा था कि हँसते-मुस्कुराते चेहरों पर मुर्दनी छा गई थी। मुस्कुराना तो दूर सब बोलना भी भूल गए थे। एक तो मामी को खोने का दुख था ही, ऊपर से विवाह के सात वर्ष पूरे ना होने के कारण सब संदेहों के दायरे में... पुलिस कचहरी भी हुई, लेकिन सब निर्दोष थे, तो निर्दोष ही रहे।

नेताजी आते-जाते रहे लेकिन उनकी मुस्कान के भीतर की उदासी उसे दिखती थी, अंधी खोह-सी, जो सब कुछ लील ले। भीतर तक चीरती थी वह उदासी। जो इन्सान सदैव दूसरों में मुस्कान बाँटता रहा हो, उसका इस तरह जड़ हो जाना बहुत

अखरता था।

बच्चों को देख कुछ सतही मुस्कान आती थी, पर वह देख सकती थी उसके नीचे का छुपा दर्द। सब के सो जाने पर भी मामा की आँखें शून्य में ताकती रहती थीं। ढिबरी की मध्यम काँपती लौ में उनके कोरों से ढुलकते आँसुओं को देखा था उसने। वो आँसू जो बूँद-बूँद ढुलक वेदना को माला में नहीं पिरोते थे, वे परनालों से बहते जाते थे।

फिर कुछ समय बाद उन्होंने अपनी अच्छी खासी चलती हुई दुकान को बंद करने का फैसला ले लिया। नाराज और दुखी नानी के कहने-सुनने का कोई फर्क न था। सब समेटकर नेताजी ने ड्राइवरी करने का निश्चय लिया था। और ड्राइवरी भी ट्रक की। यायावरों के जैसे ट्रक लेकर निकलते, तो कई-कई हफ़ते न लौटते थे। घरवाली के जाने के बाद घर से मोह ही न रहा था शायद। इकलौते बेटे को यूँ भटकता देखकर नानी बहुत दुखी होती थी। जब-जब वे बीच में घर आते, कभी प्यार से कभी मनुहार से, तो कभी आवेश में हर प्रलोभन हर प्रकार से रोकने की कोशिश करती। वह सुनते, धीरे से सुनते और फिर उनके गले में बाहें डालकर कहते “ओ माँ मेरी, मत रोक मुझे। घर में मेरा दम घुटता है। दीवारों से किरण की चीखें सुनाई पड़ती हैं। लेकिन जब मेरा ट्रक हवा से बातें करता है, मैं पंछी-सा उड़ता हूँ। किरण मेरे आगे-आगे उड़ती हैं। जब मैं सूरज की किरणों को चूमता हूँ, लगता है अपनी किरण को मिल रहा हूँ।” बरसों-बरस यही चलता रहा। उस ज़माने में फोन तो होते नहीं थे और चिट्ठी वो कभी लिखते नहीं थे। हर दिन इंतज़ार का होता था। उनके जाने के सप्ताह भर बाद से ही इंतज़ार के दिन शुरू हो जाते थे, लेकिन खत्म कभी हफ़्तों, तो कभी महीनों में ही होते थे।

फिर एक रोज़ वो वापस आए, तो साथ में एक क्षीणकाय, सहमी, सकुचाई-सी, साँवले रंग की तीखे नैन-नक्श वाली युवती थी। डरी-डरी सी फैली हुई आँखें, उतरा हुआ म्लान मुख।

सब हैरान थे... लेकिन किसी को कुछ कहने का साहस न था।

डरी हुई हिरनी-सी कृष्णकाय युवती को नानी ने एक बेटी की तरह हृदय से लगा लिया था। बचपन से लेकर उस रोज़ तक जो दुख सहें थे उसने, वह सुनकर नानी द्रवित हो गई थी।

गाँव में जन्मी और गाँव में ही पली थी सामली। बारह बरस की थी, जब बाढ़ में माँ और बाप दोनों बह गए।

कुछ बरस तक मामा-मामी ने रखा, छोटी-सी बच्ची ने मामी की पूरी गृहस्थी संभाल रखी थी। एक रोज़ दूसरे गाँव में ब्याही बड़ी बहन आई, तो उसे लगा कि उसकी बहन मामी के लिए क्यों काम करे और बहुत प्रलोभन देकर, मान-मनौवल कर अपने साथ ले चली आई। बहन ने उसका जीवन सँवारने की न सोची, अपनी गृहस्थी के काम बँटाने की ही सोची बस। जीजा के इरादे कुछ और ही थे। एक दिन जब बहन बाज़ार गई थी, जीजा के कुछ दोस्त आए। उससे पानी लाने को कहा... वह मुड़ी और उस मुड़ने के बाद कुछ याद न रहा... उसके बाद जब होश आया, तो खुद को हाथ-पैर बँधा हुआ ट्रक के पिछले हिस्से में पड़ा पाया। किस्मत से वह ट्रक एक ढाबे के पास रोका गया था और नेताजी भी खाना खाने को वही रुक गए। ट्रक से उतरे ही थे कि अजीब सी गूँ-गूँ की आवाज़ सुनाई दी। बस फिर क्या था... कुछ लोग हवालात पहुँचे और सामली यहाँ।

नानी कहीं झीनी-सी आस उसमें देख रही थी, अपने बेटे का घर बसाने की। सामली भी तन-मन से सबकी सेवा में जुट गई थी, लेकिन मामा का व्यवहार किसी की समझ में न आता था। जब उसे लाए, उसके दो रोज़ बाद ही ट्रक लेकर फिर निकल गए थे। जितनी बार लौटे नानी ने कहा फेरे डाल लो इस लड़की के साथ, किंतु वह न जाने किस मिट्टी के बने थे। अपनी ज़िन्दगी किरण के नाम ऐसे कर चुके थे कि बस चार माह की दुल्हन किरण को

भूल न पाते थे। उनका एक ही कहना था, मैंने इसे सहारा इसलिए नहीं दिया कि इससे ब्याह करूँ। आश्रय देने वाले और आश्रिती के संबंध को मैं ब्याह कर कलकित नहीं कर सकता। इसकी विपत्ति देख मैंने सहारा दिया इसे। वैसे भी इसकी उम्र और मेरी उम्र में बहुत अंतर है। वह सर्दी की धूप है, तो मैं गर्मी की तपती दोपहर। यह पढ़ना चाहे तो दाखिला करा दो इसका।

सामली कक्षा छः तक पढ़ी थी, उन्होंने उसे दसवीं का प्राइवेट फॉर्म भरवा दिया। लड़की मेहनती भी थी और आत्मसम्मान की धनी भी। 10वीं फिर 12वीं पास कर बी.टी.सी. की ट्रेनिंग पूरी और गाँव के ही बालिका स्कूल में नौकरी पर लग गई।

अब मामा के घर आने के अंतराल बढ़ते जा रहे थे। पहले चाहे कितने दिन न लौटे हों, त्योहार पर ज़रूर लौट आते थे। अब नानी के त्योहार भी बेटे की राह देखते निकलने लगे थे। सामली अपनी तरफ़ से पूरा ख्याल रखती थी वृद्धा नानी का, लेकिन माँ की आँखें बेटे की राह तकते धुंधलाने लगी थीं। अब तो घर खर्च भी सामली ही चला रही थी। वैसे भी जिस दिन से वह आई थी नानी के घर की रंगत सुधर गई थी। उस दिवाली तो उसने पूरा घर अपने हाथ से ही चूने से पोत दिया था। आस उसे भी होती थी कि नेताजी लौट आएँगे, लेकिन नानी को दिलासा देती रहती थी। नानी पर उम्र का तकाज़ा हो चला था। उनका स्वास्थ्य गिरने लगा था। वह लगातार बेटे को याद करती रहती। सामली के पास दिलासे और ममता के सिवा कुछ और था भी नहीं। हर दिन घुट्टी-सा घोलकर पिला देती और दिलासे की ही संजीवनी पाकर नानी कुछ और जी जाती। उस जीती हुई नानी को वह एक बच्चे की तरह संभाले हुए थी।

एक दिन सामली स्कूल से लौटकर हाथ मुँह धो रही थी। नानी धूप में चारपाई पर ऊँघ रही थी कि तभी दरवाज़े की सांकल खटकी। सामली ने दरवाज़ा खोला, तो नेताजी को देखकर हक्की-बक्की रह

गई। लगता था पहले के नेताजी की कोई छाया हो बस, बेहद कमज़ोर। जैसे एक बरस, बरसों को निकालकर गुज़रा हो। बढ़े हुए बाल, बढ़ी हुई दाढ़ी, धूप से जला चेहरा, कुछ बदहवास से, उसे देखते ही उनका पहला सवाल था माँ है अभी?

शायद कोई बुरा सपना देख मीलों दौड़ते चले आए थे। दिल के रिश्ते ऐसे ही होते हैं, चेतना में कितना उनसे प्रभावित न होने का दिखावा करते रहो, अवचेतन को झिझोड़ डालते हैं।

सामली ने एक तरफ़ हो अंदर आने का रास्ता दिया और आंगन में धूप में लेटी माँ की ओर इशारा कर दिया। जब पानी लेकर आई, तो उसके पैर अकस्मात ही रुक गए, जब उसने देखा दोनों माँ-बेटा एक दूसरे के हाथ पकड़े बस रोए जा रहे थे। अश्रुओं की धार बरसात में बह रहे किसी उद्दाम जल प्रपात-सी निर्बाध बहे जा रही थी। माँ-बेटे के इस कारुणिक मिलन को देख वह द्रवित हो गई थी। आँसू उसके भी रोके न रुक रहे थे। इनके बिछोह का कारण वह स्वयं को ही मानती थी। यद्यपि नानी ने कई बार समझाया था कि नेताजी पहले से ही ऐसे थे, यायावरी उनके स्वभाव में है। वह फिर भी कहीं खुद को दोषी रखती थी। समय कुछ पल ठहर-सा गया। तीनों एक अदृश्य नेह बंधन में लिपटे उस पल को सोखते रहे...

सामली नेताजी के सामने बहुत कम बोलती थी। आज निश्चय कर पहली बार नेताजी की ओर देखकर बोली, “मुझे लगता है आपके घर से दूर रहने का कारण मैं हूँ। माँ को अब आपके यहाँ रहने की ज़रूरत है और जिस तरह आप आज लौटे, शायद आपको भी। मेरे यहाँ रहने की सज़ा अपनी माँ को और अपने आप को न दें। जब से स्कूल में पढ़ाना शुरू किया है, कई लोगों से परिचय हो गया है। कहीं-न-कहीं आसरा बन ही जाएगा।”

“नहीं तुम यायावरी की नहीं तुम तो मेरी बेफ़िक्री की वजह हो। तुम यहाँ हो, तो मुझे माँ की फ़िक्र नहीं रहती, मेरी विनती है तुम यहाँ रहो माँ के पास,



इस समय मुझसे अधिक तुम पर निर्भर हैं वो। जाने कौन जन्म के बंधन होते हैं, जो बिना किसी कारण हमें कहीं से कहीं पहुँचाते हैं। तुम्हें यहाँ पहुँचना था, तुम पहुँची और अब तुम्हारे यहीं रहने की ज़रूरत है।”

“ज़रूरत तो आपकी भी है यहाँ...”

“मैं जानता हूँ तुम सब संभाल लोगी।”

“नहीं अब आप नहीं जाएँगे, या तो अब आप भी यहीं रहेंगे अन्यथा मैं भी यहाँ से चली जाऊँगी।”

“ये कैसा आग्रह है?”

“नेह का आग्रह समझ लीजिए”, कहते हुए कपोल रक्तिम हो गए थे। पाँव का अँगूठा लगातार कच्चे फर्श पर कुछ आकृति बनाने का प्रयास कर रहा था। जाने कैसे आकृति में हर बार प्रश्न चिह्न बन जाता था।

“मैं विवश हूँ सामली, मैं बार-बार प्रेम नहीं कर सकता। एक बार किया, सदा के लिए किया। मैं कभी किरण को भूल नहीं सकता।”

“मैं भूलने को नहीं कहती।”

“अभी नहीं कहती, लेकिन मुझमें जिस तरह वो है, तुम्हें दुखी करेगा। प्रेत से बेहतर सच की सौतन होती है, उसका सामना किया जा सकता है, उस पर नाराज़ हुआ जा सकता है। उससे ईर्ष्या की जा सकती है और शायद किन्हीं अवसरों पर प्रेम भी किया जा सकता हो। लेकिन जब मुकाबला मेरे मन पर गिरपत बना चुकी अदृश्य आत्मा से होगा, तो सच मानो नहीं संभाल पाओगी। तुम बहुत अच्छी हो, मैं तुम्हें दुख नहीं देना चाहता, इन बंधनों में कुछ

नहीं धरा सिवाय दुख के।”

“बंधन तो न चाहते भी पड़ ही चुका है। अब यदि मैं कहूँ कि तुम्हारा दुख भी मुझे जीवन देगा।”

“जब तुम्हें साथ लेकर आया था, तभी माँ से कहकर गया था मुझे मत बांधो। तुम मिली, साथ ले आया, ये न सोचा था कि इस कर्म से भी मैं अपने बंधने का सामना कर रहा हूँ।”

“तो मुक्त कर दीजिए मुझे भी, इस बंधन से, जो बिन बांधे पड़ गया है।”

उसके स्वर की पीड़ा नेताजी को भीतर तक बीध गई थी। किसी को भी दुख देना उनके स्वभाव में न था... अगले ही दिन चार गवाहों की उपस्थिति में मंदिर में नेताजी और सामली का गठबंधन हो गया था।

माँ को शायद नेताजी का घर बसा देखने की ही आस थी। नेताजी के हाथ में सामली का हाथ दे असीसती रही देर तक। दोनों के सर पर आशीर्वाद व ममता के हाथ फेर एक ऐसी तृप्त नींद सोई कि फिर नहीं उठी।

माँ के सब काज पूर्ण होने तक नेताजी वहीं रहे, लेकिन उसके बाद उनकी शून्य में ताकती आँखों के रंग न पढ़ पाने पर सामली ने उन्हें अपनी ओर से मुक्त कर दिया।

आखिरी जो सुना था उनका, वह किसी कबीरपंथी टोले में शामिल हो निर्गुण भजन गाते घूमते थे और उसमें भी अधिकतर वह यही गाते सुने जाते थे — ‘*कछु लेना न देना मगन रहना...*’

**bhawnasaxena@hotmail.com**

जनवरी का महीना इस वर्ष अपनी ही धुन में न जाने कौन—सा गीत गा रहा था। सर्दी थी कि वह भी इन दिनों पूरे जोरों पर थी, ठंड से मुँह छुपाकर सूर्य देव भी बादलों के कम्बल में अभी तक अपनी उन्मादी आँखों को झपका रहे थे। सवेरे के दस बजने वाले थे पर मसूरी का माल रोड अभी तक सो रहा था। हाँ कभी इक्के—दुक्के आदमी के चलने की आहट अवश्य आ जाती थी।

मधु की आँख खुली, तो लगा शरीर अभी तक भारी है, सिर घुमाकर देखा, तो दोनों बच्चे रजाई में तीन कोने बने सर्दी से लड़ने का प्रयत्न कर रहे थे। सार्थ की उम्र आठ साल और आन्या की पाँच थी। दूसरी तरफ़ नज़र गई, तो पतिदेव की दशा देख उसकी तो हँसी ही छूट गई, जो रजाई के साथ खींचातानी में लगा हुआ था। बेचारे सुनील ने तो हर नाकाम कोशिश की थी कि इस वर्ष गर्मी की छुट्टियाँ वे लोग गोवा में ही बिताएँ, पर बच्चों और मधु के आगे जब उसकी एक न चली, तो मन मारकर उन सबका साथ देने उसे मसूरी आना ही पड़ा। ये तो मधु को पहले से ही पता था कि सर्दी और पहाड़ों के नाम से सुनील को चिढ़ थी, पर क्यों? यही तो वह जानना चाहती थी। दार्जिलिंग और नैनीताल जैसे पहाड़ों पर तो वो खुशी—खुशी उनके साथ कई बार जा चुका था, वो भी बिना किसी न नुकर के, फिर मसूरी को ही ना क्यों? कितना मनाने पर भी यहाँ के लिए राज़ी न हो रहा था। पता नहीं क्यों मसूरी के नाम से ही भड़क उठता और फिर घंटों के लिए एकांतवास पर निकल जाता, न किसी से हँसना, न बात करना। उसकी इन्हीं बातों से मधु का शक धीरे—धीरे यकीन में बदलता जा रहा था कि कहीं—न—कहीं कुछ तो गड़बड़ है। उसने सोचा, हो

सकता है उसकी इस परेशानी का इलाज भी वहीं कहीं मसूरी में ही न छुपा हो, पर यह सच्चाई तो वहाँ जाने पर ही प्रकट हो सकती थी। यही सोचकर उसने यह दृढ़ कदम उठाया और बच्चों को भी मना लिया कि इस बार उन्हें मसूरी ही जाना है, हालाँकि एक अनजाना—सा डर उसके मन में भी समाया हुआ था, पर कुछ पाने के लिए कुछ आहुतियाँ तो देनी ही पड़ती हैं। मधु का सबसे बड़ा विश्वास तो उस ऊपर वाले पर था, जो उसकी हर इच्छा पूरी करेंगे और उसे जीवन में कभी भी निराश नहीं होने देंगे। इसी भरोसे पर वह कोई भी कदम उठाने को तैयार थी।

पहाड़ों के दीवाने तो वे हमेशा से ही थे, पर इस बार मधु की उत्सुकता भी दिन—ब—दिन बढ़ रही थी कि आखिर मसूरी को ही ना क्यों? दूसरी ओर डर भी था कि कहीं कुछ उल्टा न हो जाए। उसे सुनील भी आजकल कुछ उखड़ा—उखड़ा और किसी चिंता में डूबा—सा लग रहा था। सुनील भी मधु और बच्चों का ध्यान भटकाने की पूरी कोशिश कर रहा था कि किसी तरह मसूरी न जाना पड़े। कितने बहाने भी बनाए कि यहाँ सर्दियाँ काटनी मुझे भारी लगती हैं। उस पर अरे बाबा! मसूरी की ऐसी कड़कड़ाती ठंड, लेकिन सब जानते थे कि असलियत तो कुछ और थी। अंदर ही अंदर उसका अपना दिल भी बैठा जा रहा था। किसी से अपने मन की कह भी तो न पा रहा था। पहाड़ों की छुट्टियाँ उसे इस बार किसी सिरदर्द से कम न लग रहीं थीं। डरता था कि कहीं उसका बरसों पुराना राज़ न खुल जाए, जो उसे सबके सामने कायर न सिद्ध कर दे। अगर ऐसा हुआ, तो सबसे कैसे नज़रें मिला पाएगा या कहीं ऐसा न हो कि मसूरी की छुट्टियाँ उसके लिए

इस बार फिर कोई अनहोनी ले आए। आज तक उसने इतनी बड़ी बात मधु तक से छुपाई थी। वह स्वयं जिस आग में बरसों से जल रहा था, उसमें मधु को न झोंकना चाहता था। बच्चों से भी मज़ाक करता और कहता “सर्दियों का मौसम बच्चों मुझे हमेशा बीमार कर देता है, इसीलिए मैं सवेरे देर से उठता हूँ, ऑफिस भी देर ही पहुँचता हूँ। क्या तुम चाहोगे वहाँ आपके पापा बीमार हो जाएँ, चलो इस बार गोवा चलते हैं।” कुछ इसी किस्म की कहानियाँ सुनाकर बच्चों को बहला रहा था। वास्तव में इन बातों से वह खुद को समझाने की कोशिश कर रहा था। अब तो उसकी इन बातों से मधु को भी पक्का विश्वास होने लगा कि सर्दियों का तो महज़ एक बहाना है, सुनील उनसे ज़रूर कुछ छुपा रहा है। कभी-कभी अपने में ही गुम हो जाना या कहीं दूर खो जाना, आखिर कुछ तो था, जिसे वह सिर्फ़ अपने तक ही रखना चाहता था। शुरू-शुरू में एक दो बार जब उसने जानना चाहा, तो सुनील ने बस इतना ही कहा —

“कुछ राज़ यदि राज़ ही रहें, तो सबके लिए अच्छा होगा। ज़ख्म बाहर आने पर अधिक तकलीफ़ देते हैं।”

‘ज़ख्म’ शब्द से ही मधु सिहर जाती। भले ही कारण कुछ भी रहा हो और चाहे उसे खटकता भी रहा हो, पर आज इस माहौल को वो हल्का ही रखना चाहती थी और इस बात के लिए वह अपनी मसूरी की छुट्टियों पर भी कोई आँच न आने देना चाहती थी।

मधु ने दिल दहला देने वाले खयालों को एक झटके से अपने से दूर कर अपना मूड बदला, नहीं तो गड़बड़ होने की आशंका प्रबल हो सकती थी, जो वो होने न देना चाहती थी।

आदतानुसार सर्वप्रथम उसने बालकनी का रूख किया। अरे वाह!! क्या दृश्य था पहाड़ी चोटियों पर, मेघों का नृत्य इतना मनमोहक भी हो सकता है क्या, गोवा वालों ने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा होगा, पर

उसे क्या, नज़र नीचे दौड़ाई, तो देखा भीगी सड़कों से आती माटी की भीनी-भीनी सुगंध मानो रग-रग में मेहंदी-सी रच-बस गई हो। प्राकृतिक सौन्दर्य की तो वो बचपन से ही दीवानी थी, सवेरे मुँह अंधेरे उठकर लॉन की गीली घास पर नंगे पैर चलना, तो मानो उसकी जान थी। पापा से सुना भी था —

“बेटा ऐसा करना सेहत के लिए भी काफी फायदेमंद होता है।”

काश, इन सब में सुनील भी उसके साथ होता, तो कितना अच्छा होता, पर अफ़सोस घर के बाकी लोगों को नींद के खर्राटों से फुर्सत मिले, तो इस नफ़ा-नुकसान के बारे में सोचें।

आज उन लोगों का कैम्टी फ़ॉल जाने का प्रोग्राम बना हुआ था। सुना तो था कि सुनील भी एक बार वहाँ गया था और जगह भी इतनी बुरी नहीं कि वहाँ दोबारा न जाया जा सके, फिर क्यों सुनील आनाकानी कर रहा था, थी तो सोचने वाली बात, पर खैर, उसने इस दिशा में अब सोचना ही छोड़ दिया। उसका मन तो सवेरे ही निकलने का था, पर उन सबकी हालत देख उसे तरस आ गया और उसे अपना मन मसोस कर रह जाना पड़ा। घड़ी पर नज़र दौड़ाई।

“उफ़! दस बज चुके हैं।”

सोचा अब देर की तो सारा दिन ही खराब हो जाएगा, सो बच्चों की रजाई खींची और न जाने क्या-क्या लालच दे उन्हें अपने पैरों पर खड़ा किया। बेचारे मरते क्या न करते, आँखें मलते उठ बैठे। अब बारी थी सुनील को उठाने की, जो सबसे भारी काम था। पर ऊपर वाले का शुक्र था कि वो भी अनमने मन से सही, पर उठ गया। मधु ने गौर किया कि सुनील का चेहरा उतरा हुआ था। सामान सारा पहले ही से तैयार था, सो वे निकल पड़े अपने उस दिन के मिशन पर।

सूरज सिर तक चढ़ चुका था। मीठी-मीठी धूप पेड़ों से छनकर आ रही थी और अब तो धरती से आँख मिचौली भी खेलने लगी थी। इस मनमोहक

धूप-छाँव का आनंद लेते वे लोग आगे बढ़ने लगे। रास्ता काफी ऊबड़-खाबड़ था। लम्बा भी था और लगभग डेढ़ घंटे का पैदल पहाड़ी रास्ता उन्हें अभी भी तय करना बाकी था। रास्ते में सुनील ने गिरी हुई डालियों से डंडे बनाकर सबके हाथों में पकड़ा दिए थे, जो अब उनका सहारा बने हुए थे। दोनों बच्चे मार्ग का आनंद लेते तेजी से आगे बढ़ रहे थे, बीच-बीच में मधु उनको हिदायतें देती जाती थी कि कहीं गिर न जाएँ और लेने के देने न पड़ जाएँ। इस शोर शराबे के बीच सिर्फ एक सुनील ही ऐसा था, जो शांति से आगे बढ़ रहा था। न जाने किस चिंता में डूबा था। मधु को ऐसा लग ही नहीं रहा था कि वो उनके साथ था। इतना सुंदर मौसम, हल्की-सी मीठी ठंड, उस पर भी अपने में मगन खोया-खोया-सा, मानो गंतव्य तक पहुँचने की उसे कोई जल्दी न थी। तभी सार्थ चिल्लाया —

“माँ देखो झरना।”

उसकी आवाज़ पर हमने भी अपने कदम तेज़ कर दिए, यूँ तो मैं कई बार वहाँ जा चुकी थी, फिर भी मुझे मेरा बचपना बच्चों से कम न लग रहा था।

एक विशालकाय झील हमारे सामने थी, धूप में झिलमिलाता उसका चाँदी-सा चमकता पानी पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए अकेला ही काफी था। उस पर सोने में सुहागा यह कि सामने की पहाड़ी से एक बड़ा-सा झरना उस झील में ऐसे गिर रहा था, मानो सीधा आसमान से ही उतर कर आ रहा हो। आन्या तो पानी देखते ही खुशी से चीखने भी लगी, पर झरने के उस शोर में हमें कुछ भी सुनाई न दे रहा था। इतनी ठण्ड होने पर भी झील में पचासों लोग समाये हुए थे, जिनमें बच्चे, औरतें, बड़े, बूढ़े सभी थे, किंतु लगता था जैसे आज बूढ़े भी बच्चों से कम न थे। हालाँकि झील का पानी काफी ठंडा था और वे सभी काँप भी रहे थे, पर उनके उत्साह ने आज कड़कड़ाती सर्दी तक को पछाड़ दिया था। धूप की किरणें जब

उस पानी पर पड़ती, तो लगता जैसे चारों ओर चाँदी ही चाँदी आसमान से बरसी हो। आन्या जल्द ही पानी में ठिठुरने लगी, फिर भी बाहर आने से कतरा रही थी। मैं भी बच्चों में कुछ ऐसी खोई कि सुनील तक को भूल गई। लगभग एक घंटे पानी का आनंद लेने के बाद जब काँपते हुए दोनों बच्चे बाहर आए और खाने की फ़रमाइश करने लगे, तो मेरा भी ध्यान सुनील की ओर गया, जिसके पास टिफ़िन था, लेकिन वो कहीं नज़र नहीं आ रहा था। एक पल को तो मैं भी घबरा उठी, पर जब दूसरे ही पल वो चीड़ के पेड़ की छाँव में धूप सेंकता नज़र आया, तो मेरी जान में जान आई। बिना एक क्षण के नागा किए हमारे कदम तुरंत उसकी ओर मुड़ गए। वहाँ पहुँचकर देखा, तो सुनील तो कुछ ज़्यादा ही गम्भीर लगा। पहले मैंने सोचा, हो सकता है अकेले बोर हो गया हो, डरपोक तो वो है ही और पानी से न जाने क्यों इतना कतराता है, सो पानी में तो जाएगा नहीं, पर जब गौर किया तो उसकी आँखें डबडबाई और सूजी-सी लगीं। मुझे लगा कुछ पूछा, तो कहीं रो न पड़े, मेरे तो हाथ पैर फूल गए कि ये क्या हुआ। न जाने क्यों एक क्षण को तो दिमाग ने भी काम करना बंद कर दिया, पर फिर खुद को संभाल, कारण जानने की कोशिश करने लगी। सुनील पहले तो कुछ हिचकिचाया। उस क्षण मुझे महसूस हुआ कि आदमी इतना बेबस क्यों हो जाता है, जब अपने मन का दर्द इस डर से न बाँट सके कि कहीं उसे कमज़ोर न समझ लिया जाए। पुरुषों की इस विडम्बना पर दुख के साथ-साथ मुझे हँसी भी आई। आखिर क्यों? पुरुष भी तो औरतों के समान ही इंसान हैं, उनके भी तो जज़्बात हैं, कमज़ोरियाँ हैं, पर आगे कुछ सोचने का वक्त ही कहाँ था, सो जल्द ही खुद को संभाला और परिस्थिति की नाजुकता को ध्यान में रख चुप रहना ही ठीक समझा।

कुछ पल शांत रहकर सुनील ने स्वयं ही धीमी आवाज़ में कहना आरंभ किया।

“कॉलिज के दिनों की बात है, मैं छुट्टियों के दौरान अपने दो दोस्तों के साथ यहाँ पिकनिक पर आया था। उन्हीं दिनों हम कैम्प्टी फॉल भी घूमने आए थे। मुझे ठंडे पानी में उतरने से कितना डर लगता है, ये तो तुम्हें पता ही है, सो मुझे छोड़कर बाकी दोनों दोस्त झील का आनंद लेने लगे और मैं दूर से बैठा उनके आनंद से संतुष्ट आनंद लेता रहा। वे हँसते और खिलखिलाते रहे। रह-रहकर मुझ पर भी ठंडे पानी के छींटों की बरसात करते रहे। इससे बचने के लिए मैं भी नाकामयाब होने का नाटक करता रहा। इसी प्रकार मौज मस्ती चलती रही। उस पर मौसम इतना सुहाना था कि वापस दिल्ली की गरमी में जाने का हममें से किसी का मन न था। मैं सोचने लगा कि काश मैं भी उनकी तरह झील में उतर सकता, मन तो किया पर जाने क्यों आगे बढ़ने की हिम्मत न जुटा सका।”

मैं उसकी बातें चुपचाप सुनती रही। मुझे महसूस हो रहा था, जैसे आवाज़ कहीं बहुत दूर से आ रही थी। मैं भाव विभोर हो उठी क्योंकि उस वक्त उसके दर्द को कोई भी बंद आँखों तक से पहचान सकता था। पीड़ा उसके पोर-पोर से उमड़ रही थी। मैं पछता भी रही थी, मुझे लगा यहाँ आकर हमने शायद कोई बहुत बड़ी गलती कर दी थी। उसकी न जाने किस दुखती रंग पर अनजाने ही हमने ऊँगली रख दी थी, पर अब बहुत देर हो चुकी थी। तीर कमान से निकल चुका था।

“बारिश में भी मेरे दोस्त झील से निकलने का नाम न ले रहे थे।” सुनील बोलता जा रहा था। “मैंने उनसे कई बार विनती भी की, पर वे थे कि टस-से-मस होने का नाम न ले रहे थे। अंधेरा होने लगा था, हमारे अलावा वहाँ कोई न था, सभी वापस जा चुके थे। मैं भी अपना थैला लेकर खड़ा हो गया कि अचानक मुझे विनीत के चीखने की आवाज़ सुनाई दी, जो बचाओ-बचाओ चिल्ला रहा था। मैं घबरा गया, मेरे मुँह से डर के मारे आवाज़ ही नहीं निकल रही थी। अंधेरा इतना था कुछ भी तो साफ

नज़र नहीं आ रहा था। मैं झील की ओर भागा, तो देखा कि मनोज तो डर के मारे पहले ही झील से बाहर आ चुका था। उसे काटो तो खून नहीं, चेहरा खौफ़ से पीला पड़ा हुआ था। मैंने बहुत चाहा झील में उतरकर उसकी सहायता करूँ, पर हिम्मत न जुटा सका। उस पल अपने आप को बहुत कोसा भी। कितनी देर तक विनीत की दर्दनाक चीखें हमारे कानों को चीरती रहीं। अंधेरा बढ़ रहा था, दूर-दूर तक कोई न था, जो सहायता करता। हम दोनों ही डर से थर-थर काँप रहे थे। कहाँ जाएँ, क्या करें, किसे पुकारें, कुछ समझ नहीं आ रहा था। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। ऐसे में तो परिंदा भी पर न मारे, सहायता को कौन आता।

आखिरकार चीखें धीरे-धीरे समाप्त हो गईं। विनीत का शरीर झील में समा चुका था। मैं कहानी में पूरी तरह खो चुकी थी कि एक गहरी सांस लेकर सुनील ने फिर कहना आरम्भ किया।

“सतह पर अब कुछ न था। झील का पानी तांडव नृत्य कर एक बार पुनः शांत हो चुका था। हम दोनों रात भर वहीं बैठे रहे। भला विनीत को कैसे अकेला छोड़ देते। उसकी चीखें आज भी मेरे जेहन में गूँज रही हैं, उन्होंने मुझे कभी एक पल भी चैन से सोने न दिया। मैं उसके बाद से हर छोटी-सी-छोटी बात पर भी डरने लग गया था। आगे की पुलिस कार्यवाही ने रही सही कसर भी पूरी कर दी। पूरा का पूरा वाकया दोबारा हमारे सामने जीवंत खड़ा कर दिया गया। न जाने कितनी बार हमें उन्हीं बातों को दोहराना पड़ा, जिन्हें हम भूलना चाहते थे। इतनी कम उम्र में इतना भारी झटका हमें भीतर तक हिला गया था।”

मेरे रोंगटे खड़े हो गए थे और मैं उस समय कुछ भी कहने की स्थिति में न थी कि कहानी आगे बढ़ी। “उस दिन से आज तक मेरे दिल पर एक बोझ था कि अगर मैं कुछ हिम्मत करता, तो शायद आज विनीत हमारे बीच होता। उसका चेहरा आज भी मुझे मेरी कायरता की याद दिलाता है। उसके

माता-पिता की शक भरी नज़रें अब भी मेरा पीछा करती हैं।”

मधु की सांत्वना से उसे कुछ ढाँढ़स बँधा। लगा जैसे बोझ उसके सिर से उतर गया हो। सुनील भी अब काफी हल्का महसूस करने लगा था। उसने मधु और बच्चों को धन्यवाद दिया, जो उसे ज़बरदस्ती मसूरी लाए थे। नहीं तो जीवन भर इस पाप का बोझ उसे अकेले ही ढोना पड़ता। एक लम्बे अरसे बाद उसने आज चैन से खाना खाया। बच्चों के साथ हँसा और बातें कीं, मधु ने भी राहत की साँस ली। दिन ढल रहा था, अंधेरा घिरने को था, सो वे भी होटल वापस जाने की तैयारी करने में लग गए। आगे का समय हँसी-मज़ाक में कैसे बीता, उन्हें खुद पता न चला। सब ने अपने-अपने बस्ते उठाए और वापसी की पगडंडी पर कदम बढ़ाए ही थे कि किसी के चीखने की आवाज़ ने उनके पैर ज़मीन में गाड़ दिए। एक बार फिर झील से बचाओ-बचाओ की आवाज़ें आ रही थीं। सभी मुड़कर झील की ओर भागे। सुनील ने भी तेज़ कदमों से झील का रुख किया। क्या देखता है कि एक बच्चा ज़िंदगी और मौत से उसी झील में फिर एक बार लड़ रहा

था और आज भी वहाँ बचाने वालों में कोई न था। सुनील पहले तो हिचकिचाया, पर फिर ईश्वर का नाम ले हिम्मत कर झील में कूद पड़ा। उस बच्चे में आज सिर्फ़ एक ही चेहरा दिखाई दे रहा था, वो जोर-जोर से चिल्लाया “घबरा मत विनीत, मैं आ रहा हूँ, मैं आ रहा हूँ” और उसे खुद इस बात पर आश्चर्य हुआ कि कुछ ही पलों में वो बच्चे को साथ लिए वापस भी आ रहा था। वहाँ एकत्र लोगों ने तालियों से उसका स्वागत किया। आज उसका मस्तक गर्व से ऊँचा उठा हुआ था। न जाने क्यों आज न तो उसके हाथ-पैर काँपे और न ही उसे डर लगा। आज उसमें एक नया आत्मविश्वास जन्म ले चुका था। चेहरा खुशी से दमक रहा था। अपने ऊपर लगे हुए दाग को वो धो चुका था। विनीत को तो न बचा सका, पर इस बच्चे की रक्षा ने उसे भी नव जीवन प्रदान किया था। काले बादल अब छँट चुके थे। घुटन भरी ज़िन्दगी ने उसे एक नया सबक सिखाया था। कृतज्ञता भरी नज़रों से उसने आसमान की ओर देखा। सही माने में जीवन की कड़वाहट भरी टीस अब धुल चुकी थी और मीठी सुबह की लालिमा आसमान पर छाने लगी थी।

[kalpanal2008@yahoo.com](mailto:kalpanal2008@yahoo.com)

## हिम्मत की प्याली

— बीबी साहेबा फ़र्ज अली

त्रु दो दुस, मॉरीशस

शाम का समय था। अजय को छोड़कर घर के सभी लोग एक साथ बैठे गरमा-गरम चाय के साथ फूल गोभी के पकोड़े का मज़ा बड़े ही चाव से ले रहे थे। अचानक बाहर के ओटोमेटिक फाटक खुलने की ध्वनि सुनाई दी। दीवार वाली घड़ी में पाँच बजने को था। अपने पापा की प्यारी बेटि कुलफी तुरन्त अपनी जगह से उठी और खुशी के मारे— “मेरे पापा आ गए! मेरे पापा आ गए!” कहती हुई अपने बाप से मिलने चली गई।

दादी के पास बैठी कुलफी की बड़ी बहन पंखुड़ी अपनी ईर्ष्या जाहिर करते हुए मुँह बनाकर दबी आवाज़ में बोल पड़ी : “हूँ! जैसे कि उसके अकेले के ही पापा हैं।” तब दादी ने उसे बड़े प्यार से समझाते हुए कहा था “ना गुड़िया! ऐसी बात नहीं है। वह तुम्हारे भी तो पापा हैं, मगर कुलफी छोटी होने के कारण बहुत लाड़-प्यार से भरी है और...”

दादी की बात अभी समाप्त ही नहीं हुई थी कि अजय और कुलफी एक साथ अन्दर आ गए।



कुलफी के हाथ में चांदी का एक खूबसूरत फ्रेम था, जो बीमा-कम्पनी की ओर से अजय को उसके काम की प्रदर्शन-क्षमता के लिए आज ही दफ़्तर में बीमा कम्पनी के मुख्य मैनेजर के हाथों भेंट किया गया था। अजय ने कुलफी के हाथ से फ्रेम लेकर पंखुड़ी के हाथ में देते हुए— “भेंट की खुशी का हक केवल मेरे लिए नहीं है, बल्कि आप सब लोगों के लिए है, क्योंकि इस खुशी के प्रेरणा स्रोत इस घर के सभी लोगों से है।”

उस फ्रेम में स्वर्ण शब्दों में खुदे वाक्य को देखने और पढ़ने में दादी अपनी दोनों नातिनों के साथ लगी हुई थीं। विमाला अपनी जगह से उठी और अपने पति के हाथ का सूटकेस लेकर अपने कमरे की ओर बढ़ गई। अजय भी उसके पीछे-पीछे चला गया।

दादी अभी भी दोनों बच्चों के साथ बैठी गपशप में लगी थीं। नहाने और कपड़े बदलने के बाद अजय और विमाला दोबारा बैठक में आए। अजय अपनी माँ के करीब वाले सोफे पर बैठ गया। विमाला उस के लिए चाय के साथ गरमा-गरम पकोड़े ले आई। अजय ने सब से पहले गरम चाय की एक लम्बी चुस्की ली। फिर एक पकोड़ा उठाकर मुँह में रखने के बाद उसका स्वाद लिया और उसके बाद अपनी माँ से कहा : “वाह माँ जी! आप तो कोर्डो ब्ले (cordon bleu) से कम नहीं।”

“आपके हाथ के बने पकोड़े एकदम स्वादिष्ट हैं। आखिरकार आप अजय की माँ हैं।” अपने पिता की इस ग़लत परख पर कुलफी और पंखुड़ी को बहुत हँसी आई। दादी भी हँसने लगी थी। अजय को इन लोगों का हँसना बहुत अच्छा लगा। उसने कहा— “भला इस सच्चाई पर हँसने वाली कौन-सी बात सामने आ गई?” तब दादी ने खुद बताया — “इन पकोड़ों में मेरी बहूरानी के हाथों का कमाल है। इस तारीफ़ के योग्य केवल विमाला है बेटा, मैं नहीं।”

अजय चुप्पी साधे अपनी पत्नी की ओर देखने

लगा। विमाला को अपने पति की इस चुप्पी में उठे सवालों का जवाब देना ही पड़ा। वह बोली “आज माँ जी घर पर नहीं थीं। वे अपने वृद्ध लोगों के संगठन की प्रतिमासिक बैठक में गई थीं।” विमाला की इस बात पर अजय को एक टिप्पणी सूझी। उसने अपनी माँ की ओर देखते हुए कहा “इसीलिए आज मेरी प्यारी माता जी इतनी सजी धजी हुई हैं।”

पंखुड़ी ने दादी के गले में बाँहें डालकर तुरंत अपने पापा की टिप्पणी के जवाब में कहा “पापा आप भी! क्या आप को इतना भी नहीं पता कि ओल्ड इज़ गोल्ड। मेरी प्यारी दादी अभी जवान हैं।”

अजय ने अपनी माँ की ओर देखकर पूछा — “माँ जी आप की आज वाली बैठक कैसी रही?” अपने बेटे के इस प्रश्न पर दादी को खुशी हुई। उन्होंने आज की बैठक का संक्षिप्त विवरण दिया — “आज की बैठक में गाँव के सामुदायिक केंद्र के दो अधिकारी आए थे। वे हमें बता रहे थे कि इस साल के आने वाले वृद्ध दिवस के अवसर पर शुगर इन्डस्ट्री लेबर वेल्फ़ेयर फंड की ओर से एक पकवान प्रतियोगिता आयोजित होने वाली है। इस में प्लाक ज़िले के भी समुदायिक केंद्रों से जुड़े वृद्ध संगठनों के सदस्यों से भाग लेने की माँग की गई है। मैंने भागीदारी फॉर्म में अपना नाम दर्ज कर दिया है।”

अपनी माँ जी के इस उत्साह से अजय को खुशी हुई। उसने अपनी माँ के कंधों पर हाथ रखा और कहने लगा — “तब तो निःसंदेह उसमें जीत आप ही की होने वाली है माँ जी। अच्छा तो आप हमें यह तो बताइए कि प्रतियोगिता का प्रमुख विषय क्या रखा गया?”

दादी ने जब उसे बताया कि पुराणिक पकवानों पर अधिक ज़ोर दिया गया है, तो अजय ने अपनी राय जाहिर करते हुए कहा कि यह तो बहुत ही अच्छा विषय चुना गया है। उससे लोगों को इतना तो पता चल ही जाएगा कि इस दौर वाले फ़ास्ट

फूड के मुकाबले में पुराणिक पकवान स्वास्थ्य के लिए कितना लाभदायक है।

उस होने वाली प्रतियोगिता के लिए उन्हें एक हफ़्ते की समय रेखा दी गई थी। दादी उत्साहित तो थी ही, वे मन-ही-मन में अपने पकवान तैयार करने का आयोजन करने लगी थी। पकवान को ले के उनके मन में पहला सवाल यह उठा था कि पुराने ज़माने में हमारे पूर्वज लोग क्या खाते होंगे?

दादी जी को इस सवाल का जवाब उसकी कभी पढ़ी किताब 'लाल पसीना' से याद आ गया, जो कि हमारे मुल्क के प्रसिद्ध उपन्यासकार अभिमन्यु अनंत जी की कृतियों में से एक थी। दादी जी को वह उपन्यास बड़ा ऐतिहासिक लगा था। उस दौर में हमारे पूर्वज बदतर-से-बदतर जीवन गुज़ार रहे थे। खाने के अभाव में अधिकतर समय खाली पेट सोना पड़ता था।

आखिर में दादी ने एक साधारण पकवान तैयार करने का फैसला कर ही लिया, जो कम बजट वाला हो। प्रतियोगिता से एक दिन पहले दादी घर के पीछे वाले बगीचे में रोटी फल, कटहल, आम और मोरिंगा भाजी तोड़ लाई।

उन्होंने इन सब को रसोई-घर की बड़ी मेज़ पर रखा। पहले रोटी फल को कई बड़े-बड़े टुकड़ों में काटे। फिर उन टुकड़ों के छिलके उतारकर उनके अंदर वाले मुलायम हिस्से को भी अलग किया। उसके बाद टुकड़ों को उबालने के लिए एक प्रेशर कूकर में डालकर स्टोव पर रख दिया। कटहल के भी छिलके उतारकर टुकड़ों में तराशा और एयरटाइट प्लास्टिक बैग में बंद कर के फ्रिज में रखा। तब तक रोटी फल उबल चुका था। दादी ने उसे कूकर से निकाला और फैलाकर रख दिया। फिर आम का मज़ेदार कुच्चा (अचार) तैयार करने में लग गई। इधर कुच्चा तैयार हुआ, उधर रोटी फल के टुकड़े ठंडे हुए। दादी ने टुकड़ों को कांटे से खूब मसला। फिर उस में थोड़ा-सा आटा मिलाकर गूँथा। और उसे भी फ्रीज़र में रखा।

दूसरे दिन दादी सुबह सवेरे सूर्योदय से दो घण्टे पहले ही जाग गई थी। सुबह को जब घर के सभी लोग जागे, तो रसोई घर से आने वाली खुशबू से सबके मुँह में पानी आ गया था। दादी का पकवान तैयार हो चुका था। उन्होंने एक मेन कोर्स तैयार किया था। रोटी फल के परांठे, चने और कटहल की मसालेदार तरकारी, मोरिंगा भाजी की भूँजी, आम का कुच्चा और मदपान के लिए पेरे गए गन्ने का रस। साथ में डेज़र्ट के तौर पर नारियल के पेड़े थे। सभी लोगों ने बड़े चाव से एक साथ बैठकर जलपान किया और दादी के पकवान की खूब सराहना की। डिश सर्विंग की सभी तैयारियाँ करने के बाद वे नहा-धोकर तैयार हो गई। उनके संगठन के कुल पंद्रह सदस्यों को उस प्रतियोगिता में जाने के लिए आमंत्रित किया गया था, जिनमें से केवल पाँच प्रतिभागी थे। उन सबको प्रतियोगिता केंद्र तक ले जाने वाली बस नौ बजे आने वाली थी। संगठन की अध्यक्ष अपने सदस्यों के साथ एक ही जगह मिलकर आने वाली बस की प्रतीक्षा कर रही थीं। सब के सब खुश दिख रहे थे। आपस में एक दूसरे के पकवानों पर पूछताछ कर रहे थे। उन लोगों को चुप कराने के लिए उनकी अध्यक्ष महोदया ने कहा था "यह प्रतियोगिता है। इसे रहस्य ही रहने दो। वरना प्रतियोगिता की आश्चर्यता का स्वाद ही मिट जाएगा।"

ठीक सवा नौ बजे बस पहुँची। इंतज़ार की घड़ी समाप्त हुई। सब लोग खुशी-खुशी बस में सवार हुए और बस रवाना हो गई। आधे घंटे का सफ़र तय करके वे लोग प्रतियोगिताशाला पहुँचे। उसके प्रांगन में एक विशाल पंडाल खड़ा किया गया था, जिसमें बहुत लोग उपस्थित थे। प्रतियोगिताशाला के महाकक्ष में लम्बी-लम्बी चार मेज़ें, एक चौकोर के इर्द-गिर्द सटाकर रखी गई थीं। मेज़ों के घिराव के बीच वाली खाली जगह में एक बड़ा-सा खूबसूरत गमला रखा था, जिसमें फूलों से लदा एक बोन्साई पौधा था। वहाँ के अधिकारी की माँग पर सब

प्रतिभागी अपने-अपने पकवान का प्रदर्शन करने के लिए मेज़ के करीब आकर खड़ी हो गई। पहली मेज़ मिठाई मेनू के लिए और दूसरी बगलवाली मेज़ स्नाक मेनू के लिए थी, जबकि सामने वाली मेज़ सलाद के लिए सजाई गई थी।

दादी ने मेन कोर्स तैयार किया था। वह उसी मेज़ के पास खड़ी अपने पकवान की प्रदर्शनी के लिए अपने पकवानों को निकालकर अपनी सासू माँ की थाली के विभाजित भागों में सजाने लगीं। सबसे बड़े वाले भाग में उन्होंने रोटी फल के दो पराठे परोसे। बाकी चार भागों में चने और कटहल की मसालेदार तरकारी, मोरिंगा भाजी की भूँजी, आम का कुच्चा और नारियल का पेड़ा रखा।

जब सब मेज़ों पर पकवानों का प्रदर्शन समाप्त हो गया, तो सब प्रतिभागियों से कहा गया कि वे अपने पकवान के सामने खड़ी रहें। फिर एक अधिकारी आई और हर एक का नाम दर्ज करने के बाद एक नम्बर के नीचे खाली जगह पर अपने-अपने मेनू का नाम दर्ज करने को कहा गया। उसके बाद सब को बाहर टेंट में जाकर बैठने को कहा गया। वहाँ सबको कार्यक्रम में होने वाले विषय का परचा बाँटा गया। कार्यक्रम का आरंभ एक प्रार्थना से किया गया। उसके तुरन्त बाद सहकारी क्रेडिट यूनियन के एक प्रमुख अधिकारी का जोरदार भाषण हुआ। वे किसी भी क्षेत्रीय उद्योगी कार्य में सहकारी संगठन बाँधने का महत्त्व बता रहे थे और इस कार्य के लिए लोगों को मॉरीशस विकास बैंक की ओर से उधार लेने की सुविधा पर भी बात की।

ग्यारह बजे पंडाल में बैठे लोगों को बिरयानी परोसी गई। साथ में पीने के लिए पानी और सोफ्ट ड्रिंक्स। खाने के दौरान यह सूचित किया गया कि प्रतिभागियों को सम्मानित करने के लिए इलाके के एक मंत्री भी आने वाले हैं।

माननीय मंत्री के आगमन पर राष्ट्रीय गान की धुन चालू की गई। और सब लोग उनके स्वागत में खड़े हो गए। मंत्री जी ने अपने भाषण में सरकार

की ओर से वृद्ध लोगों के प्रति अच्छे काम करते रहने की सराहना की। उसके बाद प्रतिभागियों के पकवानों की भी खूब तारीफ़ की।

उसके तुरन्त बाद विजेताओं के नामों को पुकारा गया। प्रदर्शित पकवान के हर भाग के लिए तीन पुरस्कार रखे गए थे। तीसरे इनाम से घोषणा आरंभ की गई। फिर दूसरा और अंत में पहला इनाम पानेवालों की बारी आई। सलाद वर्ग में पहला पुरस्कार एक तमिल महिला को अपने सूरन के अचार के लिए मिला। स्नाक वर्ग में एक दूसरी महिला को अरबी के पकोड़े के लिए पुरस्कृत किया गया और मिठाई के वर्ग में केले वाला स्पॉन्जी केक बनाने वाली को नवाज़ा गया।

जब मेन कोर्स वर्ग की बारी आई, तो दादी जी पसीना-पसीना हो गई थी। उनके संघ सदस्यों को उम्मीद थी कि दादी ही की जीत होगी, जिससे उनके संघ का नाम चलेगा। सभी लोग उत्साहित थे पहले विजेता का नाम सुनने के लिए।

एक अधिकारी ने सामने मंच पर आकर सभी लोगों को बताया – “हमारी अपेक्षा नहीं थी कि इतने सारे प्रतिभागी होंगे। हमें इतने सारे पुराणिक पकवान देखने को मिलेंगे। सबके सब एक से बढ़कर एक रहे। यहाँ तक कि दूर से आए जूरी सदस्य को जाँच कर पाना कठिन लगा। इस जाँच को सही तरीके से सरंजाम देने के लिए हमने पकवानों पर प्रतिभागियों के नाम न लिखवाकर नम्बर से चिह्नित किया।” उसके बाद देर न करते हुए वे बोले –

“अब मैं आप सब के सामने उस पहले विजेता का नम्बर घोषित करने जा रहा हूँ, जो पहला पुरस्कार पाने के योग्य है। वह खुशकिस्मत महिला कौन है, यह मुझे नहीं मालूम मगर उसका लकी नम्बर है 69। उनके चिकन फ्राईड राइस को देखते ही मुँह में पानी आ गया था। हाँ तो नम्बर 69 आप कृपया मंच पर आएँ और मंत्री जी के हाथ से अपना पुरस्कार प्राप्त करें।

इस घोषणा को सुनने के तुरन्त बाद एक महिला

जो पंडाल के एक कोने में बैठी हुई थी, उठी और मंच की ओर जाने लगी। मंच पर खड़े मंत्री जी की नज़र जब उस आती हुई महिला पर पड़ी, तो वह अवाक् रह गए, लेकिन जब वह महिला मंच पर पहुँची तो मंत्री जी को बोलना ही पड़ा। अपनी पारदर्शिता को ज़ाहिर करने के लिए कहा—

“अरे! यह तो मेरी अपनी माताजी हैं। मुझे बिल्कुल पता नहीं था कि इस प्रतियोगिता में वे प्रतिभागी हैं।”

फिर उन्होंने अपने हाथ में पकड़े इनाम को

अपने पास खड़े अध्यक्ष को थमाते हुए माँग की कि खुद उनकी माँ को भेंट करें। मंत्री जी की माँ की इस जीत पर पंडाल तालियों से गूँज उठा। इसी गूँज में अधिकारी ने फिर यह एलान किया।

“हम अपने बाकी प्रतिभागियों को भी नहीं भूले हैं। उनके लिए भी एक सराहना तोहफ़ा है। अंत में बाकी प्रतिभागियों को नम्बर से नहीं बल्कि नाम से पुकारा गया और हिम्मत की दाद देते हुए एक-एक चाय की प्याली भेंट की गई।

sfurjully@gmail.com

## पारिजात के फूल

— श्री अशोक कुमार ‘आशु’  
विक्टोरिया, सेशेल्स

इतने सालों बाद भी बेपनाह मुहब्बत की दास्तान आहिस्ता-आहिस्ता दिल में घर कर गयी है। सुना है कि प्रेम का हर शब्द, जिसके लिए कहा जाता है अंततः उसके पास ज़रूर पहुँच जाता है। उम्मीद करता हूँ कि मेरे शब्दों का भी गंतव्य होगा। दरभंगा के कई अनुमंडलों में से एक है बेनीपुर, जो कमला नदी के मुहाने पर बसा है। दरभंगा से 25 किलोमीटर की दूरी पर घने आम के पेड़ों के बगीचों या जंगल के बीच से गुज़रते वक्त कुछ शीशो या कटहल के ऊँचे पेड़ों से छनकर सड़क पर गिरती धूप की आँख-मिचौनी ज़ेहन में एक मायावी दुनिया का आभास कराते हैं। चारों ओर उपजाऊ ज़मीन पर लहलहाते खेत और विशुद्ध ग्रामीण जीवन, एक ताज़गी का अहसास कराते हैं। आसपास के कुछ गाँव काफी सम्पन्न और सुसंस्कृत हैं। ये पूरा इलाका जगदम्बा या दुर्गामाता रानी का भक्त है या यूँ कहें कि सारे लोग शक्ति के उपासक हैं। इसी घोंघिया गाँव में पच्चीस साल पहले एक लड़के को एक लड़की से प्रेम हो गया था। या यूँ कहें लड़की को भी लड़के से प्रेम हो गया था।

आज पच्चीस साल बाद दरभंगा शहर से 25

किलोमीटर आगे, नवम्बर की मीठी सर्दियों की धुंध में डूबे आम, शीशो, कटहल के कतारबद्ध पेड़ों का सघन विस्तार और गन्ने के खेतों को पार करते हुए हम घोंघिया पहुँचते हैं। मेरे लिए घने जंगलों से शुरू हुआ एक विस्मयकारी मायावी दुनिया का सफ़र घोंघिया-नवादा के दुर्गा मंदिर तक जारी रहता है। मंदिर में पारिजात का पेड़ आज भी वैसा ही है, जैसे पच्चीस साल पहले था। पारिजात का सफ़ेद फूल आज भी मंदिर के प्रांगण में बिछा हुआ था। यही वो पेड़ था, जिसके फूलों ने कितने यादगार पल दिये थे। मंदिर में पूजा करने के बाद कुछ पल गाँव में अपने आँगन में बैठे। हालाँकि अब आँगन भी वीरान हो गया है। दीवालों पर पेड़ निकल रहे हैं। घर के प्लास्टर सब झाड़ रहे हैं, क्योंकि अब कोई रहता नहीं है। आँगन में बैठकर छत की ओर देखा और लगा मानो छत कब से व्याकुल होकर अपनी ओर बुला रही हो। कदम छत पर यकायक ही बढ़ गए। चारों ओर देखा कई घर बन गए थे और कई घर टूट रहे थे। कई आबाद भी हो रहे थे और कई वीरान भी। अचानक उत्तर दिशा वाली छत

पर ध्यान गया, जो अब दोमंजिला हो चुकी थी। पर एक कोने पर निकला हुआ सरिया आज भी वैसा ही था, जैसे 25 साल पहले था। अचानक पुरानी बातें एक-एक कर याद आ गईं। अपनी छत की रेलिंग पर बैठ कुछ सोचने लगा। काश! पल्ली आज होती तो मेरी ज़िंदगी कुछ और होती। कितना चाहते थे हम दोनों एक दूसरे को। बचपन से शायद तीसरी क्लास से ही। अलग रह ही नहीं पाते थे। धीरे-धीरे बड़े हुए, तो लोगों ने इसको प्रेम का नाम दिया, पर हम तो कभी प्रेम समझे ही नहीं। हमेशा बात करना, चोरी छुपे दालमोट खाना, सुबह-सुबह गन्ने का रस पीना, गुलाबी हवा मिठाई साथ-साथ खाना, गृहदेवी का प्रसाद खाना, साथ दुर्गा मंदिर जाना और पूजा करना, सुबह-सुबह पारिजात, कनैल और उड़हुल का फूल चुनना, धान के पुआल में आँख-मिचौनी खेलना, गर्मी की आंधी में आम के टिकोले चुनना, डिब्बा वाला बाईस्कोप देखना, दुर्गा पूजा के मेले में तारा मशीन में घूमना, खट्टे आम को मीठा बोल खिलाना और चिढ़ाना आदि न जाने कितनी यादों का सहारा है। जब थोड़ा बड़ा हुआ, तो एक दिन मैट्रिक (दसवीं बोर्ड) की आखिरी परीक्षा के दिन स्कूल से आते वक्त मैंने उससे अनायास ही पूछ लिया “क्या तुम मुझसे प्यार करती हो?” उसने भी बड़ा बिंदास ढंग से जवाब दिया “धत्त, तुमसे कौन प्यार करेगा”।

बात तो वहीं खत्म हो गई, पर प्यार का परवान बढ़ता ही चला गया। धीरे-धीरे न चाहते हुए भी हम एक दूसरे की ज़रूरत बनते जा रहे थे। ग्राजुएशन की परीक्षा के आखिरी दिन उसने भी पूछ लिया “क्या तुम मुझसे प्यार करते हो?” मैंने कहा— “भवक पगली तुमसे कौन प्यार करेगा?” यह बोलकर मैंने उसकी हथेली में अपना हाथ रख दिया। रास्ते में ब्रह्म स्थान मंदिर के नीचे उस प्यार को अपना नाम दिया, मंदिर में पड़ी सिंदूर को उसकी माँग में डालकर। उसने भी झुककर मेरे पैरों को छुआ।

ये हम लोगों का एक दूसरे पर पूरे अधिकार की निशानी थी, जिसे समाज के सामने मूर्त रूप दिया जाना शेष था। उस शाम हम बहुत खुश थे। उसी दिन उसने मुझे उपहार में खुद की बनाई हुई एक मधुबनी पेंटिंग दिया और वादा लिया कि मैं हर पल इसे अपने करीब रखूँ। उस शाम वो अपने आँगन में शाम का दिया, भजन गाकर जला रही थी और हम अपने छत से उसके मूर्त रूप को निहार रहे थे। वो बार-बार पूजा करते हुए और सर को दुपट्टे से ढँकते हुए मुझे ही देख रही थी और मैं उस समय अपने आप को सबसे भाग्यशाली इंसान समझ रहा था। फिर उसने कभी मुझे ‘तुम’ से संबोधित नहीं किया और ‘आप’ ही बोला। फिर एक दिन छुपते-छुपाते हम दोनों ने बहेड़ा बाज़ार के स्टुडियो में एक ब्लैक एंड व्हाइट तस्वीर भी खिचवाई, जो तस्वीर आज भी मेरे पास है। उसके बाद जब भी हम उसकी यादों पर मालिकाना हक जताते, मेरे अंतर्मन में बारिश और तेज़ हो जाती थी। जहाँ से उसका ख्याल शुरू होता था, बस वहीं से मेरे शब्द मेरा साथ छोड़ने लगते थे। अजीब था पर था ऐसा ही उसके साथ मेरा रिश्ता।

बिंदास थी वो। उमंगों भरी सूरत है—पूरे आलम को फतह करने का ख्वाब। पच्चीस साल पहले गाँव की लड़की और उसका उद्दाम यौवन। स्वतंत्र जीने का तरीका और विद्रोही स्वभाव भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक आत्मा पर गहरी चोट करता था। पर वो थी ही ऐसी। खुशमिज़ाजी मशहूर थी उसकी और सादगी भी कमाल की थी। शरारती भी इंतहा की थी और तन्हा भी बेमिसाल थी।

पर समय का चक्र बड़ा वीभत्स होता है। आपको ठीक से जीने नहीं देता है। मध्यम वर्गीय परिवार पर तो समय के चक्र का प्रभाव सबसे ज़्यादा पड़ता है। हम आगे की पढ़ाई के लिए शहर आ गए और वो गाँव में मेरा इंतज़ार करती रही। कभी-कभी उसके नीले अंतर्दृशीय-पत्र में लिखा खत मिलता था और

हम पत्र पढ़कर अपने को खुशनसीब समझते थे।

अगले साल की दुर्गा पूजा में हम गाँव गए और मंदिर में उसी पारिजात के पेड़ के नीचे मिले। वो थोड़ा बुझी-बुझी सी लगी, पर उसने अपने को बीमार नहीं बताया। हमने बहुत पूछा पर वो बोली थोड़ी थकावट है पूजा की और उपवास का। बस उसने इतना ही कहा कि मैं जल्दी से नौकरी कर लूँ, ताकि उसे अपना सकूँ। बहुत मन किया सबके सामने उसे अपना लूँ, पर बेरोज़गारी की मार बड़ी भयावह होती है। दुखी मन से हम वापस शहर आ गए। फिर उसका एक खत आया कि उसकी तबीयत ज्यादा खराब है। मेरी परीक्षा थी मैं नहीं जा पाया। और जब गया, तो सब कुछ खत्म हो चुका था। मुझे आज तक पता नहीं चला कि उसे क्या हुआ था। और किसी ने बताया भी नहीं। पूछता भी किससे और किस अधिकार से। गलती भी मेरी ही थी। मैं पल्ली के मौन को नहीं समझ पाया और जो तुम्हारे मौन का अर्थ नहीं समझता वह सम्भवतः तुम्हारे शब्दों का अर्थ भी क्या समझता। तुम्हारे गीतों का प्रेम, चाहत और जुनून, लेकिन मौन सब पर भारी पड़ गया।

वैसे जब सारे नक्षत्र विपरीत होते हैं, तब समझ में आता है कि ये दुनिया कुछ नहीं है। ये क्रूर प्रकृति हमारी बर्बादी में खुश होती है। अचानक होश आया। शाम हो रही थी। आँखों में आँसू आ गए। रेलिंग पर खड़े-खड़े मैं उस आँगन के तुलसी के पेड़ को देख रहा था। वहीं पर वो हर शाम आरती गाती थी और मैं उसी रेलिंग पर खड़ा होकर देखा करता था।

आज पच्चीस साल बीत गए। गाँव-दरभंगा से शुरु हुआ सफ़र पटना, अलीराजपुर, रायपुर, शहडोल, सागर, भोपाल, सिंगापुर, मलेशिया, सेशेल्स तक पूरा हो चुका है। न जाने कितना और सफ़र बाकी है। पर एक सफ़र जो जीवन का सबसे कीमती सफ़र था अधूरा ही रहा। आज भी जी चाहता है फिर से एक बार तुम्हें देख लूँ। एक बार तुम्हें आगोश में

ले लूँ। पर यह मुमकिन कहाँ है? यदि आप किसी से बिछड़ते हैं, तो कम-से-कम ये उम्मीद रहती है और आशा कर सकते हैं कि वो जहाँ भी रहे खुश रहे। पर मेरी उम्मीद की तो कोई बुनियाद ही नहीं। किसी के दूर होने की पीड़ा को दिल के भाव से ही अहसास किया जा सकता है।

मेरा और पल्ली का रिश्ता आपसी समझ, सम्मान और गहरे विश्वास से उपजने वाले प्रेम पर टिका हुआ था। मैंने पल्ली के संबंधों और अंतरंग जीवन में कभी हस्तक्षेप नहीं किया। न ही हमारे प्रेम में वासना का कोई पुट था। प्रेम और वासना में भेद है, केवल इतना कि वासना पागलपन है, जो क्षणिक है और इसीलिए वासना पागलपन के साथ ही दूर हो जाती है और प्रेम गंभीर है। उसका अस्तित्व शीघ्र नहीं मिटता। प्रेम शाश्वत है, निश्चल है, अमर है। उसने मेरा हर मुश्किल समय में साथ दिया, पर मैं आखिरी पल यह भी न जान सका कि उसे हुआ क्या है। पर मैंने भी उसे प्रेम में धोखा नहीं दिया। शायद यही वजह थी कि पल्ली को मुझपर अटूट विश्वास था।

उसके जाने के काफी दिनों बाद तक मैं यह कई बार सपना देखता रहा कि मैं उसे रोक रहा हूँ...और वह कह रही है कि नहीं आशु मुझे जाना होगा...। उसके जाने का दिन मुझे ठीक से याद है और आज भी मुझे सालता है। रात को जब मुझे नींद नहीं आ रही थी, मैं उसको ही पत्र लिख रहा था। पर पत्र पूरा नहीं हो पा रहा था। बार-बार बिजली कड़क रही थी। ज़ोर की गरजना हो रही थी। विकराल मौसम था। दूर से कहीं कुत्ते के रोने की आवाज़ भी आ रही थी। रात ढलती जा रहा थी। मेघों की गरजना तेज़ होती जा रही थी। क्या यह अपशकुन था? क्या ये हमारे प्रेम का विस्थापन था? दिल ही दिल में कह रहा था कि ऐ रात तू जल्दी ढल। प्रभात को जल्दी आने दे। हमारे प्रेम को कुछ देर और तो दे। हमें नए सपने नए जीवन का आनंद



तो लेने दे और एक दूसरे को पाने तो दे। तभी दूर आकाश में जोर की बिजली कौंधी और फिर स्याह अंधेरा। ओह ये क्या? मैं तभी समझ गया था कि कुछ अनहोनी होने वाली है। पर मैं क्या करता? वह डूबती चली जा रही थी और मेरी चिट्ठी भी पूरी नहीं हो पा रही थी। सुबह हम उगते सूरज को नहीं डूबते सूरज को देखने को मजबूर थे। हम कुछ भी न कर सके।

अब मेरी हिम्मत नहीं थी छत पर खड़े होने की। वापस आने को निकल पड़ा। रास्ते में उसी ब्रह्म बाबा के मंदिर में गया, जहाँ पहली बार उसे अपनाया था। निशानी के रूप में मैंने इस मंदिर को बनवाया। वैसे मंदिर बनवाने में आपको काफी सुकून मिलता है। काफी देर वहाँ बैठा। मंदिर में लगे सिंदूर को देख आँख गीली हो गई और जब सहने की क्षमता खत्म हो गयी, तो फिर वापस दरभंगा आ गया। हमारी ख्वाहिशों के काफिले बड़े अजीब से होते हैं, ये वहीं से गुजरना पसंद करते हैं जहाँ रास्ते नहीं होते।

लोग कहते हैं कि जीवन बहुत वर्षों का संचित फल होता है। उसे किसी एक “काश” के लिए गँवा देना उचित नहीं होता है। हम सबकी ज़िंदगी में बहुत से ‘काश’ होते हैं। जितने ‘काश’ उतने

समझौते, लेकिन कुछ ‘काश’ ज़िंदगी से जुड़े होते हैं और कुछ ज़िंदगी ‘काश’ से। काश! पल्ली आज होती। काश आज मैं उसे स्पर्श कर पाता?

कल सेशेल्स के लिए निकलना है। पर एक प्रण किया। गाँव के घर को ठीक करवाकर काफी समय वहीं गुज़ारूँगा, ताकि पल्ली की खुशबू से, उसकी यादों से और पारिजात के फूलों से हर पल रू-ब-रू होता रहूँ। वही पारिजात पल्ली को बहुत पसंद था। वही पारिजात, जो हमारे प्रेम के केंद्र बिंदु में है। उसकी ब्लैक एंड व्हाइट तस्वीर और उसके द्वारा उपहार में दिया गया मधुबनी पेंटिंग आज भी मेरे रूम में उसके होने का अहसास देते हैं। कुछ तस्वीरें सुखद एहसास कराती हैं। उसका उम्दा बेहतरीन व्यक्तित्व और उसकी तस्वीर और मधुबनी पेंटिंग में पारिजात का फूल। ओह! यही तो जीवन है। पल्ली, तुम आज भी चली आती हो हमारे ख्वाबों में, लेकिन वो जो हम में और तुम में करार था, तुम्हें याद हो कि न याद हो, हमें तो आज भी याद है। मैंने कभी बोला था तुमको कि याद मत आना मुझे। पर झूठ बोला था। अब कहता हूँ याद बहुत आओ मुझे। बहुत याद आओ मुझे उसी पारिजात के फूल के रूप में।

**ce.seychelles@bankofbaroda.com**

## व्यक्ति, बस व्यक्ति

— प्रतिभा सक्सेना  
केलिफोर्निया, अमेरिका

अपने आप को इतना बेबस कभी नहीं पाया था मैंने। चाहते हुए भी उसके लिए कुछ नहीं कर पाती, इसलिए झेलना और मुश्किल हो जाता है।

कल विक्कू का जन्मदिन था, पड़ोस के बच्चों के साथ टिम को भी बुलाया था। हमारे दोनों बच्चों में तीन साल का अंतर है। अब तो एक साथ ही स्कूल

जाने लगे हैं। जब टिम पड़ोस के घर में रहने आया, दोनों बड़े खुश हुए थे। उसे बुलाकर, अपना दोस्त बना लिया। यहाँ पड़ोस में बच्चों का वैसे भी टोटा है — तीन-चार घर छोड़कर फिलोमिना, विलियम और चौराहे के पार टोनी, बस।

टिम विक्कू से थोड़ा ही छोटा है। पार्टी में आया

था, सहमा—सा, सकुचाया—सा बैठा रहा। नहीं तो यहाँ के बच्चे!...दबकर रहने की आदत ही नहीं, हर बात का उत्तर चाहते हैं।

सब खा रहे हैं, हँस—बोल रहे हैं, उछल—कूद भी कर रहे हैं। गुब्बारों से मार रहे हैं एक—दूसरे को।

टिम अपनी प्लेट पकड़े अनमना—सा बैठा है। मन करता है पास जाकर कहूँ “बेटा खाओ न।”

पर नहीं कह सकती। वह मेरा बेटा नहीं है, सिर्फ अपने माता—पिता का बेटा है। यहाँ यह सब नहीं चलता, अमेरिकन बच्चे मिसेज़ फलानी कहते या नाम लेकर बुलाते हैं, भारतीय बच्चे मुझे आंटी कहते हैं, उनके लिए परायों को यों संबोधित करना कोई नई बात नहीं। यहाँ के बच्चे असलियत जानते हैं, वे क्यों कहें? मैं कोई सगी थोड़े ही हूँ, बेकार के सम्बन्ध ये लोग नहीं पालते। जिसे नाम पता है, नाम से बात करता है। यहाँ की रीत यही है। दिखावा पसंद नहीं इन्हें। शुरु—शुरु में बड़ा अजीब लगता था मुझे...पर अब ठीक लगने लगा है।

स्कूल में अपनी टीचर को भी ये बच्चे मिस लगाकर नाम से ही बुलाते हैं या फिर मैडम चलता है। ठीक भी है, नाम और काहे के लिए है, रखा गया है पुकारने के लिये ही न!

हाँ, यह टिम, कितना प्यारा बच्चा है। गोरा रंग, नीली आँखें, गुलाबी होंठ, सुनहरे बाल, पर कितना चुप और कुछ उदास!

हमारे यार्ड से जुड़ा उनका यार्ड है। घरों की खास हलचलें एक—दूसरे को पता लग जाती हैं। अभी दो महीने पहले यहाँ शिफ्ट हुए हैं ये लोग। पहले खाली था ये मकान। सिर्फ माता—पिता और ये सात साल का बेटा। नहीं, नहीं अन्यथा मत सोचिये, सगा बेटा है दोनों का। पत्नी भी वर्किंग विमेन है।

हफ़्ते भर में ही पता चल गया था, पति—पत्नी में पटती नहीं। अक्सर ही लड़ाई—झगड़े और सामान फेंके जाने की आवाज़ें आती हैं। पता नहीं काहे का झगड़ा है। मैं जानना चाहती भी नहीं। दखल देने

का तो सवाल ही नहीं उठता। डाइवोर्स की स्थिति आ गई है। मियाँ—बीवी लड़—झगड़ कर एक—दूसरे से छुट्टी पा लेंगे, पर यह बच्चा, टिम?

किसके हिस्से में जाएगा, इसे भी आधा—आधा बाँटेंगे क्या? शादी की थी, अपनी खुशी के लिए, बच्चा पैदा किया अपनी मौज में, अब जब एक बेबस प्राणी दुनिया में आ गया, जुड़ गया तुम्हारे परिवार से, उस पर क्या बीत रही होगी, वह क्या करेगा, यह कोई नहीं सोचता!

विदेश में रहकर मैंने बहुत कुछ समझा है। बहुत बातें हैं, जो इनसे सीखनी चाहिए। सबसे बड़ी बात नियमों को मानने की आदत। चाहे कोई न हो चौराहे पर गाड़ी रोकेंगे ज़रूर, गाड़ी वाले पैदल चलनेवाले को राह देने रुक जाते हैं। पहले मुझे लगता था, जो कार पर सवार है, उसे पहले रास्ता चाहिए होता है, पैदल तो किधर से भी निकल जाएगा, उसे काहे की जल्दी। पर अब सोच बदलने लगी है और हाँ, कारवालों की पों—पों से कान के पर्दे दहल जाए, ऐसी नौबत भी नहीं आती।

सड़कों पर किसी को ताव में बाँह चढ़ाकर लड़ने पर उतारू या तू—तू—मैं—मैं वाला दृश्य देखने को नहीं मिलता। जोर—जोर से गाना—बजाना या अपने पालतू जानवरों से (अरे, जानवर कह गई, वे तो घर के सदस्यों जैसे माने जाते हैं) पड़ोसी को परेशानी हो, ऐसा कुछ देखने में नहीं आता और हाँ, एक बड़ी अच्छी आदत, कहीं गंदगी नहीं फैलाते। थूकना—पीकना तो दूर, ज़रा—सा कागज़ का टुकड़ा भी डस्टबिन में डालते हैं या अपनी जेब में। अनजान लोगों से व्यवहार भी सहृदयतापूर्ण देखा है इनका।

सैर के रास्ते में मिलनेवाने अपरिचित लोग भी एक दूसरे को मुस्कराकर विश करते चलते हैं, हम लोगों की आदत नहीं थी पहले, देख भी लिया, तो निकलते चले जाते थे, पर तटस्थ भाव से मुँह उठाए चलते चले जाना यहाँ की रीत नहीं। और तो और कोई बच्चा भी किसी के फूल—पत्ते नहीं तोड़ता।

अपनी पूजा के लिए किसी के फूल तोड़ लेना भूल जाइये। फल लगे रहते हैं, पराये पेड़ों से कोई फल नहीं तोड़ता, डालियाँ बाहर झूम रही हों तो भी। ये सब बातें शुरू से आदत में शामिल हो जाती हैं, पर मुझे तो यह खटक रहा है कि इस बच्चे का क्या होगा!

ये लो, उधर से आज फिर उठा-पटक की आवाज़ें आने लगी। मैं रुक नहीं पाती। बैकयार्ड के पार्टेशनवाले लकड़ी के फट्टों की संघ के समीप खड़ी हो गई हूँ। चिल्ला रहे हैं दोनों। दुबका हुआ टिम सुन रहा है खड़ा-खड़ा।

संघ से थोड़ा-थोड़ा दिखाई देता है, झाँके बिना रहा नहीं जाता। अंदर से फेंका हुआ कुछ लॉन में आकर गिरा। वह दौड़ा नीचे से कुछ उठाया, सीने से लगा लिया।

‘जीना मुश्किल कर दिया है’ आदमी की आवाज़ थी। आवाज़ें लगातार आ रही हैं। टिम खड़ा है एकदम चुप। उफ़, उसका विवर्ण चेहरा, दुख, निराशा और बेबसी के अंकन!

कुछ देर खड़ा रहा यों ही, फिर वहीं पड़ी कुर्सी पर बैठ गया। मेज़ से सिर टिका लिया।

इसने एक बार विकी से कहा था “मुझे भी साथ रहना अच्छा लगता है। मेरे भी सिबलिंग होते तो कितना अच्छा होता।”

और दोस्त? पता नहीं कभी कोई देखा तो नहीं। कितना अकेला है!

गाड़ी स्टार्ट होने की आवाज़ आई।

बैकयार्ड में टिम मेज़ पर सिर टिकाये सो गया है, सुनहरे बालों पर धूप चमक रही है। अभी तो धूप और चढ़ेगी वातावरण धूल-धुएँ से रहित है, सो सूरज की रोशनी धुंध नहीं ओढ़ती। रात को सितारे भी आसमान में दमक बिखेरते रहते हैं। बड़ी तेज़ हो जाती है यहाँ की धूप, ऐसे ही सोता रहेगा बच्चा। धूप तपेगी सिर पर, तो उठकर अंदर चला जाएगा, पानी भी पिएगा कि नहीं क्या पता!

बच्चों को शुरू से ही इंडिपेंडेंट बनाने पर तुले रहते हैं, यहाँ के लोग। एक तो आदतें सुधरी रहेंगी और उसे जीवन के संघर्ष के लिए तैयार होना है। हमारी भी दिन-रात की व्यर्थ चिन्ता से छुट्टी। खाना फ़िज में भरा है, बच्चे भी माइक्रोवेव में गर्म कर खा सकते हैं। शुरू से अलग सुलाना तो है ही, अपने आप अपना काम करने की आदत पड़ जाए, यह भी अच्छी बात है। औरों को क्या कहें हमारे यहाँ भी यही कोशिशें चलती हैं। मुझे लगता है, थोड़ा धीरज रखें, बढ़ने के क्रम में सब होता चले। थोड़ी वत्सलता, थोड़ा कर्तव्य-बोध खड़ा नहीं करेगा कोई अवरोध।

अरे, कुछ दिन तो जी भर लाड़-प्यार से सिंच जाएँ, दोनों पक्षों में स्निग्धता संचरित होगी। पर लोग बहुत व्यस्त हैं, कहाँ फ़ालतू समय किसी के पास। और पुरानी पीढ़ी यहाँ कहाँ, जिसके पास बचपन दौड़ जाए वात्सल्य की छाँह पाए। इंडिपेंडेंट होना है उसे, अपने आप ही सबसे निपटना है।

फिर सुना डाइवोर्स हो गया। वे लोग मकान छोड़कर कहीं और चले गये थे। टिम जाने से पहले बच्चों से मिला भी कहाँ!

कितने सालों से यहाँ रह रही हूँ, इस धरती से जुड़ाव हो गया है। कहीं अघट घटते देखकर मन में कुछ चुभने लगता है। दुनिया में कोई जगह तो व्यवस्थित सँवरी बनी रहे, उस पर बिखराव का ग्रहण क्यों लगे?

काफी समय बीत गया। एक बार दिखा था टिम। उम्र में अपने से काफी बड़े दो लड़कों के साथ, बदला-बदला सा। मुख पर सहज सरलता का वह भाव नहीं रहा था।

मन में तमाम बातें उठने लगीं। पता नहीं आशंकित करनेवाले विचार ही क्यों आते हैं। किशोर वय में ड्रग्स की लत कैसे लग जाती है, पढ़ा था मैंने और मार-पीट से लेकर हत्या तक की घटनाएँ याद आने लगी थीं। ऐसी वारदातें यहाँ प्रायः ही सुनने

को मिल जाती हैं कि आक्रोश से भरे किसी छात्र ने अंधाधुंध गोलियाँ चलाई। परिणाम अनेक मौतें। उद्विग्न मन में प्रश्न उठते हैं, क्यों होता है ऐसा?

घोर निराशा? स्थितियों से असामंजस्य? संवादहीनता? किससे कहें अपनी बात? कोई रास्ता नहीं सूझता, हताश क्रोध और विवश व्यर्थता का बोध ऊपर से किशोर उम्र की उत्तेजना। उन्मादी हो उठते हैं, ले डूबते हैं अपने साथ कितनों का सुख-चैन। एक परिवार की असंगति का फल पूरा समाज भुगतता है। एक जुड़ाव जब टूटता है, तो बीच में उपजी कोपल का क्या होता है। बच्चे को कितना कटना-बैटना पड़ता है, कौन जाने!

एक युग ने मिलकर जो उपलब्धि किया था,

जो नया जीवन संसार में लाने का श्रेय लिया था, अकारण गया। सब बिखर गया, प्रकृति का आयोजन विफल हो गया। कैसी अजीब स्थितियाँ हैं, कहीं कोई हल? अंदर से कोई पुकार उठता है – व्यक्ति, रह जाता है बस व्यक्ति अपने में सीमित, अकेला, सामंजस्यहीन, केवल व्यक्ति। परिवार का सदस्य नहीं बन पाता। क्यों? आखिर क्यों? एक की उपलब्धि पूरे समाज के लिए उपयोगी, तो उठती हुई संभावनाएँ विकसने से पहले सूख-बिखर जाने की व्यर्थता का दोष किस के मरथे?

एक बेबस, नादान बच्चा कितना कटा-बैटा होगा, कौन जाने!

[pratibha\\_saksena@yahoo.com](mailto:pratibha_saksena@yahoo.com)

## अव्यक्त आकर्षण

— डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव  
विक्टोरिया, ऑस्ट्रेलिया

“महाशय, क्या मैं कक्षा में प्रवेश कर सकती हूँ?”

“क्यों, क्या बात है? आज तुम्हारे आने में इतना विलम्ब क्यों हुआ?” डॉ. प्रभात शर्मा ने व्याख्यान में विराम देते हुए पूछा। डॉ. शर्मा कॉलिज के मनोविज्ञान विभाग में एक वरीय शिक्षक थे, जिन्होंने दो वर्ष पहले एक विदेशी विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की थी। देखने में चुस्त-दुरुस्त थे, जीन्स और शर्ट में उम्र से कई साल कम लगते थे। उनकी विद्वता और कर्मठता प्रशंसनीय थी और वे समय के बड़े पाबन्द थे। समय पर क्लास आना और समय से जाना उनका स्वभाव बन चुका था। वे विद्यार्थियों से भी ऐसी ही अपेक्षा रखते थे।

सुधा ने सहमते हुए कहा “मैं तो समय पर घर से निकली थी, परन्तु सड़क पर किसी राजनीतिक दल का जुलूस जा रहा था, मेरा रिक्शा देर तक रुका रहा। मैंने आपसे ही समय का मूल्य सीखा

है, लेकिन मैं लाचार थी।” उसकी बातों में इतनी विनम्रता थी कि सम्पूर्ण क्लास ने डेस्क थपथपाकर उसका अनुमोदन किया।

डॉ. शर्मा के लिए कोई विकल्प नहीं था, उन्होंने सुधा को आने की अनुमति दे दी। वह जल्दी में सामने के बेंच पर लड़कों के साथ बैठ गई, यद्यपि वह प्रायः तीन-चार लड़कियों के साथ किनारे बैठा करती थी। तब तक आधा समय बीत गया था, जल्दी ही क्लास खत्म होने की घंटी बज गई। डॉ. शर्मा ने क्लास से निकलते हुए सुधा से कहा “लंच के समय तुम मुझसे मिल सकती हो। व्याख्यान के प्रथम भाग में हुई चर्चा का संक्षिप्त विवरण लेते जाना, उसमें अनेक महत्वपूर्ण विचारों का समावेश है।” यह सुनकर किसी ने पीछे से सीटी बजा दी! किसी ने कह डाला ‘यह तो प्रथम मिलन है!’ कॉलिज में ऐसी हरकतें या ऐसे मज़ाक असामान्य

नहीं होते हैं; सुधा इन बातों से परिचित थी और उसने कोई ध्यान नहीं दिया। बड़े शहरों के कॉलिजों में प्रचलित कष्टदायक 'रेगिंग' के मुकाबले तो यह कुछ भी नहीं था।

सुधा अध्ययनशील होने के साथ-साथ विनम्रता की मूर्ति थी, सौम्यता ने उसकी सीमित सुन्दरता पर आकर्षण का मुलम्मा चढ़ा दिया था। अनायास ही लोगों की नज़रें उस पर उठ जाती थी, किन्तु उसमें स्नेहशील भाव होता, कोई दुर्भाव नहीं। वह यौवन के दरवाज़े पर दस्तक दे चुकी थी, लेकिन उसे प्रस्फुटित होने में एक-दो वर्षों की देरी थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में स्वाभाविक आकर्षण था और वह खर्चीले कृत्रिम प्रसाधनों से दूर रहती थी।

लंच का समय हो गया। कॉलिज कैटीन की तरफ विद्यार्थियों का जत्था टूट पड़ा, उसमें लड़कियों का झुण्ड शामिल था, जिसमें सुधा भी थी। कई शिक्षक भी बाहर निकल चुके थे। सुधा ने शीघ्र अपना लंच खत्म किया और वह डॉ. शर्मा के ऑफिस की ओर चल पड़ी। उसने दरवाज़े पर हल्की दस्तक दी।

“आओ, इतनी देर कैसे लगा दी? मैं तुम्हारा ही इन्तज़ार कर रहा था।”

“आपको प्रतीक्षा करनी पड़ी इसके लिए मुझे अफ़सोस है। मैंने समझा कि आप भी कहीं लंच ले रहे होंगे। भूख की अग्नि में ऊष्मा होती है, उससे दूर रहना चाहिए। मनीषियों ने भी कहा है कि भूखे पेट भजन नहीं होता है, फिर शिक्षा देना तो और भी दुष्कर है।”

“भूख की अग्नि देह को जला डालती है, किन्तु मन की अग्नि विचार को भस्म कर देती है। कैटीन में जाकर भूख मिटायी जा सकती है, परन्तु मन की ऊष्मा कैसे बुझेगी? कभी सोचा है?”

“मैंने समझा नहीं। मन की अग्नि क्या होती है? इसका प्रत्यक्ष रूप क्या है? इसे समझे बिना कुछ भी उत्तर देना सम्भव नहीं है।” सुधा की आँखों में विस्मय था।

“यही तो मनोविज्ञान का क्षेत्र है — मन का

विश्लेषण, दिमागी प्रक्रियाओं का मंथन, मानसिक तरंगों की पहचान, भावनाओं का अध्ययन। इन्हीं तरंगों से स्नेह, प्रेम और प्रणय के बीज निकलते हैं, जो मनुष्य के जीवन को सार्थकता प्रदान करते हैं। इसके बिना मनुष्य और पत्थर में कोई विशेष अन्तर नहीं होता।”

डॉ. शर्मा का ऊर्जस्वी वक्तव्य सुनकर सुधा विस्मित हो गई, उनकी विद्वता के चुम्बकीय आकर्षण से मुग्ध हो गई। उनका कथन संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित था। सुधा रोमांचित हो उठी। वह मूर्ति की तरह मौन खड़ी रही। थोड़ी देर में “किस दुनिया में खो गई?” की आवाज़ से वह चौंक गई।

“मैं बिल्कुल ठीक हूँ। ऐसे ही कुछ सोचने लगी थी।”

“भविष्य में सोचने का बहुत मौका मिलेगा। इन पन्नों को रखो, इन्हीं में मेरे व्याख्यान का संक्षिप्त विवरण है। दो-चार दिनों बाद मुझे लौटा देना।”

“जी महाशय।”

उन पन्नों में सुधा लिप्त हो गई।

“मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसका प्रायोगिक पहलू भी उतना ही उपयोगी है, सामाजिक संघर्ष और रिश्तों में भावनात्मक टकराव की बढ़ती घटनाओं से मनोवैज्ञानिक चिकित्सकों की माँग बढ़ गई है। सही उपचार और उचित परामर्श के द्वारा सामाजिक स्थायित्व को कायम रखना भी उनकी जिम्मेदारी का हिस्सा हो गया है। मनोविज्ञान को व्यावहारिक विज्ञान समझना भ्रामक है, क्योंकि भावनाओं को मापने का कोई यंत्र नहीं होता। यह अनुभव का विषय है, इसलिए इसमें व्यक्तिगत सूझ-बूझ का बड़ा महत्व है।”

“यौवन, सौन्दर्य और भावना के पुजारी प्रायः दिल के अधीन होते हैं, उनपर विवेक का अंकुश पर्याप्त नहीं होता। फलस्वरूप जब उन्हें आकाक्षा के विरुद्ध वास्तविकता दिखाई देती है, तब वे घोर निराशा और कटुता के शिकार हो जाते हैं, उन्हें

जीवन अंधकारमय दिखता है।”

“भावुकतावश एक महिला किसी के अन्तरंग प्यार को समझने में चूक कर सकती है, परन्तु उसकी उदासीनता या तिरस्कार को पहचानने में गलती नहीं करती। नारी की यह जन्मजात शक्ति ही उसका सबसे बड़ा नैतिक बल है और विश्वसनीय सहारा भी।”

“आदर्श प्यार और वासना के बीच की रेखा धुंधली होती है, युवास्था की आँखें उन्हें देख नहीं पाती। अध्ययन से वैचारिक परिपक्वता आती है, ज्ञान की खिड़कियाँ खुलती हैं और जीवन सही अर्थों में उपभोग्य बनता है।”

इतना पढ़ते-पढ़ते सुधा के कान गर्म हो गए — जैसे उसके मस्तिष्क के सभी तंतु सक्रिय हो गए हों और उनसे ऊर्जा बाहर निकल रही हो। कुछ ही शब्दों में सम्पूर्ण जीवन का दर्शन पढ़ लेना उसके लिए एक नई अनुभूति थी। उनमें एक चुम्बकीय आकर्षण था, जिसने उसे वशीभूत कर लिया। उसने कागज़ के उन पन्नों को बन्द कर दिया। बचा हुआ भाग वह बाद में पढ़ेगी।

दूसरे दिन सुधा ने पुनः उन पन्नों पर एक सरसरी दृष्टि डाली और उनका विवेचन करने लगी, ताकि अगले क्लास में होने वाले व्याख्यान के लिए वह तैयार रहे। अचानक उसने अन्तिम पृष्ठ पर पेन्सिल से खींची गई एक तस्वीर देखी। तस्वीर धुंधली थी, उसकी रेखाएँ अस्पष्ट थीं, फिर भी अनुमान लगाना कठिन नहीं था कि वह किसी युवती की तस्वीर थी। लगा जैसे किसी का यह प्रथम प्रयास था या बनाने वाला जल्दबाज़ी में था। परन्तु उन पन्नों पर कोई दूसरा व्यक्ति कैसे लिख सकता था? वे पन्ने तो डॉ. शर्मा के पास थे! सुधा के दिमाग में एक बिजली कौंध गई—क्या यह तस्वीर उसकी है? वह अज्ञात भय से काँप उठी। मनुष्य का मन बड़ा शंकालु होता है, एक बार कोई आशंका या भ्रम दिमाग में घुस जाए, तो निकलने का नाम नहीं लेता। सुधा भी इसका अपवाद नहीं थी।

सुधा जब उन पन्नों को लौटाने आई, तो डॉ. शर्मा छुट्टी पर थे। वह लौट रही थी, किन्तु कुछ सोचकर रुक गई। उसने तस्वीर के नीचे पेन्सिल से लिखा ‘तस्वीर का संवाद समझ नहीं पाई’ और पन्नों को एक लिफाफे में बन्द कर उनके लेटर-बॉक्स में डाल दिया।

कई दिनों बाद आज डॉ. शर्मा का व्याख्यान था। “मनोविज्ञान में तस्वीरों की भाषा समझना भी एक आवश्यक कला है। चेहरा पढ़कर मानसिक स्थिति का अंदाज़ा लगाया जा सकता है, उसमें छिपे भावों की सही कल्पना की जा सकती है। इसे हम शारीरिक भाषा अर्थात् बॉडी-लैंग्वेज के समानान्तर की क्रिया कह सकते हैं। तस्वीर भी मूक संवाद के माध्यम बन सकते हैं, खासकर जब आमने-सामने बात करने में झिझक हो।”

सुधा ने कहा “यदि तस्वीर धुंधली हो, पहचान-विहीन हो, तो उसमें कोई अर्थ ढूँढना निरर्थक है। जब चेहरा ही धूमिल है, तो उसके भीतर झाँकना व्यर्थ है।”

पीछे से किसी लड़के ने टिप्पणी की “महाशय, मैं आपकी दो तस्वीरें बना सकता हूँ : एक में आप सभ्य शिक्षक और दूसरे में कुटिल व्यक्ति लगेंगे। इनका प्रभाव बिलकुल विपरीत होगा, इनके सन्देश भी भ्रामक होंगे। फिर मनोविज्ञान से इसका क्या सम्बन्ध?” क्लास में हँसी की गूँज फैल गई।

डॉ. शर्मा ने गम्भीरता से कहा “तुम्हारे कथन में विरोधाभास है। तुम मेरी तस्वीर वैसी ही बनाओगे, जैसा तुम्हारा अनुभव होगा। हाँ, आर्थिक लाभ के लिए तुम कुछ भी कर सकते हो, परन्तु इसके लिए तुम्हें अपने ज़मीर को गिरवी रख देना होगा। पुनः तस्वीरें भी जीवन्त होती हैं, उनसे अदृश्य तरंगें निकलती हैं, जो देखने वालों के दिलों को छूती हैं। एक चित्रकार या मूर्तिकार अपनी कृति से प्यार करता है, मौन भाषा में बातचीत करता है, भावनात्मक सन्तुष्टि पाता है। कभी मौका मिले तो उनसे पूछकर देखो।”



तब उन्होंने सुधा की ओर देखते हुए कहा “तुम्हारा कथन बिलकुल स्वाभाविक है। परन्तु सोचकर देखो — कोई तस्वीर धुंधली क्यों लगती है? जब हम किसी व्यक्ति या वस्तु को एक उड़ती नज़र से देखते हैं, तो दिमाग में उसका प्रतिबिम्ब स्थिर नहीं हो पाता है, बल्कि उसका एक कृत्रिम खाका ही रह पाता है। उसके आधार पर यदि कोई चित्र बनाएगा, तो उसमें धुंधलापन ही होगा, गहराई की कमी होगी। यदि उस लक्ष्य में रुचि कायम रही, तो चित्र में प्रखरता और आकर्षण अपने आप दिखने लगते हैं।”

सुधा को विश्वास हो गया कि आज के व्याख्यान का सन्दर्भ वही तस्वीर और उसके नीचे लिखे उसके अपने शब्द थे। ऐसा क्यों? डॉ. शर्मा इस सन्दर्भ की उपेक्षा कर सकते थे, टाल सकते थे। इसमें रुचि दिखाना किस बात का संकेत है? उसके दिमाग में पुनः वही प्रश्न उठा ‘क्या वह तस्वीर उसकी थी?’ यह कहना मुश्किल था, कोई दूसरी भी हो सकती है। उसे इन्तज़ार करना होगा। शायद दूसरी बार तस्वीर का धुंधलापन खत्म हो जाए! उन्होंने यह भी कहा था “चित्रकार अपनी कृति से प्यार करता है” इसका क्या अर्थ? क्या उन्हें इस अमूर्त युवती से प्यार हो गया है? यही सोचते हुए वह नींद के आगोश में चली गई।

करीब एक महीना बीत गया, इस बीच सुधा भी तस्वीर की बात भूलने लगी थी। डॉ. शर्मा क्लास में सुधा की तरफ़ एक बार ज़रूर देख लेते, किन्तु इसमें कुछ भी असामान्य नहीं था। आज उनके व्याख्यान का विषय था ‘सफलता के मापदण्ड’। उन्होंने कहा “सफलता की परिभाषा जटिल है; इसके अनेक आयाम हैं, इसको मापने का कोई वस्तुनिष्ठ यंत्र नहीं है। यह एक व्यक्तिगत अनुभूति है, एक मानसिक प्रक्रिया का प्रतिफल है। एक रंगीन फूल में कोई प्रेम का रूप देखता है, तो कोई पौधे के जीवन का एक सामान्य पड़ाव। कुछ लोग आर्थिक उन्नति, तो कुछ लोग बौद्धिक विकास को सफलता

की कुंजी मानते हैं।”

इसी बीच किसी ने प्रश्न किया “मनोविज्ञान की दृष्टि से आप क्या कहेंगे?”

“यह बहुत ही प्रासंगिक जिज्ञासा है। आप सभी इसके ऊपर एक छोटा निबन्ध लिखकर अगले सप्ताह तक मेरे ऑफिस में जमा करें।”

सुधा ने कहा “सफलता का मापदण्ड क्या समय का गुलाम नहीं होता? क्या यह जीवन की गति से प्रभावित नहीं होता?”

“अवश्य, निरपेक्ष कुछ भी नहीं है। इस तथ्य को तुम अपने लेख में उजागर कर सकती हो।”

विद्यार्थियों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किए। किसी ने लिखा “सफलता के लिए धन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।” दूसरे ने लिखा “सफलता का मापदण्ड सामाजिक प्रतिष्ठा है।” तीसरे ने लिखा “किसी भी क्षेत्र में सेलेब्रिटी बन जाना ही सफलता की असली पहचान है; कैसा माध्यम हो यह गौण है।” चौथे के अनुसार “सफलता एक मरीचिका है, इसे पकड़ना आसान नहीं है। यह एक काल्पनिक वस्तु है, इसका कोई मापदण्ड नहीं है।” किसी ने लिखा “सफलता एक सामाजिक पहचान है, मनोविज्ञान एक दिमागी प्रशिक्षण। दोनों में कोई लगाव नहीं दिखता।”

सुधा ने लिखा “इच्छापूर्ति ही सफलता है। चूँकि इच्छा मस्तिष्क में पैदा होती है, मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया और सफलता में गहरा, किन्तु अदृश्य सम्बन्ध है। इच्छा बदलती रहती है, इसलिए सफलता समय की दासी है। विद्यार्थी जीवन में ज्ञान अर्जित करना सफलता है, परन्तु युवावस्था में प्रगाढ़ प्रेम और प्रणय की प्राप्ति। दूर भविष्य तो एक कल्पना है, वर्तमान ही इसका आधार है।” इसके नीचे सुधा ने एक युवक का चित्र बनाया जिसका चेहरा सिर से नीचे गिरते घने बालों से अधिकांशतः ढका हुआ था, लेकिन नीले रंग की उसकी टाई चमक रही थी। उसने अपना लेख जमा कर दिया।

डॉ. शर्मा सभी लेखों को पढ़ गए। उनकी आँखें सुधा द्वारा बनाए चित्र पर रुक गई, यह किसकी

तस्वीर है? इसके द्वारा वह क्या कहना चाहती है? उन्होंने बार-बार उस तस्वीर को देखा, आकृति को पहचानने की कोशिश की, परन्तु असफल रहे। एकाएक उनकी निगाह नीली टाई पर स्थित हो गई— क्या इसमें कोई सांकेतिक सन्देश है?

अगले दो सप्ताह तक डॉ. शर्मा दिखाई नहीं दिए। सुधा को अपने लेख के विषय में उत्सुकता थी, वह उनके ऑफिस में पता लगाने गई। दरवाजे पर दस्तक देने पर कोई उत्तर नहीं मिला, तो उसने झाँककर भीतर देखा। कमरा खाली था, मेज़ पर कुछ पन्ने बिखरे पड़े थे। जैसे ही उसने भीतर प्रवेश किया, हवा का एक झोंका आया और कुछ पन्ने उड़कर उसकी ओर आ गए। वह उन पन्नों को समेटकर मेज़ पर रखने लगी; अचानक उसने एक पन्ने पर तस्वीर देखी जिसकी आकृति उससे मिलती थी। वह चौंक उठी “क्या डॉ. शर्मा सचमुच उसकी ओर आकर्षित हैं?” चन्द मिनटों तक वह मूर्ति की तरह खड़ी रही, कुछ सोचती रही। फिर उसने वह पन्ना अपने बैग में रख लिया और बाहर निकल गई।

डॉ. शर्मा की यह अन्तिम क्लास थी, उसके बाद एक महीने की छुट्टी होने वाली थी। उनकी उजली शर्ट पर नीली टाई चमक रही थी और उनके हाथों में एक मोटा पुलिन्दा था। उन्होंने कहा “मैंने आप सभी का निबन्ध पढ़ लिया है और अपनी टिप्पणी लिख दी है। इसके आलोक में यदि कुछ पूछना चाहें, तो छुट्टी के बाद मैं समय दूँगा।” उन्होंने विद्यार्थियों के बीच उनका निबन्ध बाँट दिया। “आज इस सेमेस्टर का अन्तिम क्लास है, यदि आपकी कोई जिज्ञासा हो तो पूछ सकते हैं।”

एक विद्यार्थी ने कहा “मैंने आपको विभिन्न पोशाकों में देखा है, किन्तु आपकी टाई का रंग हमेशा नीला रहता है। क्या इसमें कोई रहस्य है? क्या यह आपके विचारों की दृढ़ता प्रदर्शित करता है या बदलाव के प्रति अनिश्चय? क्या परिधान में भी कोई मूक सन्देश होता है?”

सुधा ने उस लड़के की ओर देखते हुए कहा “तुमने तो मेरे मन की बात कह डाली। परिधान की भाषा, तो एक विद्वान मनोवैज्ञानिक ही समझ सकता है!”

अचानक डॉ. शर्मा के दिमाग में एक बिजली काँध गई। उन्होंने तीखी नज़रों से सुधा की ओर देखा और अपने आप से कहा “तुम भी सांकेतिक भाषा में निपुण हो गई हो।” उनके ओंठों पर हल्की मुस्कान आ गई। फिर उन्होंने उस विद्यार्थी की ओर देखते हुए कहा “तुम्हारी जिज्ञासा उचित है, तुम कुछ भी अर्थ लगा सकते हो, परन्तु आवश्यक नहीं कि वह सही हो। मूक भाषा एक सहायक माध्यम मात्र है, वह जीवन्त भाषा का स्थान नहीं ले सकती। इसीलिए किसी निष्कर्ष पर पहुँचने में सावधानी की जरूरत है।”

सभी कक्षाएँ खत्म हो चुकी थीं। घर लौटने से पहले सुधा ने डॉ. शर्मा के ऑफिस में कदम रखा। वे चौंक पड़े “क्या बात है?”

“यह कागज़ का पन्ना शायद आपका है” कहते हुए सुधा ने वह पन्ना उनकी ओर बढ़ा दिया।

“यह तुम्हें कहाँ से मिला? मैं इसे खोज रहा था।”

“जब आप नहीं थे, तो मैं अपने निबन्ध के विषय में पता लगाने आई थी। आपके ऑफिस में यह पन्ना उड़कर मेरे सामने आ गया। यह आपकी सम्पत्ति है।”

“तुमने ठीक कहा। इस पन्ने की तो कोई कीमत नहीं है, किन्तु इस तस्वीर में मेरी सोच निहित है और यह मूल्यहीन नहीं है। इसे सम्पत्ति कहना शायद उचित ही है।”

“लेकिन वह तस्वीर तो अधूरी है।” सुधा बोल गई।

“अभी यह एक कल्पना मात्र है, रंग भरना बाकी है। सोच रहा हूँ कौन सा रंग भरूँ!”

थोड़ा रुकते हुए उन्होंने पुनः कहा “तुमने भी अपने निबन्ध के अन्त में एक तस्वीर बनाई है,

उसका सन्देश मैं समझ नहीं पाया। उसे भी रंग दो, ज़िन्दगी दो।”

“सचमुच? क्यों न एक दिन हम दोनों अपनी बनाई तस्वीरों को एक साथ देखें?”

“सुझाव अच्छा है। मनोविज्ञान भी कहता है कि तस्वीरों की अपनी भाषा होती है। यह उसे समझने का एक शैक्षिक प्रयोग भी होगा।” डॉ. शर्मा के स्वर में कोई उत्तेजना नहीं, बल्कि गम्भीरता थी।

कॉलिज में छुट्टी हो गई। डॉ. शर्मा भी शहर से बाहर चले गए। करीब एक सप्ताह के बाद सुधा ने अपनी बनाई तस्वीर में प्रेम का रंग भरने के लिए कूची उठाई, किन्तु उसके हाथ रुक गए। विवेक के अंकुश ने पूछा “कहीं यह यौवन का उन्माद तो नहीं? क्या तुमने इसका अंजाम सोच लिया है? यदि उसने तुम्हारा प्रेम-पुष्प स्वीकार नहीं किया, तब क्या होगा? सम्भव है उसकी सोच अलग हो। यह स्थिति दोनों के लिए घातक होगी। उसकी बात याद करो “आदर्श प्यार और वासना के बीच की रेखा धुंधली होती है, फिर इसका उल्लंघन क्यों?” सुधा ने प्रतीक्षा करने का निर्णय लिया।

दूसरी ओर डॉ. शर्मा सोच रहे थे “सुधा ने जिस पन्ने को देख लिया था, उसमें उसकी तस्वीर झाँक रही थी, यद्यपि वह पूर्णतः स्पष्ट नहीं थी। सुधा की सूक्ष्म आँखों ने उसे पहचान लिया था, तभी तो उसने दोनों की बनाई तस्वीरें एक साथ देखने का सुझाव दिया था। यह उसकी परीक्षा की घड़ी भी है।”

छुट्टी के बाद कॉलिज खुल गया, परन्तु डॉ. शर्मा नहीं दिखे। दो सप्ताह के बाद भी वे नहीं आए, तो सुधा को ऑफिस से पता चला कि वे एक शैक्षिक सेमिनार में भाग लेने विदेश चले गए हैं और एक महीने के बाद आएँगे। सुधा को थोड़ा गुस्सा आया “क्या वे तस्वीर वाली बात भूल गए हैं?”

एक लम्बे समय के बाद आज डॉ. शर्मा का व्याख्यान था। विषय था ‘मानवीय सम्बन्धों का एक पहलू’। उन्होंने कहा “आकर्षण या काल्पनिक प्रेम एक मनःस्थिति का प्रतिफल है, जो अकेले में भी

किसी व्यक्ति को आनन्ददायक अनुभूति देता है; वैसे ही जैसे कविता, चित्रकारी या मधुर संगीत। जल्दबाजी में इसे ज़िन्दगी की सच्चाई समझ लेना एक भूल हो सकती है। लेकिन यह भी सच है कि ‘अव्यक्त आकर्षण’ ही जीवन्त प्रेम का प्रथम सोपान है, आवश्यकता है दोनों पक्षों द्वारा इसे पर्याप्त समय देने का। आकर्षण एक नाजुक पौधे की तरह है, इसे पल्लवित होने के लिए समय चाहिए। इसमें दिल और दिमाग दोनों का सहयोग ज़रूरी है।” उन्होंने पुनः कहा “यदि आप मनोविज्ञान से जुड़े पेशे में कार्य करेंगे, तो ऐसे अवसर आएँगे, जब परस्पर प्रेम की जटिल समस्याओं पर आपको परामर्श देना पड़े। इसके लिए आवश्यक है कि आप अपनी ज़िन्दगी में भी इसका ध्यान रखें।”

एक विद्यार्थी ने पूछ लिया “प्रथम दृष्टि में ही प्रेम तो आपने भी सुना होगा, क्या यह असत्य है?”

“ऐसा तो फ़िल्मों में होता है। वास्तविक ज़िन्दगी में मैं इसे एक अपवाद मानता हूँ।”

सुधा की जिज्ञासा थी “कितना समय पर्याप्त होता है? इसकी कोई गणना?”

डॉ. शर्मा ने गंभीरता से कहा “प्रेम ज़मीन पर उगने वाला कोई पौधा नहीं है, जिसके पल्लवित होने का समय निश्चित हो। यह एक भावनात्मक पौधा है, जो दिल के भीतर जन्म लेता है। यह कब परिपक्व होगा या मुरझा जाएगा एक व्यक्तिगत प्रश्न है। ध्यातव्य है कि आकर्षण में उच्छृंखलता का स्थान नहीं होता, इसके ऊपर सामाजिक मर्यादा का आवरण होना चाहिए।”

सुधा को समझते देर नहीं लगी कि आकर्षण और काल्पनिक प्रेम का मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ उठाकर डॉ. शर्मा ने उसके प्रति अपने मन की बात कह डाली है। तस्वीरों को वे एक नाजुक पौधा मानते हैं और उनके तर्क में गहराई है। उनकी विद्वता और व्यावहारिकता ने आज उसे फिर वशीभूत कर लिया। उसने कुछ संकल्प किया और उसके चेहरे पर एक रहस्यमय मुस्कान आ गई।

कई महीने बीत गए। सुधा जब भी डॉ. शर्मा को देखती, हेलो कहना नहीं भूलती। डॉ. शर्मा भी हल्की मुस्कान से उत्तर दे देते। परीक्षा नज़दीक थी, सभी क्लास खत्म होने लगे थे। अगले तीन-चार महीनों में कॉलिज की ज़िन्दगी खत्म हो जाएगी, उसके बाद ज़िन्दगी नई मोड़ लेगी। इसी बीच शिक्षक-दिवस आ पहुँचा। भारतीय परम्परा में शिक्षक समाज के निर्माता माने जाते हैं, विद्यार्थियों में ज्ञान और नैतिकता का दीप जलाना उनका दायित्व होता है और इसके बदले समाज उन्हें ऊँची प्रतिष्ठा देता है। इसी अवसर पर कॉलिज में एक समारोह था, जिसमें विद्यार्थीगण शिक्षकों के प्रति अपनी सद्भावना प्रकट करते हैं। कई विद्यार्थियों ने अपने संक्षिप्त भाषण में शिक्षकों से प्राप्त प्रेरणा की प्रशंसा की और उनके प्रति धन्यवाद व्यक्त किया। सुधा को भी मंच पर आने का मौका मिला, उसने कहा :

“किताबों में पढ़ा है ज्ञान और विज्ञान का  
इतिहास  
व्याख्यानों में सुना है विद्वता का सन्देश,  
तस्वीरों में देखा है भविष्य का सपना,  
दिलों के भीतर संचित है भावों की कल्पना,  
देती हूँ शिक्षक-दिवस की लाखों बधाई  
भारी पड़ेगी आपसे होने वाली जुदाई।”

यह बोलते-बोलते सुधा भावुक हो गई। डॉ. शर्मा अगली कतार में ही बैठे थे, सुधा ने अन्तिम वाक्य उनकी आँखों में झँकते हुए कहा था। उन्होंने भी इसका दर्द महसूस किया।

घर लौटते वक्त सुधा ने डॉ. शर्मा के दरवाज़े पर दस्तक दी। “कौन?” “मैं सुधा हूँ, दो मिनट मिलना चाहती हूँ।” प्रवेश करते हुए सुधा ने कहा “आपके लिए एक छोटा उपहार।”

“मैं विद्यार्थियों से कोई उपहार नहीं लेता—यह मेरी कार्यपद्धति के अनुकूल नहीं है।”

सुधा ने विनम्रतापूर्वक कहा “आज के दिन यह मेरा अधिकार है, आज शिक्षक-दिवस है।”

डॉ. शर्मा ऐसे उत्तर के सामने शस्त्रहीन हो गए। उन्होंने पैकेट ले लिया। “इसमें क्या है?”

“खोलकर देखिए।”

पैकेट में नीले रंग की एक सुन्दर टाई थी। “इसे मैं ज़रूर पहनूँगा।”

दूसरे दिन उन्होंने देखा टाई के भीतर अंग्रेज़ी का ‘एस’ रेशमी धागे से लिखा हुआ था।

परीक्षा होने में दो सप्ताह की देरी थी। मनोविज्ञान के कई छात्र डॉ. शर्मा से कुछ प्रश्नों के समाधान के लिए सुझाव लेने आ पहुँचे। सुधा भी मौजूद थी। उसकी दी हुई टाई उन्होंने पहन रखी थी, उसे संतोष हुआ। अन्त में एक छात्र ने इच्छा ज़ाहिर की “रिज़ल्ट के पश्चात् अपने कैरियर के लिए आपसे कुछ सलाह लेना चाहूँगा।”

“शायद मैं उपलब्ध नहीं रहूँगा, मुझे जल्द ही एक वर्ष के लिए विदेश जाना है।”

सुधा को एक झटका लगा “क्या यह मेरी दूसरी परीक्षा होगी?”

सभी कमरे से बाहर निकल रहे थे, सुधा सबसे पीछे थी। डॉ. शर्मा ने धीरे से कहा “रेशमी धागे का रंग आकर्षक है।” सुधा के लिए इतना संकेत काफी था, वह मुस्करा उठी।

समय तेज़ी से निकल गया। परीक्षा का रिज़ल्ट शीघ्र ही आने वाला था और सुधा को एक पेशेवर नौकरी की तलाश थी। इस सन्दर्भ में वह दो-तीन मनोचिकित्सकों से मुलाकात भी कर चुकी थी। अचानक उसे डॉ. शर्मा का सन्देश मिला “कल तीन बजे की फ़्लाइट से मैं जा रहा हूँ।” सुधा को गुस्सा भी हुआ और अचम्भा भी “ऐसी निष्ठुरता क्यों? आकर्षण और उदासीनता एक साथ? यह कैसा सम्बन्ध है?” उसकी बुद्धि ने सचेत किया “यदि आकर्षण प्रबल नहीं होता, तो वे तुम्हें सूचना ही क्यों देते? यह उनका अव्यक्त आकर्षण है। इसे पल्लवित होने का समय दो, उन्होंने ऐसा कहा भी था।”

दूसरे दिन सुधा एअरपोर्ट पर फूलों के गुलदस्ते के साथ मौजूद थी। उसे आश्चर्य हुआ कि उसके

अलावा कॉलिज का कोई दूसरा व्यक्ति, शिक्षक या विद्यार्थी मौजूद नहीं था। डॉ. शर्मा ने कहा “यह आवश्यक नहीं कि हमारी अनुभूति का प्रदर्शन हो, इसके गलत अर्थ लगाए जा सकते हैं। भावनात्मक तरंगें शक्तिशाली होती हैं, अपने गंतव्य स्थान तक स्वतः पहुँच जाती हैं। आज ही मैंने यह पत्रिका खरीदी है, इसे पढ़ लेना। अब तुम परिपक्व हो चुकी हो।” हवाई जहाज़ में चढ़ने के लिए आग्रह हो चुका था, डॉ. शर्मा चल पड़े।

सुधा अपने कमरे में थी। सोने से पहले वह पत्रिका के रंगीन पन्नों में झाँकने लगी। उसकी नज़र ‘प्यार एक व्यापार’ नामक शीर्षक पर टिक गई। “प्यार एक व्यापार के समान है, जो लेनदेन के तराजू पर आश्रित है। तथाकथित आदर्श प्यार, जिसमें कोई विनिमय नहीं हो, केवल कल्पना है, अव्यावहारिक है, क्षणभंगुर है। प्रतिभा, सौजन्यता, सौन्दर्य इत्यादि गुणों का लेनदेन नहीं किया जा सकता; इनके प्रभाव को महसूस किया जा सकता है। यदि लड़कियाँ किसी से प्यार करेंगी, तो बदले में क्या देंगी? यह प्रश्न लड़कों पर भी लागू होता है। व्यावहारिक दृष्टि से प्यार में उनका शरीर शामिल होता है, जिसे हम वासना या सेक्स कहते हैं। यही कटु सत्य है और जिन्दगी का आधार भी।” सुधा रोमांचित हो गई, आज प्रथम बार उसे वासनात्मक उत्तेजना का अनुभव हुआ। वह बेचैनी से टहलने लगी।

शांत मन से उसने सोचा “डॉ. शर्मा ने निश्चित ही यह लेख पढ़ लिया होगा; फिर मेरे पढ़ने से उनका तात्पर्य? उन्होंने यह भी कहा था ‘अब तुम परिपक्व हो चुकी हो’। इसका क्या मतलब? क्या वे मेरे साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं? परन्तु वे तो सामाजिक मर्यादा के समर्थक हैं। तब इसका एक ही तर्कसंगत अर्थ निकलता है — वे मुझे अपनी जीवनसंगिनी बनाना चाहते हैं। इस लेख में ही उनका प्रस्ताव निहित है, अन्तिम निर्णय उसे लेना है।”

शीघ्र ही सुधा एक मनोचिकित्सक के साथ काम करने लगी। उसने कई युवा प्रेमियों को देखा, जो कम उम्र में यौन सम्बन्ध बना चुके थे और अब मानसिक उलझनों से ग्रसित थे। उनके बीच प्यार की उष्णता खत्म होती जा रही थी, वे अलगाव के समीप थे, नई जिन्दगी की तलाश में थे। डॉ. शर्मा की शिक्षा की उपयोगिता उसके सामने थी।

एक वर्ष बाद डॉ. शर्मा और सुधा एक रेस्तोराँ में डिनर ले रहे थे। डॉ. शर्मा ने ‘अव्यक्त आकर्षण’ नामक एक किताब सुधा के हाथों में रख दिया “मेरी तरफ़ से एक उपहार। अपने विदेश प्रवास के दौरान मैंने यह किताब लिखी है।”

किताब खोलते ही सुधा ने देखा “सुधा सिन्हा को समर्पित”।

“यह सुधा सिन्हा कौन है?” उसने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

“मेरे सामने बैठी है” उनके स्वर में शालीनता थी।

उन्होंने प्राक्कथन में लिखा था “सुधा सिन्हा मेरी छात्रा थी। उसी की प्रेरणा से मैं मनोविज्ञान में तस्वीरों के अध्ययन की उपयोगिता पर यह प्रयोग कर पाया हूँ, मैं उसका आभारी हूँ।”

“क्या आपने मुझे प्रयोग का एक साधन मात्र माना है?” सुधा के स्वर में रुखापन था।

“पूरी जिन्दगी को मैं एक प्रयोगशाला मानता हूँ, इसमें हम दोनों शामिल हैं। इसके उज्ज्वल पक्ष को देखो। इस किताब ने हम दोनों को एक साथ जोड़ दिया है।”

सुधा इन शब्दों की गहराई को समझने का प्रयास कर रही थी।

थोड़ी देर बाद “मैं अपनी प्रेरणा अपने साथ रखता हूँ” कहते हुए, उन्होंने अपने पॉकेट से एक तस्वीर निकाली और उसे मेज़ पर रख दिया। वह सुधा की सुन्दर तस्वीर थी, जिसमें प्रेम के रंग भरे थे।

सुधा की आँखों में विस्मय था, वह भावुक हो

उठी। सँभलते हुए उसने भी अपना बैग खोला और एक तस्वीर को मेज़ पर रख दिया। वह डॉ. शर्मा की तस्वीर थी, उनकी नीली टाई में एक विशेष आकर्षण था! दोनों तस्वीरों को एक साथ रखकर उन्होंने कहा “ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। तुमने कभी कहा था ‘क्यों न एक दिन हम दोनों अपनी बनाई तस्वीरों को एक साथ देखें?’ वह अभिलाषा आज पूरी हुई।” सुधा तस्वीरों को देखती रही। वह

सपनों की दुनिया में थी।

डॉ. शर्मा ने उसका हाथ चूम लिया, सुधा ने भी विरोध नहीं किया।

यह पहला अवसर था, जब डॉ. शर्मा ने उसे स्पर्श किया था। उसे एक रोमांच का अनुभव हुआ। वह अनायास कह बैठी ‘आज से आप डॉ. शर्मा नहीं, केवल प्रभात हैं। मैं धन्य हो गई।’

kkps1944@gmail.com

## सरोज रानियाँ

— डॉ. वंदना मुकेश  
इंग्लैंड, यू.के

क्लास में घुस ही रही थी कि मिसेज़ चैडवेल की आवाज़ से मेरे चाबी ढूँढते हाथ अनजाने ही सहम गए।

“दैट्स हाऊ वी टीच! इफ़ यू डॉट लाईक, यू मे गो टू अदर क्लास!”.....

एक सन्नाटा छा गया। मैं अब तक चाबी ही ढूँढ रही थी या हाथ में चाबी भीचें थी। फिर किसी के चलने की आवाज़ आई, मैंने चाबी जेब से बाहर निकालकर ‘की-होल’ में डाल दी। वह आवाज़ भी पास आ गई, तो मैंने मुड़कर देखा। एक पचपन-साठ के लगभग, साधारण कद-काठीवाली औरत लंबा जैकेट पहने मेरे एकदम पास से निकल गई। उसी के पीछे-पीछे सिर झुकाए सलवार कमीज़ पहने एक नवयौवना चली गई।

अगले दिन क्लास शुरू होने के पहले बोर्ड पर तारीख़ ही लिख रही थी कि दरवाज़े को किसी ने धीमे-से खटखटाया। मैंने कहा “प्लीज़ कम इन”।

मैंने पलटकर देखा, तो वही कल वाली लड़की सिर झुकाए खड़ी थी। मैंने कहा —

“बोलिये, क्या बात है?”

“मैंडम, मैं इंग्लिश बोलना सीखना चाहती हूँ।

मैं आगे पढ़ना चाहती हूँ। क्या मैं आपकी क्लास में आ सकती हूँ?” वह सकुचाते हुए सिर झुकाए ही बोली।

मैंने कहा “क्यों नहीं, ज़रूर। पर आप तो मिसेज़ चैडवेल की क्लास में हैं न?”

लड़की ने अब चेहरा उठाया, चेहरा क्या था किसी कलाकार की सुंदरतम कृति मेरे सामने साक्षात् खड़ी थी। सहमी हुई कातर दृष्टि और हिरणी-सी कटीली, पनीली, बोलती हुई, जानदार आँखें। गोरा खिला हुआ रंग, चेहरे पर एक अजीब किस्म का आकर्षक ठहराव। पतली-दुबली। मेरी आँखों के सम्मुख, सीता, सावित्री, शकुंतला सब एक साथ घूम गई। क्या वे ऐसी दिखती होंगी? वह वास्तव में सुंदरता की मूरत थी। उसके सारे निरीक्षण में तीस सेकेंड से भी कम का समय लगा। उम्र लगभग तेईस, मेरी अपनी बेटी के बराबर।

मैंने तुरंत उसे सामने बैठने का इशारा किया। मानो, मैं उसे खोना नहीं चाहती थी। मेरे हाँ कहते ही उसके चेहरे का तनाव भी कम हो गया। फॉर्म भरते हुए पता लगा कि वह दो साल पहले शादी के बाद यहाँ आई है। यहाँ घर में सास-ससुर, पति



और एक देवर के साथ रहती है। मुझे अच्छा लगा कि उसकी सास उसे पढ़ने भेज रही हैं। उसने यह भी बताया कि उसके पति का परिवार यहाँ पैंतीस सालों से है। उसके पति और देवर यहीं की पैदाइश हैं। वे पढ़े-लिखे भी यहीं हैं। वह मेरी क्लास में आने लगी। सरोज नाम था उसका। काफी ज़हीन थी, उसने पहली परीक्षा पहले तीन महीनों में ही कर ली।

वह ठीक एक बजने में पाँच मिनट पर आती और तीन बजे क्लास खत्म होते ही सबसे पहले निकल जाती। उसे लेने के लिए वही महिला आती थी, जिसके साथ मैंने पहले दिन देखा था।

सरोज सामान्यतः शांत रहती थी, गंभीर प्रकृति की थी। कभी किसी बात पर उसकी आँखें हँस पड़ती, तो मुझे बहुत खुशी होती।

रोज़मर्रा की जिंदगी की विभिन्न परिस्थितियों में हमारे विद्यार्थी बोलचाल की अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग कर सकें या लिख-पढ़ सकें, कुछ इसी तरह के विषयों पर आधारित होती थी हमारी दो घंटों की क्लास। डॉक्टर के यहाँ पंजीकरण कैसे करना, बैंक, पोस्ट-ऑफिस में क्या बात करनी है, खरीददारी से संबंधित शब्दावली, सोशल सर्विसेज़ आदि विषयों पर जानकारी, आपातकालीन सेवाओं के महत्वपूर्ण नंबर आदि विषयों की जानकारी से विद्यार्थियों को इंग्लैंड के जीवन से परिचित कराना था। इसी के साथ-साथ इन परिस्थितियों में अंग्रेज़ी भाषा के अभ्यास से इन विद्यार्थियों का आत्मविश्वास भी बढ़ता था।

मैंने महसूस किया कि सरोज का चेहरा कुछ निस्तेज-सा लगने लगा था। मैंने सोचा, नई शादी हुई है, संभवतः गर्भवती हो। एक दिन वह कुछ जल्दी आ गई, मैं पढ़ाने की तैयारी कर रही थी।

मैंने उससे पूछा “कैसी हो सरोज, आजकल बहुत सुस्त नज़र आ रही हो, कहीं प्रेगनेंट तो नहीं हो?”

उसकी आँखों में एक क्षण के लिए एक व्यंग्यात्मक मुस्कान आई, लेकिन बोली कुछ नहीं।

मैंने फिर उकसाया, शरमाओ नहीं, तुम्हारी उम्र की ही मेरी बेटी भी है। शायद इस बात से उसे कुछ तसल्ली मिली। बोली “मुझे ऐसा कुछ नहीं होगा!”

उसके स्वर की कड़वाहट से मैं सन्न रह गई। लेकिन तभी अन्य लोगों के आने से वह एकदम सजग होकर बैग में से किताब निकालने लगी। मैं भी चुप तो हो गई, लेकिन उसकी बात से मेरे मन में अनेक प्रश्न उठने लगे। फिर सप्ताह निकल गया, कोई बात न हो सकी।

इधर दूसरी महिलाओं से मुझे पता चला कि उसे क्लास के अलावा कहीं जाने की इजाज़त नहीं है। वह औरत जो रोज़ क्लास खत्म होने से पहले ही आ जाती है, वह इसकी सास की सहेली है, जो स्कूल में सफ़ाई का काम करती है।

फिर एक दिन वह जल्दी आ गई। उसका उतरा चेहरा देखकर मेरा दिल किया कि उसे अपने सीने से लगाकर पुचकारूँ और पूछूँ कि क्या बात है। लेकिन ऊपरी तौर पर मैंने उसके हालचाल भर पूछे। वह मेरी टेबल के पास आकर खड़ी हो गई।

मैंने पूछा “तबियत तो ठीक है सरोज?”

“जी” वह बोली

मैंने पूछा “खुश तो हो न यहाँ। कैसे हैं तुम्हारे ससुराल वाले, तुम्हारा ख्याल रखते हैं न?”

“जी” उसने सिर हिलाया।

मैंने पूछा “तुम्हारा पति कैसा है?”

अचानक उसकी आँखें बहुत कुछ बोलीं, लेकिन मुँह से सिर्फ़ इतना निकला “मैंडमजी, मैं सोचती थी कि अपने पति के पीछे मोटर साइकिल पर बैटूंगी, उसकी कमर में हाथ डालकर.....।”

बाकी लोगों के आने से बात वहीं रह गई। मैंने बात को हल्का-फुल्का करने के इरादे से अन्य लोगों से उनके इंग्लैंड आने के अनुभव के बारे में बातचीत की। लेकिन मुझे उस लड़की के बारे में और जानने

की इच्छा बढ़ने लगी। उसकी शिक्षिका होने के नाते उसकी सुरक्षा के प्रति मेरा कर्तव्य था, सो मैंने उसे ट्यूटोरियल के बहाने अगली क्लास में आधा घंटा पहले आने को कहा। उसने कहा कि आप लिखकर दे दीजिए, वरना मैं नहीं आ पाऊँगी।

अगले हफ़्ते वह आई ही नहीं, मेरी बेचैनी बढ़ गई। बाकी लोगों से पूछा, तो शहज़ादी ने दबे शब्दों में बताया कि उसके घर में थोड़ी परेशानी है। मैं कुछ परेशान—सी हो गई। मैंने तय कर लिया था, अगली बार आते ही उससे आवश्यक जानकारी ले लूँगी।

वह उसके अगले हफ़्ते आधा घंटा पहले आ गई। उसे देखकर मुझे खुशी भी हुई और दुख भी। खुशी इसलिए कि वह तीन हफ़्ते बाद क्लास में आई और दुख इसलिए कि उसकी आँखों के नीचे गहरे गढ़वे पड़े थे, चेहरा एकदम निचुड़ा हुआ और होठ पपड़ाए। आँखें झुकी हुई।

मैंने कहा “सरोज, मैं तुम्हें लेकर बहुत चिंतित थी, तुम मेरी बेटा की उम्र की हो, तुम्हारे मन में कोई भी बात है, तो बिना डरे तुम मुझसे बात कर सकती हो।”

“मैडम.... मैं फँस.....उसका गला रूँआसा हो गया। मैंने पानी का गिलास लाकर उसे दिया और कंधे पर सात्वना भरा हाथ रखा। मेरे हाथ रखते ही उसके मन में बँधा सैलाब आँखों से टूट निकला। क्लास शुरू होने में लगभग 20 मिनट थे। मैं उसके सामने कुर्सी पर बैठ गई। मैं चाहती थी कि वह कुछ बोले, लेकिन उसकी आँखों से आँसू रुकने का नाम न ले रहे थे। मुझे उसका रोना उसके स्वास्थ्य के लिए ज़रूरी लगा। मेरे कान दरवाज़े पर थे और मैं उसका हाथ दबाए धीरज बँधा रही थी, पर सच तो यह था कि मेरा मन उसकी कहानी जानने को बेचैन था।

“दो साल शादी को हो गए, पति मुझे जाहिल समझता है। उसने मुझे आज तक हाथ भी नहीं

लगाया। शादी का मतलब क्या होता है, मैं नहीं जान पाई हूँ। टीचर जी, दिल करता है कि वह मुझे... कि वह मुझे.....। रात—रात भर प्ले स्टेशन खेलता है। मैंने एक दिन मना किया, तो तीन—चार थप्पड़ जड़ दिए। तब से जब—तब मुझ पर हाथ छोड़ देता है। सास दूसरों के सामने अलग व्यवहार करती है। अकेले में धमकाती है। कहती है कि मेरा बेटा यदि दिन को रात कहता है, तो तू भी कह। मेरे पिता का देहांत हो गया, तब भी जाने नहीं दिया, अगर अपनी स्थिति माँ को बता दी, तो वह जीते जी मर जाएगी। तीन बहनों की शादी होनी है। मैं क्या करूँ टीचर, मैं फँस गई हूँ बुरी तरह से’। उसने अपना मानो, हृदय खोलकर रख दिया। उसकी हालत जानकर, भीतर, मेरा हृदय ज़ार—ज़ार रो रहा था! मैं स्तब्ध! निःशब्द!..., चुपचाप!..... सिर्फ़ सुनती रही।

उस दिन बाकी लोगों के आने के पहले ही वह रोकर हल्की हो चुकी थी। मुँह धोकर कॉपी खोलकर बैठ गई। मैंने उस दिन सोचा तो था कि बैंक में अकाउंट कैसे खोलते हैं, यह पढ़ाऊँगी, किंतु सरोज की कहानी ने मुझे भीतर तक हिलाकर रख दिया था। अंतिम क्षण मैंने अपना निर्णय बदलकर, उस दिन पारिवारिक हिंसा, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य तथा ‘सोशल सर्विसेज़’ के विषय में जानकारी दी। कुछ महत्वपूर्ण नंबर लिखवा दिए सभी को।

गर्मी की छुट्टियाँ शुरू होनेवाली थीं। दो सप्ताह और चार कक्षाएँ रह गई थीं। उस दिन के बाद सरोज मेरी कक्षा में कभी नहीं आई। मन का कोई कोना हर कक्षा में उसकी प्रतीक्षा करता। एक दो बार अन्य महिलाओं से जानने की कोशिश भी की, पर कुछ पता नहीं चला। कक्षा में सरोज रानी अक्सर शहज़ादी के साथ ही बैठती थी। लेकिन शहज़ादी के जुड़वा बच्चे होनेवाले थे, तो तीन सप्ताह से वह भी नहीं आ रही थी। कैसे पता करती।

सत्र का आखिरी दिन था। अचानक शहज़ादी

अंदर आई, मेरा दिल किया कि उससे पूछूँ कि सरोज की कोई खबर है क्या। लेकिन शिष्टाचार के नाते मैंने उससे बच्चों, उसके स्वास्थ्य आदि की बात की। लेकिन फिर मेरे मन की मुराद पूरी हो गई।

बोली “टीचर, आपको सरोज रानी के बारे में बताना है”

“टीचर, जब वो क्लास में नहीं आई थी न.. उसके दो-तीन दिन बाद उसके घरवालों ने उसे बहुत पीटा। वह जैसे-तैसे दरवाज़ा खोलकर भागी और सर्जरी (दवाखाना) में पहुँच गई। सरोज को वहाँ से शायद सोशल सर्विसेज़ वाले ले गए।” वह एक सॉस में बोल गई।

“तुम्हें कैसे पता” मैंने पूछा।

शहज़ादी ने बताया कि वह उस समय सर्जरी में मौजूद थी, किंतु पुलिस वगैरह को देखकर डर गई। उसने सरोज को वहाँ से जाते हुए देखा।

सरोज रानी की यह आखिरी खबर थी।

\* \* \*

खिड़की का काँच पोंछते हुए सीढ़ी पर मेरा संतुलन बिगड़ गया और मैं धड़ाम से गिरी। कोहनी और कलाई की हड्डियाँ टूट गईं। फौरन घर के काम के लिए एक ऐजेंसी से संपर्क किया। नाम सुरजीत, 30-32 साल की होगी, लाल टॉप-नीली जीन्स, मेचिंग लाल लिप्सटिक। गोरी, साधारण नाक-नकश, लंबी और तंदुरुस्त। घर की साफ-सफ़ाई के लिए सुरजीत सप्ताह में एक दिन आने लगी। वह खाना बहुत स्वादिष्ट बनाती थी और मुझे ज़िद कर के, बड़े प्यार से, गरम-गरम रोटियाँ सेंककर खिलाती। सुरजीत वैसे शांत ही रहती थी। बात करने पर मुस्कुराकर ही जवाब देती। मैं उसके काम से खुश थी, वह मुझसे।

एक दिन मैंने उससे कहा कि सुरजीत तुम क्लास में इंग्लिश सीखने आया करो। सुरजीत ने मुस्कुराते हुए खिड़कियाँ साफ़ करने के लिए कपड़ा और विंडो क्लीनर की बॉटल उठा ली। “क्या कहूँ

मैडम, अगर नसीब में पढ़ना-लिखना ही होता, तो यहाँ शादी कर के क्यों आती, स्कूल की प्रिंसीपल न बन जाती? बस, मेरी माँ फँस गई मेरी सास के जाल में। मेरी सास मुझे देखने आई थी, तो सोने के कड़े डाल गई थी शगुन में। पाँच महंगे सलवार-कमीज़ और मिठाई-चॉकलेट के तो इतने डिब्बे लाई थी कि मेरी माँ ने पूरे गाँव को ही खिलाई।”

“तुम हिंदी तो बड़ी साफ़ बोलती हो? कहाँ की हो, पंजाब या दिल्ली?”

“क्या फ़र्क पड़ता है मैडम जी, किस गाँव की हूँ और किस की बेटी हूँ? क्या फ़र्क पड़ता है कि गाँव के सरकारी स्कूल में हिंदी पढ़ाती थी? ...पिंड में बड़ी इज्जत थी मेरी। 2500 रु. महीना मिलता था। पर मैं खुश थी। मेरे बाप ने मेरी नौकरी लगाने पर पूरे पिंड में मिठाई बाँटी थी। अब तो लोगों के टॉयलेट साफ़ करती हूँ। अच्छा हुआ बाप को यह नहीं सुनना पड़ा। उससे पहले ही भगवान उन्हें उठा लिए। .....दिल्ली एअरपोर्ट तक छोड़ने आए थे मेरे पापा जी।” मुझे लगा, पापा बोलते हुए उसका गला रूँध गया था।

मैंने उसके कंधे पर हाथ रखा, फिर बहुत धीरे से कहा “फिर क्या हुआ बताओ न सुरजीत।”

उसने नाक सुड़की। “पापा जी बहुत खुश थे। पहली बार हवाई जहाज़ देखा था मैंने। मन में अजीब-सा डर था, यदि कोई लेने नहीं आया तो...। पापा जी के गले लगकर खूब रोई थी मैं। पापा जी भी रो रहे थे। इंग्लैंड आने की खुशी तो शायद उतनी नहीं थी, जितना अपनों के छोड़ने का ग़म और एक अंजानी आशंका से भरा मन।”

फिर अचानक सुरजीत ने अपना मन बदल लिया, अपनी कहानी को झटके से ख़त्म करती हुई बोली “मैडम जी छोड़िए भी, क्यों उन हरामियों का नाम लेकर अपना दिन खराब करना।” उसकी आवाज़ में क्रोध-सा झलका। वह कुछ पलों के लिए चुप हो गई।

लेकिन उसके भीतर बहुत कुछ उबल रहा था, जो बाहर आना चाहता था।.....फिर आवाज़ को संयत करते हुए बोली “छः साल हो गए हैं मैडम जी, शादी को। घर नहीं गई हूँ। माँ नाराज़ है। दो छोटी बहनें कुँवारी बैठी हैं। माँ को पता नहीं है कि यहाँ मेरे साथ क्या हुआ। पहले फ़ोन पर कहती थी ‘तू बहन नाल मुंडा ओत्थे ई क्यों नी वेख लेदी ए। तेरा नसीब चमका, उनके भी चमक जाएँगे। एक-दूसरे के सुख-दुख में काम आ जाना है एक दूसरे ने।’ “उसे तो पता नहीं कि नसीब नहीं, मैं दूसरों के टॉयलेट-बाथरूम चमका रही हूँ” उसका स्वर कड़वा हो चुका था।

फिर अपनी भावनाओं पर काबू पाकर बोली “पर मेरी चुप से उसे लगता है कि मैं बहनों की खुशी नहीं चाहती। अब क्या बताऊँ उसे कि दो सोने के कंगन ने तेरी बेटा की ज़िंदगी बरबाद कर दी।”

“.....अब तो यही मेरा गाँव है। बर्मिंघम और वर्किंग वीमेंस होस्टल मेरा मायका” उसने हँसने की

कोशिश की।

वर्किंग वीमेंस होस्टल... मेरे दिल की धड़कनें कुछ तेज़-सी हो गईं।

“सुनो, तुम वर्किंग वीमेंस होस्टल में रहती हो? क्या तुम किसी सरोज को जानती हो? सरोज रानी!”

“मैडम जी, मैं सबको जानती हूँ। बबली, डिपी, हैपी, शीतल, सुख्खी, जीत, बलजिंदर... हमारे होस्टल में रहनेवाली हर लड़की की एक ही कहानी है। हमारे साथ धोखा हुआ है। हमारी ज़िंदगी धोबी के कुत्ते से भी बदतर है, हम कहीं के नहीं रहे।”

फिर एकाएक वह बड़े ज़ोरों से हँसी। “सरोज रानी, हाँ मैं जानती हूँ सरोज रानी को!

हम सब सरोज रानियाँ हैं। हा! हा! हा! हम सब सरोज रानियाँ हैं। हम सब सरोज रानियाँ हैं।” उसकी आवाज़ सारे घर में गूँजने लगी। मेरी कोहनी का दर्द अचानक बहुत बढ़ गया।

**vandanamsharma@hotmail.co.uk**

# कोरोना विभीषिका

— प्रो. मृदुला जुगरान  
उत्तराखण्ड, भारत

कलांत हो गई धरती भी मानव को पाठ पढ़ाते,  
मुल्कों के काले कर्मों की कालिख धोते-धोते।

प्रथम शस्त्र की ज्वाला में राष्ट्रों ने खुद को झोंका,  
फिर इच्छा की काल नागिनी ने घर-घर को फूँका।

युद्ध-युद्ध से शस्त्र-शस्त्र से रक्त बहा धरती पर,  
धरती ने कब चाहा मुझको दो काली का खप्पर?

धरती ने मानव उपजाया, और अंक में लेकर,  
पुचकारा सहलाया उसको, आदिकाल से लेकर।

खेत दिये खलिहान दिये वे शस्यश्यामला बनकर,  
ऊँचे पर्वत झरती नदियाँ, तृषा बुझायी सत्वर।

फल से नमित डालियों ने मानव! तेरा सत्कार किया,  
तेरे हित धरती ने सब कुछ भार स्वयं पर वहन किया।

किंतु सभ्यता की तूने, झूठी परिभाषा रच डाली,  
उठा शस्त्र तलवार म्यान से ध्वंस धरा ही कर डाली!

ले शस्त्रों की होड़ रचे फिर अणु-परमाणु सरीखे,  
हिरोशिमा नागासाकी के घाव न अब तक सूखे?

नाश और विध्वंस तुझे अब सुख के कारक लगते,  
नित-नूतन आविष्कारों से अटे-पटे से रहते।

सुना! सभ्यता के विनाश का, आगे जो फल होगा,  
जैविक हथियारों की जद में घर-घर मनुज सड़ेगा।

लाशों का अंबार लगेगा रुदन करेगी धरती,  
तिल-तिल मरते प्राणी होंगे आर्तनाद हो करती।

अनगिन आधि-व्याधियाँ आकर तुम पर वार करेंगी,  
सब कुछ होगा पास तुम्हारे, सांस न लेने देंगी।

कुपित प्रकृति के देख तमाशे, जो बोया धरती पर,  
कोरोना बनकर फूटेगा धरती पर यह मंजर!!

राष्ट्रों! तुम क्या समझ सकोगे इस धरती की पीड़ा?  
एक रक्त एक धमनी में है, गुंथा विश्व यह सारा।

प्रिय भारत! सुंदर भारत ही, ऐसा देश बनेगा,  
विश्वगुरु बन रम्य कल्पना का श्रृंगार बनेगा।

उसने धरती पर सदैव ही मानव को सींचा है,  
शांति दूत बन सकल विश्व को, मोहित कर खींचा है

मनुज पुत्र हो अगर, विश्व में फैलो छाया बनकर!  
जीत सको तो हृदय जीत लो, एक मसीहा बनकर।।

**prof.mridulajugran@gmail.com**

## वे आँखें

— राखी राठौर  
उत्तर प्रदेश, भारत

झील—सी नीली आँखें  
तो बहुत देखी जा चुकी  
देखने की ज़रूरत है,  
उन गहरी काली अंधेरे से भरी  
झुर्रियों से घिरी आँखों को  
जो दिखाती हैं,  
उनके संपूर्ण जीवन की थकान, निराशा  
गड़ढ़ों में धंसी, पीली परत पर लाल रेखाएँ  
मानो उसकी परती पड़ी ज़मीन हो  
सालों से बंजर पड़ा खेत हो  
जहाँ अब किसी फसल की आशा नहीं।  
उनमें कभी—कभीर ढलकती बूंदें  
किसी बरसात की फुहार नहीं होती  
वे उन लहरों की भाँति हैं,  
जो सर्वस्व मिटाने आती हैं।

वे निश्चय ही,  
इंतज़ार करना चाहती हैं  
पर कोई वसंत नहीं आता  
और अंततः  
बार—बार पतझड़ की मार न सह पाने पर  
सदैव के लिए बंद हो जाएँगी  
फिर कोई निकलेगा इसी आशा में  
उन गड़ढ़ों से शीतल जल की खोज में  
और पाएगा केवल रूखापन।  
न खत्म होने वाली यह प्रक्रिया  
यथावत चलती रहती है  
और वे उलझे रहते हैं,  
झील—सी नीली आँखों में  
भ्रमक प्रेम की तलाश के लिए।

[rathorerakhi308@gmail.com](mailto:rathorerakhi308@gmail.com)

## भ्रूण हत्या

— वर्षा शर्मा  
सुल्तानपुर, भारत

घर में खुशियाँ छाई थी, मिठाइयाँ भी बँटवाई थी,  
बहू के पैर हैं भारी, सासू माँ ने खबर जब यह पाई थी।  
खातिरदारी होने लगी बहू की, जो पहले कभी न होती थी,  
उसकी पसन्द नापसन्द से ही, घर में हर चीज़  
बनाई जाती थी।।

चार महीने बीते यूँ ही, बहू के मन में खुशियाँ छाई थी,  
होने वाला है आगे क्या, इसे समझ न पाई थी।  
बड़े प्यार से सासू माँ अस्पताल ले कर गयी थी,  
होगा बस रूटीन चेकअप, यह तसल्ली दिलाई थी।

रिपोर्ट जो आयी तो सबके चेहरे पर शिकन उभर आई थी,  
बात क्या हो गई अचानक, बहू समझ न पाई थी।  
अगले पल ही उसे बताया गया, तेरी ये गर्भ गिराई जाएगी,  
काँपती ज़बान से बहू बस “क्यों?” ही पूछ पाई थी।।

पल रही है बेटी गर्भ में, बस यह जवाब ही पाई थी,  
बेटे—बेटी में नहीं कोई अंतर, बहू शिक्षा यही पाई थी,  
ममत्व का सुख तो वह बेटी से ही पाई थी,  
कैसे हत्या कर दे इस नन्हीं जान की, वह समझ  
नहीं पाई थी।।



अगले ही दिन वह अस्पताल ले जाई गई थी,  
अपनी हत्या की साज़िश देख, गर्भ से आवाज़ यह आई थी,  
मुझको मत मार माँ मैं तेरी ही छाया हूँ,  
कैसे भूल गई माँ, तू भी तो बेटी बनकर आई थी ।।

हिल गया कलेजा बहू का, जब आवाज़ यह सुन पाई थी,  
मैं लाऊँगी तुझे इस दुनिया में बेटी यही वादा कर पाई  
थी ।।

गौ—सी सीधी वह बहू, आज सिंहनी बन आई थी,  
अपनी छाया बचाने की, वह दृढ़ निश्चय कर आई थी ।।

वह तो जीत गई, पर जाने कितनी बेटियाँ मरती आई हैं,  
बेटों की इच्छा में बलिदान देती आई हैं,  
मत भूल मनुष्य बेटियाँ ही सृष्टि की रचना करती आई  
हैं ।।

varshaprematmja2715@gmail.com

## इस हत्यारे समय में

— श्री अरविन्द यादव  
इटावा, भारत

उन्हें आता देख भाग खड़ी होती हैं सड़कें  
भाग खड़े होते हैं वह चौराहे  
जहाँ रहते हैं मुश्तैद कानून के लम्बे हाथ  
उन्हें आता देख गिरने लगते हैं औंधे मुँह  
एकाएक, घबराकर  
सीना ताने खड़े शटर  
दौड़ पड़ती हैं नंगे पाँव  
चबूतरे पर बैठी गलियाँ  
होकर सीढ़ियों की पीठ पर सवार  
छिपने को छत की गोद में  
वे जब बोलते हैं  
तो बन्द हो जाते हैं बोलना  
लोहार के हथौड़े  
बन्द हो जाते हैं चिल्लाना  
सब्जियों और फलों के ढेले  
इतना ही नहीं, बन्द हो जाता है धड़कना  
अचानक धड़कते शहर का हृदय  
वे घूमते हैं छुट्टे सांड की तरह  
एक गली से दूसरी गली  
करते हुए, सरेआम नुमाइश अस्त्रों की  
ताकि जन्म से ही पहले कुचल सकें  
उन संभावनाओं को

जिनसे पैदा हो सकता है प्रतिरोध  
खोलकर किसी घर का दरवाज़ा

उनके आने से  
धीरे—धीरे लाल होने लगती है धरती  
धीरे—धीरे आग में नहाने लगते हैं घर  
धीरे—धीरे घबराकर कूदने लगते हैं खिड़कियों से  
बसों और कारों के शीशे  
और धीरे—धीरे थमने लगती हैं दौड़ती हुई सांसें  
तड़प—तड़पकर

वे दे जाते हैं न जाने कितने ज़ख्म  
वे फैला जाते हैं न जाने कितनी नफ़रत  
जिसे भरने के लिए सूरज  
न जाने कितनी बार  
फैलाता है अपने हाथ  
धरती न जाने कितनी बार  
काटती है चक्कर  
बादल न जाने कितनी बार  
बरसते हैं झमझमाकर  
और न जाने कितनी बार,  
थकहार, खूंटियों से लटक

आत्महत्या कर लेते हैं कलेण्डर

ठीक उसी समय जब सारा शहर मना रहा था मातम  
कराह रही थी शहर की गलियाँ और सड़कें  
वे मना रहे थे जश्न  
आलीशान होटल के कमरे में  
मेज़ पर खड़ी बोतल को घेर  
टकराते हुए जाम

वे उड़ा रहे थे बेखौफ़  
कश के साथ धुएँ के छल्ले  
अंगुलियों के बीच मुट्ठी में फँसी खाकी और खादी को  
करते हुए अस्तित्वहीन

अब जब कि इस हत्यारे समय में  
कितना मुश्किल है बच पाना  
उन हत्यारी नज़रों से  
जिनके सामने नतमस्तक हैं सिंहासन  
  
ऐसे भयावह समय में भी  
कविता कर रही है जद्दोजहद  
बचाने को यह सुन्दर संसार  
इन हत्यारी नज़रों से।

**arvindyadav25681@gmail.com**

## विलोम

— श्री राजकिशोर राजन  
बिहार, भारत

जब भी हुआ तेज़ दाँत दर्द  
हुआ रात को ही

जब भी उछाह से निकला घर से  
उसी दिन ठेस लगी पैरों में

जब भी दो रोटी नहीं लाया साथ  
उसी दिन सहकर्मियों ने कहा  
चलो आज खाते हैं टिफ़िन साथ

जब भी भूल गया जेब में रखना कलम  
उसी दिन किसी ज़रूरतमंद ने माँगी कलम

जब भी पहुँचा दिल्ली  
दोस्त मेरा उसी दिल्ली से बाहर निकला था

जब भी उसकी गली में पहुँचा नए कपड़े पहन  
दिखी नहीं एक बार भी बरामदे या छत पर

जब भी पत्नी ने कहा  
वर्षों हुए नहीं जा पाए कहीं घूमने—फिरने  
उन्हीं दिनों कर्ज़ में डूबा था मैं

जब भी लिखना चाहा एकदम नए ढंग की कविता  
पुरानी कविताएँ एक—एक कर आने लगीं बेतरह याद।

**rajan.rajkishor56@gmail.com**

# जब हमारी सुबह हुई

— श्री घनश्याम शर्मा मोहाबीर  
वाले दे प्रेत्र, मॉरीशस

वह सुबह ही क्या सुबह होगी  
जब हमारी सुबह होगी।  
इस इंतज़ार में पता चला  
रात भर आँख ही नहीं लगी।  
अनजान सपनों में खोए रहे,  
खुद के सवाल में उलझे रहे,  
करवटें ऊब गई हमसे,  
यह जानकार  
अब सिर्फ पलकें झपकती हैं।

रात जैसे-जैसे घनी और डरावनी होती गई,  
वैसे-वैसे हम मौन होते गए।

सन्नाटे पर दस्तक क्या दी कि हकीकत से रूबरू  
हो गए,  
हम दोनों के बीच की बातचीत गंभीर होती गई।

आँख सहमी-सी थी,  
माथे पर पसीने टपक रहे थे।  
कुछ कहना चाहते थे, मगर होंठ सहमे से थे।  
हकीकत का यह सामना हमें महंगा पड़ रहा था।

घबराहट में मन एक बार फिर बोल उठा।  
वह सुबह ही क्या सुबह होगी  
जब हमारी सुबह होगी।

अचानक  
दूर अंधेरों के बीच एक रोशनी दिखाई दी  
काफ़ी शोर था वहाँ  
ऐसा लगा मानो आशा और उम्मीद की एक बस्ती  
थी वहाँ  
आशा, उम्मीद, उमंग, उल्लास  
ये सब रहते हैं वहाँ।

जैसे-जैसे शोर तेज़ होता गया,  
रात खत्म होती गई।

आखिरकार जब सुबह आई  
तो पता चला कि  
रात ने रात भर बस चुटकुले सुनाए थे  
और कुछ नहीं।

इस बार आँख क्या खुली कि  
हमारी सुबह ही हो गई।  
सच में  
आज की सुबह ही अलग है,  
जब से हमारी सुबह हुई है।

**keeteshsharma@gmail.com**

# बोलोम कोरोना

— श्री वशिष्ठ कुमार झमन  
बों आकेय, मॉरीशस

संकट आया तो व्यक्त हुई हर मुख से  
मस्तिष्क में झुलसती बेबसी  
मजबूर हुए लोग घर में रहने को  
और प्रदर्शनी लगी दुखड़ों की  
लत लगी है सबको बाहर की  
घर तो सिर्फ सोने की जगह थी  
जीना तो बाहर ही आता है हमको  
पर ज़िंदगी घर में ही थी  
सिखाने आया था वो टीचर—सा  
कुछ बातें मूलभूत  
व्यय होते चले थे जो  
यांत्रिक संस्कृति के हाथों में  
न कक्षा न किताब न पाठ्यक्रम  
और न ही छड़ी  
पर सब की क्लास ली उसने  
नादान हो या ज्ञानी  
सबक सीखा हर किसी ने अपना—अपना

घर में कैद मैंने भी और मेरी बेटी ने भी  
देखती थी वो पापा को बाहर झाँकते लालच से  
मास्क पहन के निकलना, सानिटाइज़र लगाना  
आते ही नहाना, बिरले ही निकलना  
सब देख रही थी, डर को भाँप रही थी  
फायदा उठाने लगा मैं भी उस डर का  
“खा लो वरना बोलोम कोरोना आएगा  
सो जाओ वरना बोलोम कोरोना आएगा  
मोबाइल मत देखो वरना बोलोम कोरोना आएगा”  
कुछ दिन बीते यूँ ही, काबू में रही बेटी थोड़ी  
पर सबक सीखने में उसे देर न लगी  
अब तो मुझसे कहती है —  
पापा मेरे साथ खेलो वरना बोलोम कोरोना आएगा  
मोबाइल मत देखो वरना बोलोम कोरोना आएगा  
सीख लिया उसने भी प्रयोग करना  
“बोलोम कोरोना” का

[vkj3007@yahoo.com](mailto:vkj3007@yahoo.com)

## कोई तो है!

— श्री सहलिल तोपासी  
पुलाक, मॉरीशस

कोई तो है....!  
जो मुझसे कुछ पूछता है!  
हर सच के  
परिणाम से घबराकर,  
हर झूठ के बाद,  
कोई तो है,  
जो मुझसे कुछ पूछता है!  
द्वंद्व भरे

विवादों के बाद  
मेरे हर अनिश्चित  
निश्चय पर  
कोई तो है  
जो मुझसे कुछ पूछता है!  
अपनी हर प्रतिज्ञा,  
हर वचन को  
न निभा पाने पर

कोई तो है,  
जो मुझसे पूछता है  
अपनों के प्रति होते  
हर अन्याय  
हर छल को देखकर  
जब भी मुँह फेरना चाहता हूँ  
कोई तो है,  
जो मुझसे कुछ पूछता है!  
अपनी छोटी-सी-छोटी आशाओं,  
सपनों का,  
श्राद्ध करने पर,  
कोई तो है,  
जो मुझसे कुछ पूछता है!  
मन-मस्तिष्क में,  
उठे सैकड़ों सवालों के लिए,  
उत्तर में,  
वही..... घिसा-पिटा  
पुराना.....

एक सवाल!  
पूछने पर  
कोई तो है,  
जो मुझसे कुछ पूछता है!  
अब.....!  
यही डर लगा रहता है,  
कि कहीं.....,  
ऐसी स्थिति न आए  
जहाँ पर,  
कुछ भी होने पर....  
कुछ भी करने पर....  
कुछ भी सोचने पर....  
कुछ भी कहने पर....  
कुछ भी....  
पूछने के लिए,  
कोई न होगा  
तो....?

sehlil1986@gmail.com

## नास्तिक

— श्री अरविंदसिंह नेकितसिंह  
मेबर्ग, मॉरीशस

माँ  
मैं नास्तिक तो नहीं।  
फिर भी बाध्य हूँ  
तुझी से तुझपर प्रश्नचिह्न लगाने को।

तुझे देख उठती नहीं मेरी भक्ति  
छिप गई तू  
धन-वैभव, समृद्धि, दिखावे की आड़ में।

मस्तिष्क में कहीं  
अब भी गढ़ा है, वह चित्र तेरा  
जहाँ पाँच रुपये का सिंदूर,

एक चंदन, दो बूँद पानी, दो बूँद छाक, एक घूँट दूध  
उस सादे लाल 'तेत्रोन' में लिपटी पड़ोस से मिली  
नारियल के सामने गिराकर  
जब रोंगटे खड़े हो जाते थे।

पर अब जाने क्यों  
तिलमिलाते बल्बों, गरजते लाउड स्पीकरों  
और भक्तों के मेले में भी,  
तू नहीं दिखती  
न मेरी भक्ति।

sameernekitsing@gmail.com

## हम साथ चलेंगे

— सुश्री आरती हेमराज  
सें पियेर, मॉरीशस

हम नन्हे बच्चे इस देश के  
दिल के हैं हम एकदम सच्चे  
छोटे हैं हम,  
छोटे हैं हम, पर विचार हमारे एकदम अच्छे  
हम हैं बच्चे इसी धरती के,  
हम हैं फूल इसी फुलवारी के  
फिर क्यों करते हम लड़ाई?  
चाहे दुख हो या सुख  
सबों की मदद हम करेंगे  
हम साथ चलेंगे, हम साथ चलेंगे  
समाज के हित में हम साथ चलेंगे  
भाई—भाई में एकता लाएँगे हम  
सभी में एकता लाएँगे हम  
भेद—भाव न करेंगे हम  
दुर्गुणों को पनपने न देंगे हम  
हम साथ चलेंगे, हम साथ चलेंगे  
समाज के हित में हम साथ चलेंगे  
हम नन्हे बच्चे इस देश के

दिल के हैं हम एकदम सच्चे  
छोटे हैं हम,  
छोटे हैं हम, पर विचार हमारे एकदम अच्छे  
न समझो हमको अकल के कच्चे  
हम तो हैं भविष्य के चमकते सितारे  
वादा करते हैं हम आज  
शिक्षक बनकर, ज्ञान की ज्योति फैलाएँगे हम  
रक्षक बनकर, बुराइयों को मिटाएँगे हम  
सत्यवादी बनकर, सच्चाई की राह पर चलेंगे हम  
सेवक बनकर, सेवा करेंगे हम  
ऋषियों की सन्तान बनकर, देश की काया पलट  
देंगे हम  
अच्छे बच्चे बनकर, धरती माँ की शान बढ़ाएँगे हम  
हम साथ चलेंगे, हम साथ चलेंगे  
समाज के हित में  
हम साथ चलेंगे।

[aartee18jan@yahoo.com](mailto:aartee18jan@yahoo.com)



# तिरंगा ध्वज लहराये

— श्री हरिहर झा  
मेल्बर्न, ऑस्ट्रेलिया

जिसका गीत बहे, गंगा का झरना गाये  
भारत माँ की शान, तिरंगा ध्वज लहराये।

युवा शक्ति नेता सुभाष की कसमें खाती  
जिसकी धरती शस्य-श्यामला, रत्न उगाती  
कबीर धर देते चादर, होती ना मैली  
सरल सादगी, गहरा चिंतन किसकी शैली

गौंधी, लाल बहादुर, नज़र सामने आये  
भारत माँ की शान, तिरंगा ध्वज लहराये।

राम छोड़ दें राजपाट भी हँसते-हँसते  
ज्ञान प्राप्त हो, बुद्ध नहीं वैभव में फँसते  
बोध मिले, थोथे अभिमान का तर्क नहीं है  
गिरधर को मुरलीधर कह दो, फर्क नहीं है

रानी मीरा, गिरधर दासी होना भाये  
भारत माँ की शान, तिरंगा ध्वज लहराये।

वीर पन्नाधाय ने सुत बलिदान किया था  
किन किन वीरों ने सर्वस्व त्याग दिया था  
कटे शीश तो भी क्या? कभी न शीश झुकाता  
त्याग दधीचि का अबतक है याद दिलाता

भूखों को हम खिला-खिलाकर, ही खुद खाये  
भारत माँ की शान, तिरंगा ध्वज लहराये।

बाज़ीगर का देश? नहीं उपहास चलेगा  
शून्य दिया गणित को, बाधा-शून्य फलेगा  
कम्प्यूटर हाथों में, जादू खूब चलेगा  
धर्म-ज्ञान भी साथ साथ में खूब पलेगा

स्तुति देवता करते जिसकी नहीं अघाये  
भारत माँ की शान, तिरंगा ध्वज लहराये।

**hariharjha2007@gmail.com**

# नारी

— श्रीमती सुनंदा तिवारी  
ओमान

नारी तुम्हें स्वयं ही आगे बढ़ना होगा,  
अपना परिरक्षण करना होगा।

नहीं आएँगे अब कोई कृष्ण,  
अपनी सखी की लाज बचाने,  
तुम्हें खुद ही आगे बढ़ना होगा,  
दुर्योधन का संहार करना होगा।

नहीं आएँगे अब कोई राम,  
अहिल्या का उद्धार करने,  
तुम्हें स्वयं आगे बढ़ना होगा,  
अन्याय का दमन करना होगा।

दुर्गा रूप लेना होगा,  
महिषासुर वध करना होगा,  
छू ना पाए रावण कोई तुम्हें,  
ऐसा कुछ करना होगा।

तुम हो लक्ष्मी तुम ही सरस्वती,  
तुम ही शक्ति स्वरूपा अंबे,  
फिर तुम्हें क्यों रहना है,  
अपनी रक्षा के लिए पर आश्रित।

अगर प्यार की देवी बनकर,  
कर सकती हो सबका पालन,  
तो अन्याय का दमन कर,  
करो इस धरा का भी कल्याण।

भस्म कर दो उन बुरी निगाहों को,  
जो उठे तुम्हारी ओर,  
काट दो उन कशों को,  
जो करें प्रयास दुराचार का।

नारी धर्म नहीं केवल प्यार और संस्कार  
दुराचारियों का नाश कर,  
भटकों को राह दिखाना होगा,  
पृथ्वी को स्वर्ग बनाना होगा।

अपनी शक्ति को पहचान कर,  
अबला नहीं सबला बनना होगा,  
अपना आवेक्षण करना होगा,  
नारी तुझे स्वयं आगे बढ़ना होगा।

# मातृभूमि

— डॉ. अशोक कुमार तिवारी  
ओमान

मातृभूमि है प्यारी मुझे, प्यारी भारत भूमि है,  
हम इसकी संतानें हैं, यह प्यारी मान हमारी है।  
कला, साहित्य और संस्कृति से परिपूर्ण यह भूमि है,  
सुभाष, भगत सिंह और आज़ाद जैसे वीरों के लहू  
से सिंचित,  
यह बलिदानों की भूमि है।  
संगीत, साहित्य, नृत्य और चिकित्सा विज्ञान से  
समृद्ध है इसकी संस्कृति,  
नदियों, पहाड़ों, झरनों और सागर से  
हरी-भरी है इसकी प्रकृति  
खेतों में लहराते हैं सरसों, गेहूँ और धान,

जिसे देख प्रफुल्लित होते हमारे अन्नदाता किसान।  
अनेकता में एकता है इसकी शक्ति,  
सभी धर्मों, भाषाओं और संस्कृतियों का होता यहाँ  
सम्मान,  
सबसे बड़ा गणतंत्र यहाँ, सबके हैं अपने अरमान।  
अनमोल खज़ाने से परिपूर्ण यह, हम हैं इसकी संतान,  
यह प्यारी माँ हमारी है, यह प्यारी माँ हमारी है।

# उल्लू को इन्सान किसने बनाया?

— श्री संदीप सिंघवाल  
पपुआ न्यू गिनी

उल्लू को इन्सान किसने बनाया होगा?  
किसकी बस्ती को कहाँ बसाया होगा?

शाख पर बैठा उल्लू रोज़ चिढ़ाता है  
एक शोर तो रोज़ ही उसे भगाता है  
विश्वास से जब भी चला अंधेरी राह  
उल्लू ने पूरी नहीं होने दी हर चाह।

वो शोर ही तो था कितना मचाया होगा।  
उल्लू को इन्सान किसने बनाया होगा?

उल्लू है वो यूँ भी मन बहलाता गया  
रस्ते भर गीत कोई गुनगुनाता गया  
पर ये जो उसकी डराती आवाज़ थी  
मेरी धड़कनें बढ़ाने को पर्याप्त थी।

कुदरत ने सच इन्सान को डराया होगा?  
उल्लू को इन्सान किसने बनाया होगा?

वो कहते थे नज़रअंदाज़ करता चल  
अपने अंदर लंबी सांस भरता चल  
पर उल्लू ने मन में यों भ्रम डाला था  
भरी दुपहरी में बिछा जैसे पाला था।

मन के वहम ने कितना भरमाया होगा  
उल्लू को इन्सान किसने बनाया होगा?

सच है उल्लू तो कुछ नहीं पाया था  
गूँजती कर्कश आवाज़ से डराया था  
हो सकता है यही उसका हो स्वभाव  
तो क्यों इन्सान ने दी उसे संज्ञा भाव।

उल्लू का पट्टा फिर क्यों बताया होगा?  
उल्लू को इन्सान किसने बनाया होगा?

मन का विकार था जो पलता गया  
समाज का बनाया बैर बढ़ता गया  
इन्सान और उल्लू के बीच कुछ नहीं  
इन्सान उल्लू नहीं, उल्लू इन्सान नहीं।

इन्सान को उल्लू फिर क्यों बुलाया होगा?  
उल्लू को इन्सान किसने बनाया होगा?

# इस गुज़रते साल ने कितनी नई बातें सिखाई हैं

— शालिनी वर्मा  
कतर

बस ज़िंदा हूँ इसी बात की ख़ैर मनाई है  
इस साल मैंने अपनों से कितनी दूरी बनाई है  
अपनों को ही ना छूने की कसम—सी खाई है  
होली दीवाली भी मैंने फ़ोन पर मनाई है

इस गुज़रते साल ने मुझे नई बातें सिखाई हैं  
बस ज़िंदा हूँ इसी बात की ख़ैर मनाई है

बंद कमरे में मैंने महीनों बिताए हैं  
खुशी और गम अकेले ही मनाए हैं  
आधी तनख्वाह पर ही सब खर्च निपटाए हैं

और इस गुज़रते साल ने मुझे नई बातें सिखाई हैं  
बस ज़िंदा हूँ इसी बात की ख़ैर मनाई है

कितने सपने अपने अन्दर दबाये हैं  
दवा के इंतज़ार में महीनों गँवाए हैं  
सोशल मीडिया पर ही घंटों बिताए हैं  
अपनी हुनर पूरी दुनिया को बताई है  
पर इस गुज़रते साल के साथ मैं भी बदल—सी गई हूँ  
जो है उसी में गुज़ारा करना सीख—सी गई हूँ  
नए कपड़े न भी हों तो पुराने में भी खुश हूँ  
बस अपने सब सही हैं इस में ही संतुष्ट हूँ  
इस गुज़रते साल के साथ मैं भी बदल—सी गई हूँ  
टूटी हूँ बहुत बार पर इस बार निखर के निकली हूँ  
अब भी हौसलों की उड़ान बाकी है  
और नए साल के स्वागत की पूरी तैयारी है

## वसुधैव कुटुंबकम्

— प्रिया शुक्ला  
फ़िलिपीन्स

मानव ही मानव संग जिस दिन  
मानवता का धर्म निभाएगा  
उसी समय यह देश सही में  
वसुधैव कुटुंबकम् कहलाएगा।

जब दिलों के सागर में करुणा  
दया की लहर हिलोरें खाएँगी  
और जब अपनी आँखें एक  
दूजे के दुख में नीर बहाएँगी  
जिस दिन जीवन निस्वार्थ मार्ग पर  
एक कदम बढ़ जाएगा।

उसी समय यह देश सही में  
वसुधैव कुटुंबकम् कहलाएगा।

प्रेम की गंगा नफ़रत को बहाकर  
साँवरी यमुना से मिल जाएगी  
श्वेत सरस्वती सबके ही जीवन में  
समान से शिक्षा का वर दे जाएगी  
जिस दिन सबका समानता से  
पावन संगम हो जाएगा  
उसी समय ये देश सही में  
वसुधैव कुटुंबकम् कहलाएगा।

# दोहे

— कर्नल पी.सी. वशिष्ठ  
पुणे, भारत

1. पग परसन तटिनी उमगि, बूडत बूढे तात।  
पग पसार राखे दुई, महिमा बरनि न जात।।
2. जगत मात को मातृ सुख, दियौ कियौ उपकार।  
लव कुश ऋणी तुम्हार है, यह ब्रह्माण्ड अपार।।
3. द्रुपदसुता पायौ पति, कुन्तीसुत कुलनार।  
बाँट बैधु, कुंती बधू, दीन मीन, सर वार।।
4. काहे न आवत प्रभु, अपट नयन के गात।  
बंद नयन के ढिग रहत, खोलत ही भजि जात।।
5. गजसपूत पूजूं दियौ, शिवसुत जीवनदान।  
जिये नित्य ताके मरण, प्रथम पूज्य भगवान।।
6. खेलें कैसे गणपति, लिपट पिता के अंग।  
भुजदंडों में झूलते लिपटे रहत भुजंग।।
7. राजत हर नीके चिकुर, चंद, गंग, सारंग।  
कस गौरी भयभीत सी मैले माला अंग।।
8. थकी हुई सूरज किरण चली कोटि शत कोस।  
हुई पसीना पसीना पी गई सारी ओस।।
9. ओस बून्द के द्वार पर सूर्यकिरण मेहमान।  
गले मिली खुद मिट गई दिया पूर्ण सम्मान।।
10. सुख को दुख में जोड़कर कर दी ऊहापोह।  
न दुख से पीछा छूटे, ना ही सुख का मोह।।
11. धन्य धन्य वो जीव हैं शुभ हैं उनके कर्म।  
जिनके तन से है बना शिव डमरू का चर्म।।
12. चन्दन बिरवा धन्य तुम, शिव मस्तक की शान।  
तुम त्रिपुण्ड बनकर हुए शंकर की पहचान।।
13. आदि व्याघ्र श्रद्धेय तुम, है सौभाग्य विशेष।  
शिव के तन के निकटतम है जिनका अवशेष।।
14. कमल कली सी कोकिला कालिदी के कूल।  
कुहू कुहू कलरव करै लखि कदम्ब के फूल।।
15. हरि आये शिवधाम में, था मन में कुछ सोच।  
व्यालवंश भयभीत है, देख गरुड़ की चोंच।।
16. मेघसुताएँ अपहरण की हो गई शिकार।  
पवनवीर कुछ बदलियों से कर बैठे प्यार।।
17. कोई बचे कोई जले मेरा अग्नि स्वभाव।  
सीता हो या होलिका अपना अपना भाव।।
18. अपनी अपनी सब करि, शचिपति गौतम राम।  
युगों युगों तक अहिल्या हुई जगत बदनाम।।
19. मादक, मोहक, मधुरतम, मधुमय, मंगल देह।  
मात्र देखने से तुम्हें हो जाये मधुमेह।।
20. झूमर, झाँझर, झूमके, झालर सोहे अंग।  
सुध भूले जो देख ले चंचल, चपल, अनंग।।

pcvashishtha@rediffmail.com



## हाइकु

— शालिनी शालू 'नज़ीर'  
राजस्थान, भारत

- 1) पुत्री है युग  
कर्मक्षेत्र प्रबल  
विजयी भवः।
- 2) धैर्य की हांडी  
शौर्य प्रकट हुआ  
पुत्री प्रभाव।
- 3) विजयी कर  
लहरा पवन में  
बेटी प्रतिभा।
- 4) पुत्री है ताज  
सफलता प्रकट  
पिता को नाज़।
- 5) पुत्री चट्टान  
हौसला बुलंद  
कर्म बढ़ता।
- 6) पुत्री है दुर्गा  
धारण रूप काली  
सशक्त नारी।
- 7) पुत्री नक्षत्र  
चहुँओर प्रतिभा  
कर्म विशाल।
- 8) पुत्री आशाएँ  
जीवन का संग्राम  
करे नेतृत्व।
- 9) पुत्री बगीचा  
महकाती आँगन  
उड़े चिड़िया।
- 10) पुत्री जश्न  
बहता है काफ़िला  
मुबारक हो।

[shalushalini778@gmail.com](mailto:shalushalini778@gmail.com)

## हाइकु

— श्री रमेश कुमार सोनी  
छत्तीसगढ़, भारत

- |   |   |
|---|---|
| 1) लावण्य झरा<br>धूप, चाँद हर्षाए<br>बच्चा बन के।           | 8) आँसू अबोले<br>दुख की भाषा लिखे<br>सुख में हँसे।  |
| 2) झरते शब्द<br>हाँ, नहीं के बीच हैं<br>होंठ ' औ ' आँखें।   | 9) जेठ का सूर्य<br>मरीचिका पसरी<br>सूर्य प्यासा है। |
| 3) अंधेरा ज़िंदा<br>लैंप पोस्ट ऊपर<br>दीप के नीचे।          | 10) बेटी चिड़िया<br>फुर्र से उड़ जाती<br>सखी मायका। |
| 4) पुण्य फला है<br>ढूँठ की हरी शाख<br>कुल्हाड़ी रोयी।       | 11) यादें गिन्नियाँ<br>बच्चों से किलकते<br>मन रईस।  |
| 5) रश्मियाँ हँसी<br>मेघों के पीछे खड़ी<br>इंद्रधनुष।        | 12) धूप अतिथि<br>शॉल भूली तो लौटी<br>पूस घर से।     |
| 6) कर्पूर की कोख<br>दर्द, बैर पलते<br>जन्मती लाशें।         | 13) स्याह पसीना<br>डामर की सड़कें<br>प्रवासी नापे।  |
| 7) भीड़ का न्याय?<br>लाशों की भूखी हिंसा<br>शांति कब्र में। | 14) प्रवासी लौटे<br>बटोरे किस्से खुले<br>चौपाल रोए। |

- 15) पहली बूँदें  
खुली इत्र की शीशी  
महकी मिट्टी।
- 16) डंप ग्राउण्ड  
धुआँ घेरे शहर  
मास्क पहने।
- 17) जलते खेत  
मिट्टी, हवा पूछते  
कैसे बचोगे?
- 18) प्लास्टिक कूड़ा  
हरियाली निगले  
धरा कूकर।
- 19) फसलें पकीं  
परिदे गाने लगे  
विदाई गीत।
- 20) कोहरा थामे  
फूल सौंदर्य रथ  
धूप हँसते।
- 21) प्रलय दृश्य  
पॉलीथिन कचरा  
नाली में फँसा।
- 22) शर्माती बातें  
मालिनें माला गूँथे  
मन महके।
- 23) पोपला मुँह  
पकी बातें झरे  
एक दिन वो।
- 24) पहाड़ खुश  
बच्चे पौधा रोपते  
उम्मीद ज़िंदा।
- 25) गुल्लक खुश  
सिक्कों की खनक से  
बच्चों सा मन।
- 26) धूप डेरों में  
लू प्रचंड दौड़ती  
छाँव काँपते।
- 27) धरा भी प्यासी  
धूप पानी ले उड़ी  
स्टोर्स में बिके।
- 28) चूजे जो उड़े  
नीड़ के वृद्धाश्रम  
यम टहले।
- 29) लौकी जो झूले  
गुल्लक भी खनके  
छके मोहल्ले।
- 30) लजाती आँखें  
होंठ चूमें अलकें  
हवा की शोखी।

**rksoni1111@gmail.com**

## गुज़ल

— श्री अरुण कुमार पाण्डेय 'अभिनव अरुण'  
वाराणसी, भारत

है गाँवों में भी विद्यालय जहाँ अक्सर नहीं आते,  
कभी बच्चे नहीं आते कभी टीचर नहीं आते।

अँधेरी कोठरी है चॉक और डस्टर नहीं आते,  
उजाले साथ ले आयें वही अक्षर नहीं आते।

सुनो इस गाँव की बिजली सड़क सब फाइलों में हैं,  
शहर से जाँच करने को कभी अफ़सर नहीं आते।

हमी चमकाते हैं गुजरात राजस्थान दिल्ली सब,  
उजाले पर हमारे घर कभी क्यों कर नहीं आते।

फफोले हैं करप्शन के उन्हें भी इल्म है इसका,  
न जाने क्यों भला बनकर कभी नशतर नहीं आते।

ये मोटर मिल मक़ौ बाज़ार दफ़्तर मॉल और होटल,  
इन्हीं पिंजरों में रहते हैं कभी हम घर नहीं आते।

बहुत तेज़ी से उड़ने में अदब का घोंसला टूटा,  
खुदा! तहज़ीब से पहले ही इनके पर नहीं आते।

ये दिल्ली में रहे दिल्ली को भारतवर्ष कहते हैं,  
यही वो हुक्मरां हैं जो कभी बस्तर नहीं आते।

अगर ईमान की खाते न होता खौफ़ छापों का,  
सुकू की नींद आती ख़ाब में लॉकर नहीं आते।

उन्हें इतनी ज़्यादा है कि छत पर यान रखते हैं,  
हमें इतनी कमी है बच्चों के वाकर नहीं आते।

हमारे पाँव के छाले बड़े ही सख्त हालत हैं ,  
हमारी राह में भूले से भी पत्थर नहीं आते।

यकीं खुद पर अगर है तो किसी की ओट क्या लेना,  
जो तीरंदाज़ होते हैं कभी छिपकर नहीं आते।

**arunkrpnd@gmail.com**

## ग़ज़ल

— श्री कपिल कुमार  
बेल्जियम

हादसे ऐसे गुज़रे हम पर हैं  
जैसे शीशे पे चलते पत्थर हैं

रो रही है हर झुक नदी लेकिन  
खिलखिलाते हुए समुंदर हैं

मेरी खामोशियों से पढ़ लो तुम  
कितने तूफ़ान दिल के अंदर हैं

आओ चलते हैं हम कहीं बाहर  
घर में बरबादियों के मंज़र हैं

कर रहे हैं ये दिल, मेरा छलनी  
तेरी बातों में इतने नश्वर हैं।

# बोया बीज बबूल का

— श्री दिवाकर राय  
बिहार, भारत

## पात्र—परिचय :

1. मालती—उम्र 70 वर्ष
2. सरोज—मालती का पुत्र —उम्र 40 वर्ष
3. शालिनी—सरोज की पत्नी —उम्र 36 वर्ष
4. दो साल की बच्ची
5. वृद्धाश्रम के कुछ महिला—पुरुष —  
उम्र 60 से 75 वर्ष

## दृश्य एक

[घर का डायनिंग रूम। शालिनी मोबाइल पर व्यस्त है। उसकी बेटी फर्श पर चिल्ला रही है। मालती कमरे से निकलकर आती है।]

मालती : [गुस्से से लाल होकर] यह क्या तमाशा है शालिनी! बेटी गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रही है और तुम हो कि कान पर जूँ तक नहीं रेंगता।

शालिनी : [लापरवाही से] आपके कान पर रेंगता है, तो क्यों नहीं उठा लेती? आपकी भी तो कुछ लगती है।

मालती : तुम्हारी इसी लापरवाही के कारण अभी कुछ ही दिनों पहले इस फूल सी प्यारी बच्ची को अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा था। तुम्हें फिर भी कोई चिंता नहीं?

शालिनी: ज़्यादा चिंता है, तो दाईं क्यों नहीं रख लेतीं। पॉकेट में से नोट निकलेगा तब तो?

मालती : अपनी बच्ची को भी नहीं सँभाल सकती? कौन—सा ज़िला कलक्टर बन गई हो?

शालिनी : मुझे मेरी औकात मत दिखाओ। अपनी देखो। और हाँ, हद को पार करने की कोशिश मत करो।

मालती : तो तुम बच्ची को भी नहीं पाल सकती? बच्ची से ज़्यादा ज़रूरी मोबाइल चलाना ही है?

शालिनी : [मालती को घूरती हुई] मेरे पर्सनल लाइफ़ को नज़र मत लगाना, वरना मैं नज़र उतारना भी जानती हूँ। [व्यंग्य से] समझीं न सासू माँ!

मालती : तुम मुझको धमकी देती हो? अपनी सास को? इस घर की मालकिन को?

शालिनी : अब इस घर की मालकिन मैं हूँ। जानती नहीं, आपके बेटे ने मुझे पाने के लिए ज़मीन—आसमान एक किया था। मेरी सारी शर्तों को पल भर में मान गए थे। अब यह घर मेरा है। [भौंहें टेढ़ी करती हुई] चुपचाप अपना बोरिया—बिस्तर समेट ले बुढ़िया, अन्यथा...

मालती : अन्यथा क्या कर लोगी? आने दे सरोज को, तुझे आज ही सबक सिखाती हूँ।

शालिनी : [खड़े होकर] अपनी औकात में रह बुढ़िया! मुझ पर रोब जमाने की जुर्रत मत करना। और अपने बेटे के डर से डराती है? वह तो मेरा गुलाम है, गुलाम! जैसा कहूँगी, वैसा करेगा। मैं चाहती, तो तुझे कब का घर से निकाल देती। पर आस—पड़ोस वाले



- क्या कहेंगे, इस लोक—लाज से चुप थी। किन्तु पानी अब सर से ऊपर जा चुका है।
- मालती :** तो तुम मुझे मेरे ही घर से निकाल दोगी? अच्छा रुक, आने दे सरोज को। तेरा तो वो हाल कराती हूँ...
- [सरोज का प्रवेश। हाथ का बैग सोफ़ा पर पटकता है।]
- सरोज :** [मालती से] ये क्या हल्ला मचा रखा है माँ! जब देखो तब लड़ती रहती हो बहू से! इस घर में आदमियों के लिए जगह है भी या नहीं? [शालिनी रोने लगती है।]
- शालिनी :** अब मैं इस घर में एक पल नहीं रहूँगी। मुझे मेरे मायके पहुँचा दो। रोज़—रोज़ सासू माँ के हाथों पिटाने से अच्छा है कि माँ—बाप के माथे पर ही मूँग दलूँ।
- सरोज :** [मालती से] तूने इस घर को क्या बना रखा है माँ! दिन भर तुम लड़ती ही रहोगी, तो इस घर में शांति कैसे रहेगी? तुम एक बहू के साथ एडजस्ट नहीं कर सकती?
- मालती :** मैंने कुछ नहीं किया है बेटा...
- शालिनी :** [मालती की आवाज़ को दबाती हुई] अब तो इस घर में फ़ैसला हो ही जाना चाहिए। या तो अपनी माँ के साथ रहोगे या बीवी—बच्ची के साथ। तुरंत फ़ैसला होना चाहिए। अभी के अभी।
- सरोज :** हाँ, हाँ फ़ैसला होकर रहेगा। अब तो रोज़ के झमेले से अच्छा है कि साफ़—साफ़ निर्णय हो जाए। मेरा जीवन भी नरक बन गया है। जब भी ऑफ़िस से आता हूँ, किचकिच चलती रहती है।
- मालती :** किंतु बेटा...
- शालिनी :** कुछ भी नहीं किंतु—परंतु। एक बार साफ़—साफ़ निर्णय हो ही जाए। रोज़—रोज़ का खेला खत्म।
- सरोज :** चलो, चलो, सब अपने—अपने कमरे में जाओ। कल सुबह जय—क्षय हो जाएगा। मैं रातभर में सोचकर कल बताऊँगा। पर अब अधिक दिनों तक इसे टालना किसी के हित में नहीं है।
- [मालती की आँखें भर आती हैं। वह दुपट्टे से आँख पोंछती है। शालिनी मुस्करा रही है। वह खुश होकर बच्ची को उठाती है।]
- दृश्य दो**
- [वृद्धाश्रम का कमरा। एक चौकी पर मालती भारी मन से बैठी है। सरोज पास में एक पेटी रखते हुए कमर से सीधे खड़ा होता है।]
- सरोज :** माँ, तुम बुरा मत मानना। आखिर दो तलवार एक म्यान में कैसे रह सकती हैं? तुममें से कोई भी मानने को तैयार नहीं है। तो फिर तुम्हीं बताओ, रोज़—रोज़ की किचकिच से तो बढ़िया है न कि तुम आराम से इस वृद्धाश्रम में रहकर भगवान का नाम जपो।
- मालती :** [दर्द को छिपाती हुई] हाँ बेटा, तूने एकदम सही निर्णय लिया है। मैं तो दो—चार साल की मेहमान हूँ। आखिर तुम्हें सारी ज़िंदगी तो बहू के साथ ही गुज़ारनी है न! इसलिए तुम्हारा जीवन आनंदित रहे, यही मैं भी चाहती हूँ।
- सरोज :** [मालती को चूमते हुए] तू कितनी अच्छी है माँ! आई लव यू मॉम, लव

- यू टू मच!
- मालती :** *[अपने को सँभालती हुई]* बेटा, कोई भी माता-पिता नहीं चाहता कि उसकी संतान दुखी रहे। और मैं भला कैसे चाहती, मेरा तो तू अकेला आँख का तारा है। तेरा जन्म हुआ था न, तो तेरे पिताजी इतने खुश थे कि पुरोहितों को बुलवाकर यज्ञ करवाया था और मुहल्ले भर को भोज खिलाया था। मैं भी उस समय अपने आप को महारानी से कम नहीं समझती थी। अपने सारे पैसे लुटा दिए थे। *[आँखों से आँसू टपक आते हैं। वह जल्दी से पोंछती है।]*
- सरोज :** तुम भी न माँ, फिर उसी दुनिया में चली गई। अब उस माया-मोह को भूलकर भगवान की भक्ति करो। इसी से परलोक की यात्रा सुगम होगी। आखिर सबको तो एक दिन वहीं जाना है न! हिसाब-किताब भी होगा।
- मालती :** हाँ बेटे, मैं तो बहू और पोती के चक्कर में यह तो भूल ही गई थी। अच्छा किया तूने मुझे याद दिला दिया। और उससे भी अच्छा किया कि भक्ति-मार्ग का राही बना दिया। अब मैं इस वृद्धाश्रम में तल्लीन होकर भगवान की भक्ति करूँगी।
- सरोज :** *[चेहरे पर सुकून है]* हाँ माँ, यहाँ कुछ भी कमी नहीं होगी। मैंने मैनेजर से बातचीत कर ली है। वह जान-पहचान का ही है। तुम्हें किसी चीज़ की कमी महसूस नहीं होने देगा। और समय-समय पर मैं भी कुछ लेते आऊँगा। पेटी में ज़रूरत के सामान हैं। हाँ, मैं तो चाबी देना भूल ही गया था। *[जेब से चाबी निकालता है।]* ये लो चाबी। सँभालकर रखना।
- मालती :** *[अनिच्छापूर्वक]* जिसे सँभालकर रखना चाहिए, उसे तो रख नहीं सकी; अब इस पेटी को क्या सँभालूँगी भला? खैर, तुझे बुरा नहीं लगे, इसके लिए रख दो इधर। *[बिछावन की ओर इशारा करती है। सरोज चाबी रखता है।]*
- सरोज :** *[प्रणाम करने झुकता है]* तो अब मैं चलता हूँ माँ, किसी चीज़ की दिक्कत हो तो मैनेजर से मुझे फ़ोन करा देना।
- मालती :** हाँ बेटा, निश्चित होकर जा। कोई चिंता मत करना। बहू और प्यारी गुड़िया का खयाल रखना। मैं तो जानती थी कि मुझे अपने पाप का प्रायश्चित्त एक न एक दिन करना ही है। सो मैं कर लूँगी। और यह ज़रूरी भी था, नहीं तो ईश्वर पर से सबका विश्वास उठ जाता।
- सरोज :** ये क्या ऊलजुलूल बातें कर रही हो? कैसा पाप किया है तूने? तुम तो धर्मात्मा हो।
- मालती :** नहीं बेटा, मैं धर्मात्मा नहीं हूँ। मैंने बहुत बड़ा पाप किया है। तुझे पाने के लिए मैंने तीन-तीन मासूमों का गर्भपात कराया है। उस समय मेरे सिर पर बेटा पाने की धुन सवार थी। आखिर आज वह उतर गई। *[कुछ रुककर]* पर तू ऐसी गलती मत करना बेटा, वरना तुम भी पछताओगे।
- सरोज :** क्या माँ, ये क्या उल्टी-सीधी बातें कर रही हो?
- मालती :** मैंने जानबूझकर बबूल का बीज बोया

है, बेटा! काँटे तो चुभेंगे ही। अब इसका एक ही समाधान है— प्रायश्चित। मैं प्रायश्चित करके भगवान से क्षमा की प्रार्थना करूँगी। [हाथ उठाकर] हे भगवान! मुझे इसका कठोर दण्ड देना ताकि सबको सीख मिल सके। कोई

भी माँ बेटे के लिए गर्भ में ही बेटा का गला न घोंटे। मुझे कभी माफ मत करना, कभी नहीं।  
[मालती सिसकती है। सरोज कुछ देर के लिए ठिठक जाता है।]

divakarbth@gmail.com

## लॉकडाउन

— श्री विवेक श्रीवास्तव  
जयपुर, भारत

**प्राची :** बहुत देर हो गई। कल सुबह 2 बजे की ही फ़्लाइट है, चेक इन भी करना है।

**सूत्रधार :** मन में खुशी भी थी, एक बंधन से आज़ादी की और अनजान-सी उदासी भी।

**प्राची:** अब अपनी ज़िंदगी मैं पूरे मन से जी पाऊँगी।

**शशांक :** क्या हुआ??

**प्राची :** होटल से फ़ोन आया है, होटल सील हो गया है।

**शशांक :** ओह!

**प्राची :** कोई विदेशी सातवें माले पर 15 दिन पहले रुका था, वो कोरोना पॉज़िटिव मिला है। मेरा तो यहाँ से सीधे वहीं जाने का था, कल सुबह की ही फ़्लाइट है, इसलिए एअरपोर्ट के पास ही बुक किया था।

**शशांक :** सामान???

**प्राची :** वो अगली हीयरिंग पर आऊँगी, तब ले लूँगी, अभी तो ऐसे हालात में जाएगा भी कैसे? मौसम भी इतना खराब चल

रहा है, लकड़ी का पलंग खराब हो जाएगा, 6 महीने बाद सही। अगली तारीख 8 अक्टूबर की है, ....तब तक तो सब ठीक हो ही जाएगा।

**शशांक :** तो.....चाहो तो ....घर ....चली चलो [थूक निगलते हुए बहुत कोशिश करके शशांक ने कहा।]

**शशांक :** चाचा के यहाँ है कोई?

**प्राची :** उनके यहाँ तो नहीं जाऊँगी। चलो घर ही चलती हूँ, सुबह एक बजे निकलना पड़ेगा, 2 बजे की फ़्लाइट है, तुम छोड़ देना .....आख़री बार ही होगा ये शायद!

**सूत्रधार :** कहते हुए प्राची ने साधिकार गाड़ी का दरवाज़ा खोला। एक क्षण को लगा, जैसे कुछ हुआ ही नहीं था। शशांक ने भी फीकी-सी मुस्कान चेहरे पे बिखेरी और गाड़ी चालू कर दी। प्राची ने व्हाट्सएप्प चला लिया था, जैसे बातचीत को टालना चाह रही हो।

[गाड़ी का दरवाज़ा खोलने और चालू करने, बैठने की आवाज़]

- प्राची :** ओह!
- शशांक :** क्या हुआ?
- प्राची :** आज कुछ और केसज़ हुए हैं, प्रधानमंत्री 8 बजे आ रहे हैं। हे भगवान! क्या हो रहा है!
- शशांक :** 6 तो बज ही गए हैं। भूख लग रही है, कुछ खाओगी?
- सूत्रधार :** सकुचाकर शशांक ने नमकीन दाल का पैकेट प्राची की तरफ़ बढ़ाते हुए कहा।
- प्राची :** नहीं। मैं ये नमकीन कहाँ खाती हूँ। भूल गए??
- सूत्रधार :** प्राची ने आश्चर्य से संतरा शशांक की तरफ़ बढ़ाते हुए कहा।
- शशांक :** अरे हाँ..। कुछ साल से सब कुछ उल्टा-पुल्टा ही हो रहा है...गहरी साँस छोड़ते हुए शशांक ने कहा। घर पर अम्मा नहीं आएगी, छुट्टी दे दी है उसे मैंने कल से, तुम्हें मेरे ही हाथ का खाना पड़ेगा, होटलें तो सब बन्द हैं।
- प्राची :** मैं बना लूँगी, सब सामान तो होगा ही ना?
- शशांक :** हाँ, सामान तो पूरा है, छिक्कल वाली दाल भी है..
- सूत्रधार :** शशांक ने खिलखिलाते हुए कहा, जैसे अचानक उसे मज़ाक सूझ आया कि प्राची छिलके वाली मूँग को छिक्कल वाली दाल कहती थी और शशांक हमेशा उसके छिक्कल शब्द का मज़ाक बनाता था। प्राची भी खुलकर हँसने लगी। दो लोग साथ हों, तो सफ़र का पता ही नहीं चलता, कब घर आ गया पता ही नहीं चला। सालों बाद घर में घुसने में प्राची को अजीब-सा लग रहा था, जाने क्या प्रतिक्रिया होगी घर पर, इससे तो चाचा के यहाँ ही चली जाती।
- शशांक :** लो गेट खोल लो, मैं पार्क करके आता हूँ।
- सूत्रधार :** चाबी पकड़ाते हुए शशांक ने कहा।
- प्राची :** घर पर कोई है नहीं???
- शशांक :** कौन होगा? स्वाति की तो पिछले साल शादी हो गई, बाबूजी भी फ़रवरी में चले गए।
- सूत्रधार :** टोपी उतारकर सबूत देते हुए शशांक की आँखें भर आईं।
- शशांक :** माँ अमेरिका चली गईं। भैया अमेरिका ही हैं, शीर्ष के पास ही। उसने वहीं कोई अस्पताल जॉइन किया है, वहीं से सर्जरी की है उसने। मैं यहीं हूँ, माता-पिता के लिए अब तक यहीं पोस्टिंग ले रखी थी, ज़िंदगी सामान्य करने की कोशिश में हूँ। अब दिशा मिलेगी। 6 महीने बाद कुछ सोचूँगा। इस साल ट्रान्सफ़र भी हो जाएगा। मैं यहाँ की यादों से दूर जाना भी चाहता हूँ।
- प्राची :** अरे...मुझे लगा था, बड़ी डैशिंग कैप लगा रखी है।
- सूत्रधार :** प्राची ने गहरी-सी साँस ली। कहीं जैसे अफ़सोस भी था कि रिश्ता अभी टूटा थोड़े ही था, जो स्वाति की शादी, बाबूजी की मृत्यु कुछ भी बताया नहीं। प्राची मन ही मन बुदबुदाई। मानो अगर बुला लिया होता, तो सब ठीक हो जाता।
- प्राची :** शशांक माथुर! प्राची कुलश्रेष्ठ !! अभी तक लैटर बॉक्स पर मेरा नाम लिखा है!!!! [प्राची ताला खोलते हुए बड़बड़ाई]
- शशांक :** चलो मिलकर खाना बना लेते हैं। तुम रोटी बना लो, मैं सब्जी बना लेता हूँ।

- रोटी बनाना मेरे बस का नहीं।
- सूत्रधार :** शशांक ने हँसते हुए कहा। घर जमा हुआ—सा देखकर प्राची को कुछ अजीब—सा लगा, उसकी अनुपस्थिति से कुछ भी फर्क नहीं पड़ा?
- सूत्रधार :** खाना बनाकर, खाने के लिए टीवी चलाकर प्रधानमंत्री को सुनने बैठे।
- प्राची :** दुनिया की ये हालात! आज रात 12 बजे के बाद कोई ट्रेन, कोई फ्लाइट नहीं चलेगी! कम्प्लीट लॉकडाउन, जो जहाँ है, वो वहीं रहे। अब!! ओह!
- सूत्रधार :** प्राची के चेहरे पे चिंता उभर आई, शशांक भी अजीब—सा अनुभव करने लगा। 5 साल बाद इसी घर में कैसे रहेगी? दोनों एक दूसरे की तरफ प्रश्नचिह्न निगाहों से देखने लगे।
- सूत्रधार :** “मम्मी...” पास के मकान से भाई बहनों के लड़ने की आवाज़ आ रही थी, शायद छोटे भाई ने फिर बहन की चोटी खींच दी थी।
- प्राची :** अब क्या करूँ शशांक? अब तो चाचा के यहाँ भी नहीं जा सकती! 21 दिन!!!! कौन जाने, उसके बाद भी जाने क्या होगा! *[वो रुआँसा हो गई]*
- शशांक :** कोई बात नहीं। जब पूरी दुनिया पर ही संकट है, तो किया भी क्या जा सकता है?
- प्राची :** तुम हमेशा चीज़ों को इतनी आसानी से स्वीकार कैसे कर लेते हो?
- सूत्रधार :** प्राची ने कहा, जैसे वो कह रही हो तुम बिलकुल वैसे ही हो।
- शशांक :** तो करें भी क्या? तुम निश्चित रहो। सब संभाल लेंगे, तुम्हारे सब कपड़े वैसे के वैसे हैं। चाहो तो मेरे पहन लेना, शौक भी था तुम्हें जीन्स पहनने का। तुम्हारी फिज़िक में कुछ खास बदलाव
- तो हुआ नहीं है, डिलीवरी के बाद ही तो कुछ बदलता है।
- सूत्रधार :** कहते हुए शशांक हँस दिया, पर फिर खुद ही सकपका गया। प्राची भी अवाक रह गई।
- शशांक :** मैं इधर ड्रॉइंग रूम में सो जाऊँगा, तुम बैडरूम में।
- प्राची :** बैडरूम तो वैसे का वैसे ही है, शायद शशांक ने कभी इसका प्रयोग नहीं किया। लगता है रोज सफाई होती है, सब कुछ जमा जँचा—सा है।
- सूत्रधार :** कपड़े लेने के लिए अलमारी खोली, तो फिनाइल की गोलियों की भीनी—सी गंध आई। *[अलमारी खोलने की आवाज़]*
- प्राची :** लगता है फिनाइल की गोलियाँ भी अभी ही डाली हैं। अरे! ये शादी की फोटो भी रखी है।
- सूत्रधार :** अलमारी के ऊपर प्राची और शशांक की शादी की फोटो भी वैसी की वैसी ही रखी थी। प्राची की आँखें भर आई। *[सुबकने की आवाज़]* पलंग पर लेट तो गई, पर अजीब—सा लगा, नींद नहीं आ रही थी। उठकर देखा, तो शशांक तो बेफिक्री की नींद सो रहा था, जैसे घर संभालने घरवाली आ गई हो।
- प्राची :** ओहो, शशांक तो घोड़े बेचकर सो रहे हैं!
- सूत्रधार :** प्राची ने धीरे से एक गद्दा निकाला और ड्रॉइंग रूम में ही ज़मीन पर सो गई। *[धीरे से सामान हटाने की आवाज़ और पदचाप]*
- प्राची :** अरे 8 बज गए! शशांक अभी तक सो रहे हैं! चलो अच्छा हुआ कि शशांक को पता नहीं चला कि मैं यहीं सोयी हूँ, शायद अब रात में पानी पीने के लिए उठने की आदत न रही हो। दूध वाला

- दूध टाँग गया होगा, चाय बना लेती हूँ, फिर जगाऊँगी, शशांक की आदत बैड टी की थी।
- सूत्रधार :** खिड़की से देखा, दरवाजे पे दूध वाला दूध टाँग गया था, दूध उठाकर रसोई में जाकर चाय बनाई। लगा जैसे कुछ भी नहीं बदला था। हालाँकि पड़ोस के मकान वाली ने ज़रूर प्रश्नचिह्न निगाहों से देखा था।
- प्राची :** उठो! *[शशांक को जगाया]*
- शशांक :** अरे! तुम अभी भी जल्दी ही उठती हो? अरे वाह आज तो भाग खुल गए, कितने दिनों बाद बनी बनाई चाय मिली है। टीवी चला दो प्लीज़। देखें क्या हुआ। 332 पर आज तक लगा देना।
- प्राची :** तुम्हारी भी आदत वही है, उठते ही न्यूज़ देखने की।
- शशांक :** हाँ वक्त ठहर-सा गया है।
- सूत्रधार :** जैसे ऐसा कहने का कुछ अर्थ हो।
- शशांक :** तुम्हारा ये सूट हमने फ़ैब इंडिया से लिया था न?
- प्राची :** हाँ, अरे, तुम्हें याद है!
- शशांक :** नहीं-नहीं वैसे ही अंदाज़े से कह रहा था।
- सूत्रधार :** जैसे चोरी पकड़े जाने पर कोई सफ़ाई दे।
- प्राची :** हे भगवान! प्रिंस चार्ल्स भी! फिर भी लोग मान क्यों नहीं रहे?? *[शोर]* बाहर क्यों निकल रहे हैं? कितना चुनौतीपूर्ण है पुलिस और डॉक्टर्स के लिए! बंद कर दो न्यूज़! मुझे डिप्रेशन-सा होने लगता है। *[प्राची ने परेशान-सा होकर बोला]*
- शशांक :** क्यों जानना नहीं चाहती कि रिश्तेदारों के क्या हालात हैं?
- प्राची :** मुझे किसी से क्या मतलब? मेरी ख़बर ली है किसी ने? सब खुश ही होंगे।
- सूत्रधार :** कहते हुए वो रोआँसा हो गई।
- प्राची :** *[टेक केयर]* के मैसेज व्हाट्सएप्प पर आए हुए हैं, पर इन हालात में टेक केयर होगा कैसे?
- शशांक :** मैं बाहर से थोड़ी सब्ज़ी ले आता हूँ। मैं तो कुछ भी खा लेता हूँ, पर तुम ये सब 21 दिन तक नहीं खा पाओगी।
- प्राची :** नहीं। कोई ज़रूरत नहीं। मैंने सब देख लिया है, पूरा महीने का राशन है। मैं भी अब इतना नुक्ताचीनी नहीं करती। आप कहीं नहीं जाओगे।
- [अधिकारपूर्वक]*
- सूत्रधार :** शशांक को उसका इतना साधिकार मना करना कुछ अच्छा-सा लगा।
- प्राची :** मैं अभी नाश्ता बना देती हूँ।
- शशांक :** अच्छा तो चलो मैं वॉशिंग मशीन चला देता हूँ, तुम्हारे कपड़े भी डाल दो। बाई को तो पिछले हफ़्ते से ही पेड लीव दे दी है, प्रधानमंत्री ने कहा था ना। बर्तन भी मैं मॉज दूँगा, हफ़्ते भर में अभ्यस्त हो गया हूँ, तुम्हारी चटें उखड़ जाती हैं न? अभी बहुत दिन साथ रहना पड़ेगा।
- सूत्रधार :** शशांक मुस्कुराया, पर कहते हुए खुद ही झंप गया।
- प्राची :** मेरा कुछ सामान तुम्हारे पास पड़ा है....
- सूत्रधार :** गाना गुनगुनाते हुए प्राची नाश्ता बना रही थी, मानो दोनों के बीच कुछ हुआ ही न हो। यही दिनचर्या चलती रही। एक छत के नीचे दोनों ऐसे रह रहे थे, जैसे सब कुछ ठीक है, किसी को किसी से कोई शिकायत नहीं, बस एक दूसरे का ध्यान रखना और सहयोग करना ही दोनों का लक्ष्य था।

- शशांक :** प्राची, कल शायद लॉकडाउन खुल जाएगा, हालात बहुत सुधर गए हैं। इंडिया का पूरे वर्ल्ड में नाम हो गया।
- प्राची :** अरे! पता ही नहीं चला, कब 21 दिन बीत गए।
- सूत्रधार :** दोनों को लगा जैसे लॉकडाउन खत्म न होना ही अच्छा था।
- शशांक :** तुम्हारे घर सब कैसा है?
- प्राची :** हाँ ठीक है, रोज़ 'टेक केयर' का व्हाट्सएप्प आ जाता है। मैंने लिख दिया था कि मैं होटल में ही हूँ।
- शशांक :** चलो आज बंधन खत्म हो जाएगा। तुम भी बुरी फँसी। तुम्हें न चाहते हुए भी मुझे झेलना पड़ा।
- प्राची :** और तुम्हें??
- शशांक :** मुझे तो तुम्हारा साथ हमेशा अच्छा लगता था।
- सूत्रधार :** आँख के आँसुओं को छुपाने के लिए शशांक बनावटी हँसी हँसा।
- शशांक :** अच्छा, शुभ रात्रि! सुनो! बहुत थकी हुई—सी लग रही हो। 21 दिन में तुमने बहुत घर सँभाला है, ज़िन्दगी बिखरी हुई—सी थी, तुमने सँवार—सा दिया है सब कुछ। रोज़ मेरे सोने के बाद आकर ज़मीन पर सोती हो, आज मेरे सोने से पहले ही सो जाओ, मेरे मन का बोझ कुछ कम हो जाएगा।
- सूत्रधार :** कहते—कहते शशांक का स्वर धीमा हो गया और आँखें नम हो गईं।
- प्राची :** ओह...
- सूत्रधार :** प्राची का चेहरा ज़र्द पड़ गया, जैसे बहुत बड़ी चोरी पकड़ी गई हो।
- शशांक :** मुझे पता है, तुम अकेले कमरे में नहीं सोती।
- प्राची :** एक .....बात कहूँ... क्या... इन 21 दिनों की तरह... ज़िन्दगी नहीं जी सकते??
- [प्राची ने भरे गले से कहा]* सच पूछो, तो तुम्हें इन 3 हफ़्तों में इतना नज़दीक से देखा है कि लगता है, मैं शायद तुम्हें समझ ही नहीं पाई इतने सालों तक।
- [प्राची ने गहरी साँस ली]*
- शशांक :** मुझे तो हमेशा से तुम्हारा साथ अच्छा लगता था। प्राची, हर रिश्ते को कुछ स्पेस तो देना ही होता है, परेशानियाँ किस रिश्ते में नहीं आती? मैंने तो हमेशा तुम्हारी खुशी ही चाही है, अलग होने का फ़ैसला भी तुम्हारी खुशी के लिए ही स्वीकार किया था मैंने।
- प्राची :** तो मेरी खुशी के लिए ही..... दुबारा फ़ैसला ले लो।
- शशांक :** अगर तुम इसमें खुश हो, तो मुझे क्यों नहीं मंजूर होगा?
- प्राची :** चलो तो फिर अगली तारीख़ 8 अक्टूबर नहीं कल ही होगी। एप्लीकेशन विज़िट्स कर लेते हैं। *[दोनों के सुबकने की आवाज़]*
- सूत्रधार :** और दोनों की आँखों से झर—झर आँसू बहने लगे, जिसमें किसी की हार नहीं थी।

shrivastava1966@gmail.com



# असली पूंजी

— श्री विश्वानन्द पतिया  
एकवायर, मॉरीशस

## पात्र—परिचय

1. पिताजी — हिंदी शिक्षक
2. माताजी — अंग्रेजी अध्यापिका
3. आराधना — अठारह वर्षीय कॉलिज की छात्रा
4. सूरज — पंद्रह वर्षीय स्कूल का छात्र —  
आराधना का भाई
5. संध्या — अठारह वर्षीय कॉलिज की छात्रा —  
आराधना की सहेली

## स्थान

एक घर का भीतरी भाग, जहाँ बैठक, रसोईघर का दरवाज़ा और दो कमरों के दरवाज़े नज़र आते हैं।

## समय

शाम के साढ़े चार बज रहे हैं।

## प्रथम दृश्य

- सूरज:** [कंधे पर अपना बस्ता लिए शाम के लगभग साढ़े चार बजे अपने घर की बैठक में प्रवेश करता है।] आज तो मैं बहुत थक गया हूँ। आजकल के अध्यापक इतना काम देते हैं कि पूछो मत! मैं थक गया हूँ!... [कुरसी पर बैठते हुए और थकान की अनुभूति करते हुए], माँ थोड़ा पानी ला दो मेरे लिए!
- माताजी:** एक मिनट बेटा! एक मिनट! मैं भी अभी-अभी स्कूल से लौटी हूँ। प्लीज़ गीव मी वन मिनट!
- पिताजी:** [हाथ में अपना बस्ता लिए प्रवेश करते हैं और अपनी पत्नी का अंतिम वाक्य

सुन लेते हैं] अब घर में भी अंग्रेजी बोलती हो शान्ति! विद्यालय में तो अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाती ही रहती हो! घर पर थोड़ी शुद्ध हिंदी भी बोल लिया करो!

**माताजी:** वॉट डू यू मीन? क्यों अब घर में अंग्रेजी में बात करना निषेध हो गया है?

**पिताजी:** 'निषेध'! वाह! वाह! यह हुई न बात! एकदम शुद्ध हिंदी शब्द! दिल खुश कर दिया तुमने!

**सूरज:** [प्यास से व्याकुल होकर थोड़ी ऊँची आवाज़ में बोलता है] माँ थोड़ा पानी मिलेगा! मेरा गला सूख रहा है!

**माताजी:** ला रही हूँ सूरज! बस एक मिनट!

**सूरज:** जल्दी करो!

**पिताजी:** सूरज! इतना आलसी क्यों बन गए हो? अपना काम खुद क्यों नहीं करते?

**सूरज:** पिताजी आज मैं बहुत थक गया हूँ। मेरे स्कूल के अध्यापक आजकल बहुत काम दे रहे हैं। कभी मुहावरे याद करो, वाक्य लिखो, प्रश्नों के उत्तर दो, निबन्ध लिखो, कहानी लिखो... हाँ अब तो एक नई चुनौती भी सामने आ गई है!

**पिताजी:** [कुरसी पर बैठते हुए] चुनौती? कैसी चुनौती?

**सूरज:** [चिल्लाते हुए] माँ एक गिलास पानी लाओगी या नहीं??

**माताजी:** लाती हूँ बाबा!! लाती हूँ!

**पिताजी:** [गम्भीर स्वर में] सूरज कभी अपने कार्य स्वयं भी कर लिया करो! तुम्हें पता है कि तुम्हारी माँ भी अभी बहुत थकी

- हुई है। वह भी मेरी तरह विद्यालय में पढ़ाती है। आजकल के अधिकांश बच्चों को पढ़ाना आसान नहीं है.. यह तो तुम जानते...
- सूरज:** [बेचैन होते हुए]... माँ! पानी!!!
- माताजी:** [पानी से भरा गिलास सूरज के दायें हाथ में थमाते हुए] लो पानी लो! अपनी प्यास बुझा लो!
- सूरज:** थैंक यू वेरी मच मॉम! तुम कितनी अच्छी हो!
- माताजी:** हैं.. अब पानी मिल गया तो बहुत अच्छी हो गई! मसका मारना तो कोई तुमसे सीखे!
- पिताजी:** [अधिक गम्भीर स्वर में] देखो सूरज मैं कह रहा था कि अब तुम पन्द्रह साल के हो गए हो, बड़े हो गए हो, तुम्हें अब अपने काम खुद करने चाहिए। अपने पाँव पर खड़ा होना सीख लो! [अपनी पत्नी की ओर देखते हुए कहते हैं...] सूरज की माँ मेरे लिए एक प्याली गरम चाय बना देना... कृपया।
- सूरज:** [हँसते हुए और व्यंग्यात्मक ढंग से] पिताजी सभी को अपने पाँव पर खड़ा...
- पिताजी:** चुप बदमाश... [सूरज के साथ एक दोस्त के समान खेलते हुए और मज़ाक करते हुए] बता आज विद्यालय में क्या हुआ? कौन-सा नया पाठ पढ़ा? क्या सीखा?
- सूरज:** बता तो रहा हूँ न पिताजी... अब एक नई चुनौती!
- पिताजी:** कैसी चुनौती??
- सूरज:** आज मेरे हिंदी अध्यापक ने कक्षा में कहा कि जो छात्र एक सप्ताह बाद अच्छी तैयारी करके, कक्षा के सामने खड़े होकर पाँच मिनट के लिए 'हिंदी
- और भारतीय संस्कृति के महत्व' पर धाराप्रवाह भाषण देगा, उसे पुरस्कृत किया जाएगा। पाँच छात्रों ने यह चुनौती स्वीकार की और मैं भी उनमें से एक हूँ।
- पिताजी:** [अपने दायें हाथ से सूरज का कंधा थप-थपाते हुए] यह तो बहुत अच्छी बात है!! 'हिंदी और भारतीय संस्कृति...' यह विषय तो बहुत आसान है!
- सूरज:** पिताजी! आप तो पहले से हिंदी अध्यापक हैं। यह काम तो आप के लिए बाएँ हाथ का खेल है!
- पिताजी:** यदि मेरे लिए यह कार्य आसान है, तो तुम्हारे लिए भी सहज हो सकता है!
- सूरज:** [उत्सुकतापूर्वक] कैसे पिताजी?
- पिताजी:** जहाँ चाह वहाँ राह! अर्थात् यदि तुम्हारे मन में यह कार्य करने की तीव्र इच्छा पैदा हो जाएगी, तो तुम्हें इस कार्य को पूरा करने का मार्ग भी मिल जाएगा। तुम्हें अपने मनोबल से काम लेना चाहिए, क्योंकि 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत!' अपने मन को पहले वश में करो! अपने मन को अपने काम में लगाओ। यदि ऐसा तुम कर पाए, तो तुम्हारा कठिन लगने वाला कार्य भी आसान या सहज प्रतीत होगा!
- माताजी:** [चाय से भरी प्याली अपने पति को देती है...] आसान-सहज?? [चाय लीजिए...] क्या बात हो रही है बाप-बेटे के बीच? [वह अपने पति के पास ही एक कुर्सी पर बैठ जाती है।]
- सूरज:** 'हिंदी और भारतीय संस्कृति के महत्व' विषय पर बात करनी होगी! वह भी कक्षा के सामने और हिंदी में...!
- माताजी:** हिंदी में? हैं! क्या बात है! तुम्हारे पिताजी इस कार्य में तुम्हारी मदद अवश्य कर

- पाएँगे, क्योंकि वे हिंदी के 'विशेषज्ञ' हैं।
- पिताजी :** 'विशेषज्ञ'! देखा सूरज शुद्ध हिंदी का प्रयोग तुम्हारी माँ कर रही है और मुझे 'हिंदी-विशेषज्ञ' कह रही है।
- माताजी :** मैं तो दिन भर अंग्रेजी के शब्दों, वाक्यों आदि में उलझी रहती हूँ। शुद्ध हिंदी का प्रयोग! और वह भी मुझसे...नो वे...नेवर!
- पिताजी :** देखो शान्ति! हिंदी तुम्हारे रक्त में है, इसीलिए कुछ समय पहले तुमने 'निषेध', 'विशेषज्ञ' जैसे शुद्ध हिंदी शब्दों का प्रयोग किया। तुम मानो या न मानो यह विशेषता तुम में पहले से विद्यमान है।
- माताजी :** इफ यू से सो!
- सूरज :** माँ अंग्रेजी नहीं...हिंदी में बोलो...हिंदी और भारतीय संस्कृति...महत्व...थोड़ा इस विषय पर बात करो...पिताजी कृपया आप ही कुछ बोलिए।
- पिताजी :** ऐसे काम नहीं चलेगा सूरज! यह कार्य तुम्हें मिला है, इसलिए इसका आरंभ तुम्हें ही पहले करना होगा। कहते हैं न 'अपना हाथ जगन्नाथ।' पहले स्वयं काम शुरू करो, बाद में हम दोनों तुम्हारी सहायता करेंगे।
- माताजी :** हम दोनों?? *[आश्चर्यचकित होकर]* नहीं नहीं!! बस आप ही मदद करेंगे। हिंदी पर आपका पूर्णाधिकार है। मेरा नहीं!
- पिताजी :** *[हास्यास्पद भाव में]* 'निषेध', 'विशेषज्ञ', 'पूर्णाधिकार'! वाह! वाह! कहाँ से मिलते हैं तुम्हें ऐसे शब्द?
- माताजी :** तुम्हारी पत्नी हूँ न... संगति का प्रभाव तो पड़ेगा ही! *[हँसने लगती है...]* *[फिर सभी थोड़ी देर के लिए हँस पड़ते हैं]*
- सूरज :** तो पिताजी अब मुझे क्या करना होगा?
- पिताजी :** सूरज अभी कुछ समय पहले ही मैंने तुम्हें 'आत्मनिर्भरता' का पाठ पढ़ाया... इतनी जल्दी भूल गए...
- माताजी :** *[हस्तक्षेप करती हुई]* 'आत्मनिर्भरता' अर्थात् अपने-आप पर निर्भर होने का भाव...
- पिताजी :** एकदम सही!
- माताजी :** *[सूरज की ओर देखती हुई]* समझे बेटे!
- पिताजी :** समझे या नहीं समझे सूरज?
- सूरज :** जी पिताजी समझ गया! *[खड़े होकर अपने-आप से बड़बड़ाते हुए]* 'आत्म-निर्भरता', 'अपने पाँव पर खड़े होना', अब तो लगता है मुझे ही कुछ करना होगा।
- [वह मेज़ पर रखी कुछ पुस्तकों को खोलने लगता है... फिर थोड़ी देर बाद अपने बस्ते से अपना 'लैपटॉप' निकालकर इंटरनेट पर कुछ जानकारीयों ढूँढने लगता है...]*
- पिताजी और माताजी :** *[आपस में बात कर रहे होते हैं...]*
- आराधना :** *[दरवाज़ा खोलती हुई बैटक में आती है]* अरे सभी लोग आ गए...? माँ देखो कौन आई है??
- माताजी :** कौन है आराधना?
- आराधना :** मेरी प्रिय सहेली सन्ध्या है माँ! पास ही में रहती है।
- पिताजी :** *[सन्ध्या की ओर देखते हुए...]* कमलेश जी की बेटा है न?
- सन्ध्या :** जी गुरुजी!
- माताजी :** गुरुजी??
- सन्ध्या :** मैं बचपन में इनकी छात्रा रह चुकी हूँ। मेरे सर्वप्रिय हिंदी-अध्यापक!

माताजी : हँ! सर्वप्रिय! हिंदी-अध्या...

आराधना : [हस्तक्षेप करती हुई] माँ! तुम भी न!  
'सर्वप्रिय हिंदी-अध्यापक' का मतलब  
है 'बेस्ट हिंदी-टीचर'!

माताजी : हाँ हाँ! मैं समझ गई। मैं तो बस उनकी  
टाँग खींच रही थी।

सन्ध्या : मुझे भी मज़ाक पसन्द है। आप सभी  
को नमस्ते। [सभी सन्ध्या की ओर  
देखते हुए उसको 'नमस्ते' कहते हैं]

आराधना : माँ! ... [फिर सूरज की ओर देखते  
हुए...] अरे हमारा छोटा भाई क्या कर  
रहा है [उसको परेशान करती हुई]

सूरज : देखो दीदी मुझे तंग मत करो! मैं एक  
ज़रूरी काम कर रहा हूँ। तुम अपना  
काम करो...!

आराधना : अपना काम ही तो कर रही हूँ। तुम्हें  
परेशान करने में मुझे बड़ा मज़ा आता  
है।

सूरज : माँ! दीदी से कह दो कि...

पिताजी : [बीच में बोलते हुए] आराधना, देखो  
उसे परेशान मत करो, उसे अपना  
खोज-कार्य करने दो!

आराधना : 'खोज-कार्य'! सूरज और 'खोज-कार्य'!  
हँ, मामला गम्भीर है।

सन्ध्या : उसे काम करने दो आराधना, क्यों  
परेशान कर रही हो?

माताजी : देखो सन्ध्या कितनी समझदार है  
आराधना! इससे कुछ सीखो!

सन्ध्या : वह पहले से बहुत अच्छी है, इसीलिए  
तो उसके साथ दोस्ती की है।

पिताजी : अच्छी बात है बेटा! तुम संस्कारी लगती  
हो। तुम्हारे बात करने के ढंग से ही  
पता चल गया। दोस्ती का अर्थ पता  
है?

सन्ध्या : दोस्ती का अर्थ है — साथ-साथ रहना,  
आपस में बातें करना...

माताजी : सच्चा दोस्त कौन होता है??

सन्ध्या : सच्चा दोस्त वह होता है जो सुख-दुख  
में साथ दे।

पिताजी : एकदम सही! सत्य वचन! जो संकट  
के समय में साथ देता है, वही सच्चा  
मित्र कहलाता है।

माताजी : [हस्तक्षेप करती हुई]... और इसके  
साथ ही साथ सभी मनुष्यों के बीच  
प्रेम, दया, उदारता व एकता की  
भावना बनी रहनी चाहिए और यह  
बहुत आवश्यक भी है। हमारी भारतीय  
संस्कृति इसी के कारण पूरे संसार में  
चर्चित है।

सूरज : [आश्चर्यपूर्वक] संस्कृति... क्या कहा  
आपने माँ... भारतीय संस्कृति...

माताजी : हाँ सूरज लोगों के बीच आपसी प्रेम,  
एकता, उदारता आदि भावनाएँ तथा  
हमारे खान-पान, रहन-सहन ही  
भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं।

सूरज : एक मिनट, एक मिनट माँ... मैं नोट  
करता हूँ।

माताजी : अच्छा नोट करो [फिर से वही वाक्य  
दोहराती है]

सूरज : [बहुत खुश होकर] हँ! एक वाक्य मिल  
गया!

आराधना : [व्यंग्यपूर्ण शैली में] बिना प्रयास किए  
कुछ मिल जाए, तो कितना अच्छा  
लगता है न मेरे प्यारे भाई?...

सूरज : [गुस्से में] माँ... दीदी से कह दो  
कि...

सन्ध्या : [आराधना का हाथ खींचती हुई...]  
अभी थोड़ी देर में छः बज जाएँगे और  
अंधेरा होने लगेगा। नृत्य के लिए  
अभ्यास करना है या नहीं??

आराधना : अरे हाँ! मैं तो एकदम भूल ही गई!

सूरज : नृत्य? कैसा नृत्य??

आराधना : अपना 'खोज-कार्य' करो छोटे राम!!

सूरज : माँ दीदी से ... कह दो...

पिताजी : [थोड़े गुस्से में] आराधना बस! अब उसे परेशान मत करो।

आराधना : जी पिताजी...।

माताजी : अरे सन्ध्या क्या लोगी? चाय या कुछ... मैं तो पूछना ही भूल गई...

सन्ध्या : आप चिन्ता मत कीजिए... बहुत बहुत धन्यवाद। हम दोनों के पेट अभी भरे हैं। कॉलेज में बहुत कुछ खा लिया था। अभी तो नृत्य के अभ्यास के लिए...

आराधना : [बीच में बोलती हुई] ... हाँ माँ खाने-पीने की चिन्ता मत करो! अभी तो हम दोनों अभ्यास करेंगे।

माताजी : अभ्यास... नृत्य...

आराधना : हाँ माँ एक महीने बाद हमारे कॉलेज में संगीत-दिवस मनाया जाएगा और उस अवसर पर हमारी कक्षा की कुछ छात्राएँ बॉलीवुड फिल्म के एक गाने पर नृत्य प्रस्तुत करेंगी। हम दोनों भी उसमें भाग ले रहे हैं।

सूरज : [उत्सुकता व जिज्ञासापूर्वक] कौन-सा गाना??

आराधना : अपना 'खोज-कार्य' करो लल्लू राम!

सूरज : लल्लू? कौन लल्लू??

पिताजी : [गुस्से में] आराधना अब मज़ाक बन्द!

सन्ध्या : आराधना अब बहुत हो चुका। उसको काम करने दो!

आराधना : ठीक है। ठीक है। माँ मैं अपने कमरे में जा रही हूँ। वहीं पर थोड़ा अभ्यास करेंगे...[फिर कमरे की ओर सन्ध्या चली जाती है।]

[फिर सभी अपने-अपने कार्यों में लग जाते हैं। सूरज अपने लैपटॉप के सामने...माताजी रसोईघर में खाना पकाने लगती है, कुछ समय बाद सन्ध्या

भी अपने घर चली जाती है। पिताजी भी अपने लैपटॉप पर कुछ काम करते हुए नज़र आते हैं... फिर तीनों खाने के लिए भोजन कक्ष में बैठते हैं, पुनः सभी अपने-अपने कार्यों में लग जाते हैं, शनै-शनै अंधेरा होता है...]

### द्वितीय दृश्य

[दूसरे दिन लगभग साढ़े चार बजे सूरज अपने स्कूल का बस्ता लेते हुए, घर का दरवाज़ा खोलते हुए, बैठक में प्रवेश करता है। उसकी माँ कुछ समय पहले ही घर पहुँच चुकी है।]

सूरज : माँ! माँ!

माताजी : क्या हुआ सूरज?

सूरज : नहीं नहीं कुछ नहीं! [स्वयं रसोईघर में जाकर अपने ही हाथों से एक गिलास पानी लेकर पीने लगता है।]

माताजी : अरे वाह सूरज! लगता है पिताजी की बातों का तुम पर असर होने लगा है।

सूरज : हाँ माँ! आज स्कूल में भी इसी प्रकार की बातें मैंने सीखीं।

माताजी : हाँ...और आज ही से उसको व्यवहार में लाना भी शुरू कर दिया। बधाई हो!

सूरज : हाँ माँ सिर्फ बोलने से काम नहीं होगा, हमें उसे कर के भी दिखाना चाहिए। यही बात आज मैंने अपने गुरुजी से सीखी!

[उस समय सूरज के पिताजी भी दरवाज़ा खोलते हुए बैठक की ओर बढ़ते हैं और वे सूरज के अंतिम वाक्य को सुन लेते हैं।]

पिताजी : [जिज्ञासापूर्वक] क्या कहा तुम्हारे गुरुजी ने आज? उनसे क्या सीखा आज कक्षा में?

सूरज : उन्होंने बताया कि जो व्यक्ति आलस्य

- को त्यागकर कर्म करता है, वही अपने जीवन में सफल होता है।
- पिताजी :** उन्होंने एकदम सही बात कही। गोस्वामी तुलसीदास जी भी कह गए हैं कि 'कर्मप्रधान विश्व रचि राखा, जो जस करहि ते तस फल चाखा।' अर्थात् ईश्वर-निर्मित विश्व में कर्म ही प्रधान है और जो जैसा करता है उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन...' अर्थ 'कर्म करते चलो फल की इच्छा मत करो....।
- सूरज :** बहुत कुछ समझ गया पिताजी। अभी-अभी जो आपने कहा इन विचारों का प्रयोग मैं अपने भाषण में भी कर सकता हूँ, क्योंकि यही भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र है।
- पिताजी :** 'मूलमंत्र'?
- सूरज :** हाँ पिताजी! आज ही कक्षा में यह नया शब्द सीखा।
- पिताजी :** यह तो बहुत अच्छी बात है। जो शब्द सीख रहे हो उसका प्रयोग भी सही ढंग से कर रहे हो। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ।
- सूरज :** [प्रफुल्लित होकर] धन्यवाद पिताजी!
- पिताजी :** सूरज की माँ, ज़रा मेरे लिए गरम-गरम चाय तैयार कर देना।
- माताजी :** जी हाँ, अभी लाती हूँ।
- पिताजी :** अगर तुम्हें रसोईघर में मेरी मदद की आवश्यकता हो, तो मैं आने के लिए तैयार हूँ।
- माताजी :** नहीं जी! आपने इतना कह दिया मेरे लिए इतना ही काफी है।
- सूरज :** पिताजी क्या आप मेरी मदद कर सकते हैं?
- पिताजी :** अच्छा बोलो, क्या बात है?
- सूरज :** कल मैंने कुछ पुस्तकों से 'हिंदी और भारतीय संस्कृति' पर जानकारीयाँ प्राप्त कीं। इंटरनेट से भी बहुत कुछ मिला। [उसी समय सूरज की माँ भी गरम चाय लेकर पास में आ जाती है और अपने पति को चाय देते हुए कहती है...]
- माताजी :** बाप-बेटे के बीच क्या वार्तालाप हो रहा है? ज़रा मैं भी तो सुनूँ...
- सूरज :** अभ्यास माँ अभ्यास! भाषण के लिए अभ्यास!
- पिताजी :** अच्छा बोलो जो तुमने तैयार किया।
- सूरज :** परन्तु माँ मेरे हिंदी-उच्चारण पर हँसना मत। इसमें थोड़ा कमजोर हूँ।
- माताजी :** 'चिन्ता चिता समान'। चिन्ता मत करो, बोलो और पूरे आत्मविश्वास के साथ बोलो। मैं नहीं हँसूंगी।
- सूरज :** ठीक है शुरू करता हूँ — 'आदरणीय गुरुजी और मेरे समस्त सहपाठियों को मेरा सादर नमन।'
- माताजी :** वाह! कहाँ से सीखा है तुमने ऐसे शब्द?
- सूरज :** माँ मैंने खोज-कार्य किया है। अब बीच में मत रोको-टोको आगे भी बोलने दो...
- माताजी :** [थोड़ी मुस्कराहट के साथ] अच्छा-अच्छा बोलो।
- सूरज :** अच्छा... 'आदरणीय गुरुजी और मेरे समस्त सहपाठियों को मेरा सादर नमन। मेरे वक्तव्य का शीर्षक है— 'हिंदी और भारतीय संस्कृति का महत्व'। यह बात विशेष उल्लेखनिय है कि...
- पिताजी :** ठहरो सूरज 'उल्लेखनिय' नहीं बोलते हैं 'उल्लेखनीय' कहते हैं। 'ईय' बड़ी

‘ई’ की मात्रा। इस पर ध्यान दो।  
**सूरज :** जी हाँ पिताजी, धन्यवाद!  
 ‘...उल्लेखनीय है कि हिंदी-भाषा को संस्कृत की बड़ी बेटा की संज्ञा से अभिहित किया गया है। हिंदी की वर्णमाला संसार की सर्वाधिक व्यवस्थित वर्णमाला है। इसकी लिपि विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है। हिंदी संसार की दूसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। एक सर्वेक्षण द्वारा यह जानकारी प्राप्त हुई है कि इस समय विश्व में 54.5 [चौवन दशमलव पाँच] करोड़ हिंदी बोलने वाले हैं। हम हिंदी में जो भी बोलते हैं, वैसे ही लिखते भी हैं। हिंदी पूरे भारत और दुनिया के कई देशों (जैसे मॉरीशस, सूरीनाम, फिजी, गयाना, मलेशिया, नेपाल, अमेरिका आदि) में बोली और समझी जाने वाली अनुपम भाषा है...

**पिताजी :** [हस्तक्षेप करते हुए] वाह! आज तो मैं आनन्द-विभोर हो गया। कहाँ से मिलीं ये सब जानकारियाँ?

**सूरज :** कुछ हिंदी निबंध की पुस्तकों से और कुछ इंटरनेट से...

**पिताजी :** अति उत्तम! तुम्हारा खोज-कार्य प्रशंसनीय है।

**सूरज :** [जिज्ञासापूर्वक]... परन्तु पिताजी एक समस्या है।

**पिताजी :** समस्या! कौन-सी समस्या?

**सूरज :** भारतीय संस्कृति के महत्व पर मुझे उतनी जानकारियाँ प्राप्त नहीं हो पाईं और जो प्राप्त भी हुई, उसे समझने में कठिनाई हो रही है... क्या आप मेरी थोड़ी सहायता...

**पिताजी :** हाँ अवश्य! मैं तुम्हारी सहायता तो कर दूँगा, पर तुम्हें अपनी ओर से भी अधिक

जानकारियाँ प्राप्त करनी होंगी। ठीक है?

**सूरज :** जी पिताजी...।

**पिताजी :** देखो भारतीय संस्कृति के महत्व पर बात करने से पहले मैं तुम्हें हिंदी के महत्व पर बता देता हूँ। श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कहा था कि...

**सूरज :** एक मिनट पिताजी, एक मिनट, मैं आपके वाक्यों को नोट कर लूँगा।

**पिताजी :** अच्छा ठीक है!  
 [उसी समय थी-माँदी आराधना का प्रवेश होता है।]

**आराधना :** सभी को नमस्ते! सभी पहले ही घर पहुँच चुके हैं, सिर्फ मैं ही देर से...

**माताजी :** ...अरे आराधना आज तुम्हारी सहेली सन्ध्या दिखाई नहीं दे रही है...

**आराधना :** हाँ माँ, दो दिनों के लिए वह एक शोध-कार्य में व्यस्त रहेगी, उसके बाद आएगी...

**माताजी :** अच्छा...!

**पिताजी :** आराधना तुम भी पास में आकर बैठ जाओ और ध्यान से सुनो!

**आराधना :** जी पिताजी, माँ मेरे लिए थोड़ी चाय...

**माताजी :** अच्छा-अच्छा ठीक है... ले आती हूँ।

**सूरज :** हाँ पिताजी बोलिए!

**पिताजी :** हाँ! [आवाज़ बुलन्द करते हुए...]  
 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने कहा था कि “निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल?...विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार। सब देसन से लै करहू, भाषा माहि प्रचार” अर्थात्...

**माताजी :** [हस्तक्षेप करती हुई] एक मिनट... एक मिनट आराधना लो अपनी चाय...

**सूरज :** हाँ जारी रखिए पिताजी...



**पिताजी :** अर्थात् 'अपनी भाषा से ही उन्नति सम्भव है, क्योंकि यही सारी उन्नतियों का मूलाधार है। मातृभाषा के ज्ञान के बिना हृदय की पीड़ा का निवारण सम्भव नहीं है। विविध प्रकार की कलाएँ, असीमित शिक्षा तथा अनेक प्रकार का ज्ञान सभी देशों से अवश्य लेने चाहिए, परन्तु उनका प्रचार मातृभाषा में ही करना चाहिए!

**सूरज :** [कागज़ पर लिखने का कार्य समाप्त करते हुए]... धन्यवाद पिताजी आपने तो मेरा काम बहुत आसान कर दिया।

**पिताजी :** अभी कार्य पूरा नहीं हुआ है सूरज, भारतीय संस्कृति पर भी तो बात करनी है।

**आराधना :** ध्यान से सुनो सूरज, ध्यान से!!

**पिताजी :** [थोड़ी मुस्कुराहट के साथ] हाँ आराधना एकदम सही कहा, ध्यान से!!

**सूरज :** अच्छा बोलिए पिताजी...

**पिताजी :** हाँ सुनो! हमारी संस्कृति ही हमारी पहचान है। हमारा जन्म भारत जैसे महान देश में हुआ। भारतीय संस्कृति इसलिए समृद्ध है, क्योंकि भारत में बड़े-बड़े दानवीर, शूरवीर व कर्मवीर पैदा हुए। अर्जुन, कर्ण, महर्षि विश्वामित्र, श्री राम आदि महापुरुषों की गाथाओं से भारतीय संस्कृति और भी समृद्ध हुई। यह बात भी विशेष उल्लेखनीय है कि संस्कृति की रक्षा मूलतः भाषा ही करती है। जब भाषा का अस्तित्व मिटने लगता है, तब शनै-शनै संस्कृति भी मिटने लगती है। भारतीय संस्कृति की पहचान भाषा, धर्म, जाति-व्यवस्था, परिवार, पशु-पालन, खान-पान, कृषि-उद्योग, परंपरा, रीति-रिवाज़, वेश-भूषा, इतिहास, काव्य-महाकाव्य, संगीत,

नृत्य, नाटक, दृश्य-कला, मूर्तिकला, दर्शन-शास्त्र आदि से होती है। भारतीय संस्कृति को कायम रखने में हिंदी-भाषा का बहुत बड़ा योगदान है।

**सूरज :** पिताजी बहुत बढ़िया। मेरा काम आपने एकदम सहज कर दिया!

**माताजी और पिताजी :** [तालियाँ बजाने लगे] दोनों ने साथ में कहा,... अति उत्तम! अति उत्तम!

**पिताजी :** नहीं नहीं यह तो कुछ भी नहीं। अभी सूरज को और अधिक शोध-कार्य करना होगा।

**सूरज :** [आश्चर्य भाव से] क्या और खोज-कार्य??

**पिताजी :** हाँ बेटा, और ढूँढना पड़ेगा!

**सूरज :** अच्छा पिताजी।

[फिर सभी अपने-अपने कार्य में लग जाते हैं और ब्लेक-आउट होता है।]

### तृतीय दृश्य

[डेढ़ घंटे बाद पिताजी, माताजी और आराधना भोजन कक्ष में अपना-अपना भोजन करते हुए नज़र आते हैं।]

**पिताजी :** सूरज दिखाई नहीं दे रहा है, कहाँ है?

**माताजी :** [बुलन्द आवाज़ में] सूरज, बेटा सूरज! जल्दी आओ मैंने तुम्हारा खाना परोस दिया है।

**सूरज :** हाँ माँ! आ रहा हूँ।

**आराधना :** माँ भोजन बहुत स्वादिष्ट है!

**पिताजी :** तुम्हारी माँ बहुत प्यार से भोजन पकाती है। इसीलिए भोजन इतना स्वादिष्ट हो जाता है।

**आराधना :** जी पिताजी।

**सूरज :** [अपनी कुरसी लेकर बैठते हुए और

भोजन की ओर देखते हुए] हैं लगता है आज खाना बहुत स्वादिष्ट बना है।

माताजी : धन्यवाद!

पिताजी : प्रेम से किया गया कार्य हमेशा ही अच्छा होता है। जिस घर में, जिस परिवार में, जिस राष्ट्र में आपसी प्रेम और एकता का वास होता है, वहाँ सब कुछ अच्छा ही होता है और 'एकता ही में बल है!'

सूरज : पिताजी, मुझे अपने भाषण के लिए और एक नया विचार आपने दे दिया।

पिताजी : हैं! विचार तो ठीक है सूरज, परन्तु इन विचारों को व्यवहार में लाना तुम्हारा काम है।

सूरज : अवश्य पिताजी!

माताजी : [सूरज और आराधना की ओर देखती हुई] जो-जो बातें तुम दोनों ने मुझसे या फिर अपने पिताजी से सीखीं, वे सारी बातें हमारी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। हमारी हिंदी भाषा अनुपम है और हमारी संस्कृति कालजयी और अत्यन्त समृद्ध है।

पिताजी : एकदम सही कहा तुमने शान्ति! एक महत्वपूर्ण बात तो मैं आप लोगों को बताना भूल ही गया!

आराधना और सूरज : [साथ में] बोलिए पिताजी! कोई अच्छी खबर?

पिताजी : हाँ ऐसा ही समझ लो। पता है कल मेरे विभाग के अध्यक्ष ने मुझे अपने दफ्तर में बुलाया था और मुझसे पूछा कि क्या मैं विदेशी छात्रों को इंटरनेट की सहायता से स्काइप के माध्यम से हिंदी पढ़ा सकता हूँ? और मैंने तुरन्त 'हाँ' कह दिया और विभागाध्यक्ष भी बहुत प्रसन्न हुए।

सूरज : वाह पिताजी! यह तो बहुत अच्छी खबर

है!

आराधना : बधाई हो पिताजी!

माताजी : अब आप हिंदी का प्रचार-प्रसार विश्व के कोने-कोने में कर सकते हैं।

पिताजी : हाँ यही तो मेरा जीवनोद्देश्य है! मैं तो यह कहता हूँ कि हर हिंदी-प्रेमी को हिंदी के उत्थान के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

माताजी : सही कहा आपने! हमारी वास्तविक सम्पत्ति केवल पैतृक सम्पत्ति नहीं होती! हमारी मातृभाषा और संस्कृति ही सच्चे रूप में हमारे लिए अमूल्य धन के सदृश हैं।

पिताजी : हिंदीमय वातावरण में हमने साँसें लीं, पले-बढ़े और आजीविका की प्रप्ति की। हमारी संस्कृति ने हमें जीने का ढंग सिखाया। इनके अभाव में, निश्चित रूप से, हम निर्धन हो जाएँगे और इनके सान्निध्य में हम सबसे बड़े धनवान कहलाएँगे...। हिंदी और भारतीय संस्कृति की रक्षा और उत्थान का कार्यभार हमारे हाथों में है!

[फिर भोजनादि के बाद सभी अपने-अपने कार्यों में व्यस्त हो जाते हैं... पिताजी अपने लैपटॉप पर विदेशी छात्रों से बात करते हुए नज़र आते हैं...और सूरज अपने भाषण की तैयारी में पूरी तरह लीन हो जाता है और बुलन्द आवाज़ में अभ्यास करते हुए श्रोताओं के सम्मुख आकर कहता है... 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल... और धीरे-धीरे परदा गिरता है']

pviswanand@gmail.com

# मानस की जात

— श्री अनुराग शर्मा  
पिट्सबर्ग, अमेरिका

**मंच की तैयारी :**

एक के पीछे एक लगी हुई दो कुर्सियाँ। कार का पार्श्व दर्शाता हुआ एक कार्डबोर्ड कटआउट इन कुर्सियों को इस प्रकार ओट में ले लेगा कि दर्शकों को एक ऐसी टैक्सी का आभास हो, जिसमें आगे चालक और पीछे एक यात्री बैठ सकते हैं। कार के हॉर्न का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए एक भोंपू या फ़ोन/पृष्ठभूमि आदि से बजाने के लिए कोई उपकरण। सड़क के किनारे लगा हुआ एक कूड़ेदान।

[मंच खुलता है। टैक्सी में बैठा हुआ चालक बाहर खड़े व्यक्ति से बहस करता हुआ दिखाई देता है]

**जाता हुआ व्यक्ति :** ये कोई तरीका नहीं है ... कोई कायदा कानून है कि नहीं?

**चालक :** अबे जा, तेरे जैसे 50 को रोज़ फेंकता हूँ अपनी टैक्सी से ... बड़ा आया कानून सिखाने वाला।

[एक यात्री टैक्सी की ओर आता है]

**यात्री :** टैक्सी...टैक्सी

**चालक :** कित जाएगा?

**यात्री :** टैक्सी खाली है भैया?

**चालक :** बता तो सही कहाँ जाना है? फेर बताऊँगा खाली है कि नहीं।

**यात्री :** अंदर तो आने दीजिए, मार्ग मैं दिखा

दूँगा ...

**चालक :** कैश है तेरे धौरे? आज के दिन मैं कार्ड न लेता, गांधी जी का भगत हूँ, पक्का वाला।

**यात्री :** चिंता नहीं। आपको जो चाहिए, सब मेरे पास है।

[टैक्सी के सामने से जाता हुआ एक व्यक्ति प्लास्टिक के कप से आखिरी बूंद गटकने के बाद उसे सड़क पर उछालकर मंच के कोने में ओझल हो जाता है। यात्री लपककर कप को उठाता है, उसे कूड़ेदान में डालकर टैक्सी में आकर, पीछे की सीट पर बैठ जाता है]

**चालक :** [हॉर्न बजाकर] देख, कैसे घर का कचरा रोड पे फैलाते हैं। सब देसी लोग नूँ ई हैं!

**यात्री :** [मुस्कराते हुये] सफ़ाई तो रखनी ही चाहिए। वैसे, मैं भी देसी हूँ, ठेठ भारतवासी देसी।

**चालक :** [अचरज से मुड़कर देखता है] लेकिन,

आप तो बड़े नफीस से दिक्खो हो ...

**यात्री :** अच्छा! देसी भी हर तरह के होते हैं। दुनिया रंग रंगीली बाबा ...

**चालक :** [वाहन स्टार्ट करता है] चाल्ल भाई, तू रास्ता बताता चाल्लियो।

[जैकेट पहनकर, हुडी या टोपी लगाए एक व्यक्ति रैप गाता हुआ टैक्सी के

सामने आ जाता है।]

**चालक :** [पीछे मुड़कर] खिड़की बंद कर ले न भाई। पक्के रंग का इलाका है यो। फिर मती न बोलियो, के लुट गया दिन दहाड़े।

**यात्री :** मैं निर्भय हूँ। ये भी मेरे अपने ही तो हैं।

**चालक :** ये तू किस तरह कह सके है?

**यात्री :** क्योंकि मैं भी पक्के रंग वाला हूँ। मुझमें तो अफ्रीकी रक्त है।

**चालक :** मज़ाक न कर। कभी हिंदुस्तानी है, कभी अफ्रीकी। यो कैसे होगा?

**यात्री :** आराम से होगा। हैदराबाद के सिद्धियों के बारे में सुना है कभी? निज़ाम के अफ्रीकी सिपाही? मेरे नाना के पुरखे सिद्दी थे। अफ्रीका से ही भारत आए थे।

**चालक :** [सामने इशारा करते हुए] वो देख, कैसे पागल—सा गाड़ी चलाए है।

[कार्डबोर्ड की एक और कार, या साइकिल सामने से टेढ़ी—मेढ़ी चलती हुई निकलती है]

**चालक :** [भोंपू बजाते हुए] देखो—देखो, भगवान जाने कैसे गाड़ी चलाते हैं। चीनी ...

**यात्री :** [चौंककर] मुझे कुछ कहा? तुम्हें कैसे पता चला कि मैं चीनी हूँ।

**चालक :** मज़ाक न कर। पहले देस्सी था, फिर अफ्रीक्की हुआ, और अब दो मिंट में चीनी भी हो लिया? यो ना हो सकता।

**यात्री :** मेरी दादी का परिवार चीनी है। लाल क्रांति के समय जान बचाकर भारत

भाग आए थे। तब से बंगाल में बसे हुए हैं। अब तो सब चीनी के साथ—साथ हिंदी और बांग्ला भी बोलते हैं।

**चालक :** खुदा का शुक्र है तुम फिलिपीनो नहीं। वरना बासी शैवाल की गंध आ रही होती।

**यात्री :** दरअसल [मुस्कान] मुझे एक फिलिपीनो परिवार ने गोद ले लिया था। उन्होंने ही पाल—पोसकर इस लायक बनाया है। माफ़ करना, अगर बासी शैवाल जैसा गंधाता हूँ ....

**चालक :** अरे, नहीं—नहीं साहब। आपके आने से तो मेरी गाड़ी सुगंधित हो गई है। लेकिन एक बात तो है। अब आपसे ज़्यादा बात करने में मुझे डर—सा लागे है। देसी, अफ्रीकी, हैदराबादी, चीनी, बंगाली, फिलिपीनो। पता नहीं किसके बारे में मेरे मुँह से कुछ उलटा सीधा लिकड़ जाए और आपको बुरा लग जाए। चलो, सरदारजी का एक जोक सुनाता हूँ। अब यो ना कहियो कि आप सरदार भी हो।

**यात्री :** [ठहाका लगाकर हँसता है] आपका अंदाज़ बिल्कुल सही है। सरदार तो मैं हूँ। राज करेगा खालसा, आकी रहे न कोय! बोले सो निहाल, सत श्री अकाल!

**चालक :** यो कुछ ज़्यादे हो गई! आप सरदार ना हो सकते? केश किधर हैं?

**यात्री :** सहजधारी हूँ। केश रखे बिना भी गुरुओं की मर्यादा का पालन करता हूँ... मानस की जात समै एके पहचान बो हम सब एक हैं। हम सब में एक—सा ही खून दौड़ रहा है। हमसे अलग दिखने वाले मनुष्य और अन्य प्राणी भी तो सब हमारे अपने ही हैं।

**चालक :** आप ठीक ही कहो हो। मेरी माँ भी तो ये ही कहे हैं। सब मेरे अपने हैं, मेरे परिजन। आपने तो मेरी आँखें खोल दीं। सच्ची कहे थे कि मुझे मारग दिखलाओगे ...

*[यात्री दर्शकों को देखकर मुस्कुराता है और थम्स अप करके नीचे झुककर दिखना बंद हो जाता है। तभी चालक गाड़ी रोककर हाथ मिलाने का उपक्रम करते हुए पीछे मुड़ता है।]*

**चालक :** *[आश्चर्य से]* अरे, यहाँ तो कोई भी नहीं है ... हैं? मैं तो कहीं गया ही नहीं,

यहीं बैठा हूँ। टैक्सी भी तब से स्टैंड पर ही खड़ी है। मतलब यो, कि कोई सवारी थी ही नहीं, मुझे झपकी लग गई थी। लेकिन सपना घणा सुहाना था। मिनट भर में मुझे इतना कुछ सिखा गया। अब मैं एक इंसान हूँ। काला या गोरा नहीं, केवल इंसान, एक मानव, समस्त मानवता से जुड़ा हुआ। जय हो!

*[पृष्ठभूमि में]*

“विद्या विनय सम्पन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनी  
शुनि चैव श्वपाके च, पंडिताः समदर्शिनः”

**indiasmart@gmail.com**

## यादें

— श्रीमती सुनीता नारायण  
न्यूजीलैंड

**दृश्य — पुस्तकालय**

*[तीन दोस्त — दीपक, रीमा और रूपा एक कक्षा में पढ़ते हैं और मेज़ पर बैठे बातें कर रहे हैं। कुछ परेशान लगते हैं।]*

**रीमा:**

आइडिया! हम कुछ इमिग्रेंट्स का इंटरव्यू कर सकते हैं, उनसे पूछ सकते हैं कि वे न्यूजीलैंड क्यों आए हैं।

*[सब चुप हैं...फिर]*

**रूपा :** *[सामने देखते हुए]* अरे देखो जैमी और आरोहा भी आ गए!

**जैमी:** हाय! क्या हाल है? क्या हुआ? कोई मर गया?

**आरोहा:** बहुत गंभीर लग रहे हो। क्या बात है? कुछ परेशानी है?

**दीपक :** याद नहीं? हमारा असाइनमेंट? हम उसी चिंता में हैं?

**रूपा :** समझ में नहीं आता कहाँ से शुरू करें!

**दीपक :**

हममम....सुनने में ठीक लगता है।

**जैमी:**

ना...ना मेरे पास और भी अच्छा विचार है।

**रूपा :**

बताओ!

**जैमी:**

*[उठते हुए]* एक कॉफी के लिए।

**दीपक :**

*[जैमी को कुर्सी पर बिठा देता है]* हाँ कॉफी पीएँगे। पहले बताओ तो बाबा।

**जैमी:**

*[सभी की ओर बारी-बारी देखता है]* हमारे ग्रुप को देखो, मैं कीवी हूँ, मेरे दादा इंग्लैंड से यहाँ 1930 में आए थे।

- आरोहा के पिताजी भारत से हैं और उसकी माँ माओरी है। दीपक तुम्हारे माता-पिता फ़िजी से आए थे। पर तुम यहाँ पैदा हुए हो। रूपा तुम भारत से आई हो। और सीमा तुम अभी-अभी दक्षिण अफ़्रीका से आई हो। *[सभी एक दूसरे को देखते हैं और परेशान लग रहे हैं]* तुम सभी भारतीय हो लेकिन अलग-अलग देश से हो। उत्तर हमारे पास है।
- [दीपक, रूपा और सीमा के चहरे पर हलकी-सी मुस्कान]*
- रीमा: हाँ तो? यह तो हम जानते हैं।  
जैमी: *[उठते हुए]* पहले कॉफी!
- [दीपक जैमी को एक बार फिर कुर्सी पर बिठाता है और उसे पकड़े हुए है]*
- आरोहा: हम चार *[दीपक, जैमी, रूपा की ओर संकेत करती हैं]* कितने दिनों से दोस्त हैं। साथ में मूवीज़, साथ में स्कूल, साथ में मेकडोनल्ड्स.....
- जैमी: और मेरे परिवार को भारतीय खाना कितना पसंद है। दिवाली में हम तुम्हारे घर आते हैं। कितना मज़ा आता है। खाना, मिठाई, फ़ायर क्रैकर....
- आरोहा: बॉलीवुड कॉम्पेटिशन, कृष मूवी...ओ... ओ रितिक कितना हैंडसम है।
- जैमी: बिग बड़ा बूम, भांगड़ा, हम कितना मज़ा करते हैं। और हम थोड़ी हिंदी भी तुम से सीखे हैं।
- दीपक: क्या कर रहे हो यार? अब तो बताओ क्या विचार है।
- जैमी: ओके...ओके। क्यों नहीं तुम लोग हमें बताओ कि तुम्हारा परिवार न्यूज़ीलैंड क्यों आया?  
*[सभी थोड़ी देर मौन हैं]*
- रूपा : वाह जैमी!
- दीपक: अरे वाह जैमी मेरे दोस्त *[उसे गले लगाता है]*।
- रीमा: बहुत ही अच्छा विचार है।
- जैमी : अब क्या?
- दीपक : यू आर ग्रेट जैमी! अब मैं रुक नहीं सकता। मुझे फ़िजी में अपने आज्ञा (दादा जी) से बातें करनी हैं।
- रूपा : क्यों?
- दीपक : क्योंकि मेरे दोस्त, मेरे आज्ञा के पास मेरे प्रश्नों के उत्तर हैं?
- [दीपक अपना मोबाइल निकालता है और कॉल लगाता है। मुस्कुराता है, सिर हिलाता है, खुश दिखता है। अपने दोस्तों को चुप रहने को इशारा करता है]*
- दीपक : राम राम आज्ञा, ई दीपक है न्यूज़ीलैंड से।  
*[दीपक उठ जाता है और इधर से उधर चलने लगता है, फिर रुक जाता है, उसका चेहरा खिल उठता है और दोस्तों की तरफ़ आ जाता है]*
- दीपक : आज्ञा हमें बताएँगे कि वो भारत से कैसे फ़िजी आए थे।  
सब एक साथ : स्वीट
- दीपक : खामोश! सुनो सुनो।
- [मोबाइल मेज़ पर रखता है और मोबाइल को स्पीकर पर कर देता है]*

आजा : बहुत दुखद खिस्सा (कहानी) है बेटा।  
दीपक : हाँ आजा...आपको कुछ याद है? काहे दुखद है?

आजा : सब याद है बेटा। कैसे भूल सकता? अच्छा हम तुमके जल्दी-जल्दी बताए देइत है। हमार माई-बाप, दुई भाई माधव और मंगल कानपुर के आस-पास एक गाँव में रहत रहिन। सब के औरत, लड़कन-बच्चन भी। एक दिन एक गोरा और एक हिंदुस्तानी अदमी हमरे गाँव आइन। खूब ठाठ-बाट में। उ लोग माधव से बताइन कि एक जगह बहुत काम है और हुआ हम्मे बहुत पैसा मिली और अच्छा रही। हम आपन गाँव बहुत पैसा भेजे सकेगा। गाँव में सब खुशी रहिए। कोई के दुख नहीं रही।

दीपक : फिर आजा?

आजा : फिर हम तीनों भैया थोड़ा इस के बारे में सोचा। उ अदमी लोग दुसरा दिन फिर आइन और हम लोग के बताया कि हाँ हम चलेगा। कुछ छोटा-मोटा चीज़ बटोरा और एक पुराना तुलसीदास रामायण लाल कपड़ा में लपेट के, एक दिन आपन औरत-लड़कन के ले चुप्पे गाँव से निकल गया। और कोई से नई बताया।

दीपक : तब आजा? उसके आगे और याद है?

आजा : हाँ हाँ सुनते रहो। एक बैल गाड़ी में बैठा और चल पड़ा। आगे चल के एक ट्रक में जानवर के माफित हम्मे लाद दीन। रुकते-रुकते एक जगह [सोचता है] सुल्तानपुर पहुँचा। फिर एक हफ़ता बाद हम लोग कलकत्ता पहुँचा।

दीपक : फिर कौंची भय (क्या हुआ) आजा?

आजा : हुवाँ हम्मे एक डीपू में एक महिना

रखिन। औरत, अदमी, लड़कन, सब जात के लोगन एक्के जगह रखिन। छी...छी! एक दिन एक साहेब कुछ पेपर लेके आइस और हमसे पूछे लगा माई-बाप, बस्ती के नाम। लिखते गए। उसमें हम अंगूठा के छाप लगाया। फिर एक डाक्टर के पास गया। उ पूरा दही (शरीर) देखीस और डाक्टरी करिस। और बोलिस कि हम काम के वस्तीन (लिए) जाए सकता। फिर गोरवे हमके भेजे के तयारी में लग गयीन। अऊर बोलिन कि हम पाँच साल गिरमिट (अग्रीमेंट) काटे के वस्तीन फ़िजी जाएगा।

[आरोहा, जैमी, रीमा और रूपा कुछ चिंतित प्रतीत होते हैं]

दीपक : फिर आजा, आगे कौंची भय?

आजा : हम्मे एक दिन लेन बनाए के एक नदी के तरफ़ ले गयीन और एक जहाज़ पर चढ़े के बोलिन। कलकत्ता के रकम फिए जानवर के रकम, आदमी, औरत, लड़कन, सब जाती के लोग एक जगह रहो, खाओ, पीयो। तीन महिना कोई रकम समुंदर में गुजरा। कछु लोगन तो मर गयीन। उसके पानी में फेंक दीन। बहुत निर्दयी रहिन गोरवे। कभी कभी हम्मे लात (पैर) से मार दे। हे भगवान और का बताई।

दीपक : आजा उ नदी और जहाज़ के नाम कौंची रहा? और खाना आजा?

आजा : नदी के ना...आ...नाम [रुककर]... हाँ हूली लेकिन जहाज़वा के नाम नई याद है। अऊर खाना... बस रोज़ दाल-भात। बहुत कमती पानी मिलत रहा। बहुत संकट रहा लेकिन जहाज़ी में दोस्ती होए लगा। और सब एक



दूसरे के ख्याल रखे लगिन। नई तो राम जाने का होवत। कोई रकम हम लोग एक टापू पहुँचा। हम लोग के गोरवे बताइन कि कुछ हफ़ता वहीं रहे के पड़ी।

**दीपक :** ई काहे आजा?

**आजा :** बोले कि हमार लोग के कोई बीमारी होई तो अऊर सब के पकड़ लेयी।

**दीपक :** हुवाँ कितना दिन रहा आजा?

**आजा:** कोई तीन हफ़ता।

**दीपक :** फिर आजा?

**आजा :** हम तीनों भैया के अलग-अलग कर दीन। हम लोग बहुत रोया। तीन तरफ़ भेज दीन। हम्मे एक गोरा के घर में काम करे के भेज दीन अऊर मंगल अऊर माधव के गन्ना के खेत में काम करे के भेज दीन। ठीक रहा हम लोगन कभी कभी मिल ले सकत रहा। मंगल अऊर माधव के बहुत मार सहे के पड़ा। उ लोग के तो गन्ना के खेत में काम कर कर के कमर टूट गए। कुलम्बर (काम का सुपावाइज़र) से पाँच साल के गिरमिट में बहुत मार और गारी (गाली) खाये के पड़ा। मंगलवा थोरा थोरा (थोड़ा) रामायण पढ़ लेत रहा अऊर हम लोगन थोड़ा गाए लेत रहा। रामायण गाए के थोरा दिल के सांती (शांति) मिलत रहा। राम के बनवास से तो हमार ज़िंदगी थोरा ठीक रहा। सीता मैया जब इतना दुख सहे लीस तो हम भी सबूरी (सहन करना) कर लोग, यही हम लोग सोचा।

**दीपक:** तब गिरमिट के बाद आप इंडिया काहे नई लौटा?

**आजा :** पलवार (परिवार) बहुत याद आवत रहा लेकिन हम बोट (जहाज़) के भाड़ा

(किराया) नई बटोर पाया। गिरमिट ख़लास करके एक छोटा ज़मीन लेके आपन लड़कन अऊर आजी के साथे फ़िजी में घर बसाये लिया। हियाँ जहाजी भाई और आपन भैया लोगन के साथे दिन गुज़रे लगा। फिर तुमार [तुम्हारे] पिताजी कुछ अऊर अदमी के साथ नीऊज़्लैंड जंगल काटे गयीस। लौट के आइस तो बोले उसके नीऊज़्लैंड में बहुत अच्छा लगे है। अऊर उ फिर से मांगे जाए। सोच-बिचार (विचार) करके तुमार अम्मा के साथे चला गए अऊर तुम वहीं पैदा भया।

*[दीपक अपने दोस्तों की तरफ़ देखता है। सब सिर हिलाते हैं। रूपा की आँखों में आँसू हैं।]*

**दीपक :** आजा, अच्छा दूसरा रोज और बताना। आप के जीवन के बारे में हम और माँगता जाने। आप याद रखना! *[मोबाइल बंद कर देता है और सभी की ओर देखता है]*

**रूपा :** *[आँसू पोछते हुए]* मैं फ़िजी हिंदी नहीं बोलती पर दीपक मैंने तुम्हारे आजा जी की बातें समझ ली। कितनी दर्द भरी कहानी है। हमें कितना सुनहरा मौका मिला कि हम इस ऐतिहासिक कहानी को अपने असाइनमेंट में प्रस्तुत करें। हमने आज तुम्हारे आजा से कुछ नया सीखा है और हम अपनी कक्षा को भी सिखाएँगे।

**जैमी:** कॉफी? अब तो भूख भी लगी है!

**दीपक :** यार जैमी और आरोहा। तुम्हारे जैसे दोस्त नसीब से मिलते हैं। चलो कॉफी... *[सभी दरवाज़े की ओर चलते हैं]*

**sunita.d.narayan@gmail.com**

# भाषा और अस्मिता

— डॉ. प्रमोद कुमार दुबे  
नई दिल्ली, भारत

आन्तरिक और बाह्य स्तरों पर मनुष्य की अस्मिता भाषा से सृजित और अभिव्यक्त होती है। भाषा और अस्मिता दोनों अभिन्न हैं। कहना कठिन है कि भाषा पहले है या अस्मिता पहले, क्योंकि मन के बिना मनुष्य नहीं होता और भाषा के बिना मन नहीं होता। मनुष्य के प्रत्येक प्रयास में सबसे पहले उसकी भाषा या कहें उसके शब्द ही पहल करते हैं।

“सबसे पहले किसी लड़ाई में लड़ता है शब्द,  
सबसे पहले किसी चढ़ाई में चढ़ता है शब्द,  
सबसे पहले किसी कमाई में बढ़ता है शब्द,  
शब्द मरेगा तो अर्थ मर जाएगा,  
अर्थ मरेगा तो मन मर जाएगा,  
मरे मन का मनुष्य बच नहीं पाएगा,  
खुद नहीं बचा तो देश क्या बचाएगा।”

शब्द में ही ज्ञान गूँथा हुआ है, इसलिए शब्द से ही सब कुछ भासमान होता — ‘अनुविद्धमविश्रानं सर्वं शब्देन भासते’ (वाक्यपदीय, भर्तृहरि)। शब्द से ही मन प्रकाशित होता है। विश्वप्रसिद्ध भाषा दार्शनिक भर्तृहरि मानते हैं कि मनुष्य की बुद्धि में शब्द सुप्त रहता है, जैसे अरणि में ज्योति। अरणि के मंथन से ज्योति प्रकट हो जाती है, वैसे ही बुद्धि में रहने वाला शब्द अर्थबोध की इच्छा से मथित होकर प्रकट हो जाता है और भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्दों की उत्पत्ति का निमित्त बन जाता—‘अरणिस्थं यथा ज्योतिः प्रकाशान्तरकारणम्’ (46—ब्रह्मकाण्ड, वाक्यपदीय)। भारतीय भाषा दर्शन यह बताता है कि व्यवहार में ही नहीं, मनुष्य के अन्तःकरण में भी भाषा निहित है। आगमिक धारणा भी यही है कि मनुष्य के शरीर में जन्म के साथ ही अव्याकृत वाक् से निसृत वर्णों की

सूक्ष्म सत्ता विद्यमान रहती है, इन्हीं वर्णों से देहस्थ योग चक्र बने होते हैं।

वर्ण सत्ता को नित्य माना गया है। वर्णों के उद्भव संबंधी तथ्यों को पाणिनि ने तीन प्रकार से बताया है। पहला—शिव के डमरु नाद से चौदह माहेश्वर सूत्रों की उत्पत्ति और उनसे बयालीस या तिरालीस प्रत्याहारों का निकलना। प्रत्याहार में मूल वर्ण नहीं, वर्ण समूह होते हैं। दूसरा—मनुष्य के अन्तःकरण, कायाग्नि और प्राणतंत्र के साथ गायत्री, त्रिष्टुभ् इत्यादि दिक्कालीय छन्दों द्वारा वर्णोद्भव और तीसरा—मनुष्य के उच्चारण तंत्र के आठ स्थानों—उर, कण्ठ, मूर्धा, जिह्वामूल, दंत, नासिका, ओष्ठ और तालु के अनुसार वर्णों का वर्गीकरण। तीसरा तथ्य प्रयोग सिद्ध है, इससे वर्णोद्भव का विषय बोधगम्य हो जाता है। पाणिनि ने मनुष्य शरीर में वर्णों के उच्चारण स्थान को निर्धारित करके व्यक्तिशः उच्चारण की निजी पहचान को चिह्नित कर दिया और उच्चारण संबंधी भाषा की विकृति को नियंत्रित किया। उच्चारण की शुद्धता द्वारा वर्तनी की शुद्धता सुनिश्चित हुई, साथ ही उच्चारण और लेखन में समानता विकसित हुई।

वस्तुतः वर्णों के उद्भव संबंधी इन तीनों में एक ही संरचना अंतर्निहित है। वह संरचना वाक् और वाद्य में समान रूप से व्यक्त होती है और मनुष्य शरीर के प्राण तंत्र से भी। चूँकि पाणिनि को लौकिक और वैदिक दोनों प्रकार की भाषाओं की व्याकरणिक व्यवस्था करनी थी, उन्होंने पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों में व्याप्त वाक् सत्ता की संरचना को आधार बनाया, नौ और पाँच बार बजने वाले शिव के डमरु से ब्रह्माण्ड की वाक् सत्ता को प्रतीकीकृत किया और

देह पिण्ड की वाक् सत्ता को आठ उच्चारण स्थान के अनुसार वर्णों में वर्गीकरण किया। इन दोनों के मध्य आत्मा, बुद्धि, मन आदि अंतःकरण, कायाग्नि, मरुद् का प्राणतंत्र और गायत्री, त्रिष्टुभ् आदि दिक्कालीय छन्दों को सेतु की भाँति प्रयुक्त किया। निश्चय ही यह योगगम्य गंभीर विषय है, फिर भी पाणिनि की व्याकरणिक संरचना पर चर्चा के लिए पाणिनीय शिक्षा में दिए गए इस विषय का संक्षिप्त विवरण आवश्यक है।

पाणिनि के व्याकरण में आठ अध्याय हैं, इसलिए उनके व्याकरण का नाम अष्टाध्यायी है, प्रत्येक अध्याय में चार-चार पद हैं और इसमें लगभग चार हजार सूत्र हैं। यह सम संख्याओं की संरचना है, जैसे वाक् की वेदी हो।

प्रश्न यह है कि पाणिनि ने अपने व्याकरण में आठ अध्याय और उन अध्यायों के चार-चार पद अर्थात् कुल बत्तीस पद क्यों बनाए, क्या इसका कोई आधार है? वस्तुतः वाक् की यह चतुष्पदीय संरचना ऋग्वेद के अस्थवामीय सूक्त में बताई गई वाक् की संरचना पर आधारित है, उसमें वाक् के चार पद हैं — चत्वारि वाक् परिमितापदानि (1.164. 45)। वाक् सदृश्य ज्ञान भी संरचनात्मक है। ज्ञान सूक्त (ऋ. 10. 71) से ज्ञात होता है कि ज्ञान में सोपानिक क्रम है। इसी प्रकार वयन सूक्त (ऋ. 10.130) से पता चलता है कि प्राण तंतुओं की बुनावट वस्त्र के समान है। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि वाक्, ज्ञान और प्राण में समरूप संरचना निहित है और ये तीनों एक समान स्तर में अविभाज्य रूप से रहते हैं। इस वैदिक तथ्य को पाणिनीय शिक्षा भी अपने शब्दों में बताती है। इस ग्रंथ में बताया गया है कि आत्मा, बुद्धि, मन और प्राण की परस्पर सक्रियता से वर्णों का उद्भव होता है, इसी परस्पर सक्रियता में वाक्, ज्ञान और प्राण का अविभाज्य संबंध सिद्ध होता है। वाक्यपदीय में भी यही तथ्य शब्द, बुद्धि और अर्थ बोध के संदर्भ में कहा गया है, यह कि शब्द बुद्धि में सुप्त रहता

है, वह अर्थबोध की इच्छा से प्रकट होता है और शब्द के साथ ज्ञान गूँथे हुए ज्ञान से ही सब कुछ भासित होता है। वाक्यपदीय दैहिक सत्ता में शब्द, बुद्धि और अर्थ का विमर्श करता है, लेकिन वेद वचन द्वारा शब्द को वाक्, बुद्धि को ज्ञान और प्राण को सूर्य की रश्मियाँ बताया गया है। वाक्, ज्ञान और प्राण चराचर जगत में व्याप्त हैं। श्रुति कहती है— तस्य भासा सर्वमिदं बिभाति, अर्थात् उसी परम सत्ता की भाषा सर्वत्र शोभित हो रही है। इसलिए वर्णों की नित्य सत्ता को सूर्य की रश्मियों में निहित माना गया और रश्मि समूह को काल गणना का आधार बनाया गया, जिसे अहर्गण कहा जाता है। अहर्गण में रश्मि और ध्वनि दोनों संयुक्त हैं, वर्ण शब्द रश्मि और ध्वनि दोनों का अर्थ संवाहित करता है।

आज यूरोप के भाषाविद् सार्वभौमिक भाषा व्यवस्था की बात अवश्य कर रहे हैं, लेकिन उनका भाषा विमर्श मनुष्य मस्तिष्क और मनुष्य रचित समाज व्यवस्था, संस्कृति, सभ्यता तक सीमित है, जब कि वाक्, ज्ञान और प्राण प्रत्येक प्राणी में है। कई मनुष्येतर प्राणियों में विशेष ज्ञान है, जो मनुष्य में नहीं है, जैसे कुत्तों में सूँघकर जानने की क्षमता। इसकी जानकारी वैदिक काल में भी थी, प्रसंग आया है कि सरमा नाम की कुतिया ने पणियों द्वारा चुराई हुई गायों को खोज निकाला। सार्वभौमिक भाषा व्यवस्था और उसके नियमों पर विचार करते हुए प्रकृति और प्राणी मात्र को एक साथ लेकर चलना होगा, क्योंकि साहित्यिक रचनाएँ प्रकृति और प्राणियों को आत्मीय भाव से साथ लेकर चलती हैं। इनके प्रतीक, बिम्ब, अलंकार का सृजन नहीं होता। आदि कवि वाल्मीकि या गोस्वामी तुलसीदास जानते हैं कि राम को खग, मृग, मधुकर श्रेणी खोई हुई सीता का पता नहीं बता पाएँगे, न दण्डकारण्य के पर्वत बोलेंगे और न गोदावरी कुछ कहेगी, फिर भी सीता के बारे में राम सबसे पूछते हैं। साहित्य के लोक में यही स्थिति विश्व भर के साहित्य की है।

इसलिए भाषा भी केवल मनुष्य और मनुष्य समाज तक सीमित नहीं रखी जा सकती, तब भाषा विमर्श को वैदिक प्रज्ञान की पृष्ठभूमि में खड़े पाणिनि, पतंजलि और भर्तृहरि जैसे भाषा दार्शनिकों का अनुसरण करना होगा।

यह सच है कि भारतीय भाषा दर्शन से यूरोपीय विद्वानों ने अपनी जिज्ञासा दिखाई। स्वीस भाषाविद् फर्डिनेण्ड डी. सोसोर (1857—1913) ने 1880 में पाणिनीय व्याकरण पर आधारित शोध कार्य किया और यूरोप की ज्ञान परंपरा में संरचनात्मक भाषा विज्ञान नामक ऐसा बहुमूल्य योगदान दिया, जिससे उत्तराधुनिक और उत्तर संरचनावादी विमर्श के विचारक 19वीं शताब्दी से निरंतर प्रभावित हुए। सोसोर ने वाणी और भाषा में अन्तर माना। यह माना कि वाणी में भाषा निहित होती है, भाषा सुसंगत और संरचनायुक्त होती है। प्रत्येक भाषा का व्याकरण होता है, उसके नियम होते हैं, उसके शब्द होते हैं शब्द में ध्वनि होती है। सोसोर ने पूर्व प्रचलित संस्कृत व्याकरण के प्रकृति-प्रत्यय, वाक्य रचना, धातु आदि आधार को ग्रहण किया और अपनी शोध दृष्टि से कार्य किया। पाणिनि के व्याकरण में वाणी और भाषा का अन्तर स्थापित नहीं है। उन्होंने अपने समय की लौकिक और वैदिक दोनों प्रकार की भाषाओं के लिए एक ही अष्टाध्यायी नामक व्याकरण बनाया, लेकिन सोसोर ने वाणी और भाषा में अंतर दिखाया। उन्होंने अपने शोधकार्य में संरचना को विशेष स्थान दिया।

सोसोर ने भाषा की मूल इकाई को संकेत कहा। संकेत स्वेच्छित होता है। जैसे सुन्दर मुख के अर्थ में चन्द्रमा शब्द का उपयोग किया जाता है। यह संकेत मात्र है, वास्तव में मुख और चन्द्रमा एक नहीं है, लाल रंग का अर्थ ठहरना नहीं होता और न हरे रंग का अर्थ जाना, यह एक विशेष प्रयोग है, जिनके अनुसार रास्ते पर गाड़ियाँ ठहरती हैं और जाती हैं। इससे ज्ञात होता है कि शब्द का स्वेच्छित प्रयोग सर्वमान्य विषय है। भारतीय भाषा

चिन्तकों ने शब्द को सर्वार्थक कहा, अर्थात् किसी शब्द को किसी भी अर्थ में प्रयोग किया जा सकता है—‘सर्वेसर्वार्थवाचकाः।’ माना जाता था कि चूँकि शब्द ही प्रतिभा का कारण है, इसलिए शब्द से विभिन्न प्रकार के अर्थ उत्पन्न होते हैं। संकेत के विषय में पातंजल भाष्य में कहा गया है कि शब्द और अर्थ का पारस्परिक अध्यास ही संकेत है—‘संकेतस् पद-पदार्थयोर् इतरेतराध्यसरूपः।’ अध्यास का सामान्य अभिप्राय आरोप है, शब्द पर जैसा अर्थ आरोपित कर दिया गया, शब्द से उस अर्थ का संवाहन होने लगा। बहुधा मुक्त दशा में शब्द को पद कहा जाता है। पद ही अन्य शब्दों के साथ प्रयुक्त होकर अर्थ वाहक शब्द हो जाता है। किसी अकेले शब्द से अर्थ वहन नहीं होता, जब तक उसे अन्य शब्दों के अर्थ बाधित करते। एक शब्द को अन्य शब्दों की संगति से मिला हुआ अर्थ सृजित होता है। जैसे मुख की सुन्दरता को संकेतित करने के लिए चन्द्रमा का आरोप हुआ, चन्द्रमा संकेतक है और मुख संकेत। वाक्य रचना से व्यक्त अर्थ के स्तर पर किए गए इस विचार को सोसोर ने व्यापक बनाया। उन्होंने भी कहा है कि किसी शब्द का अकेले कोई अर्थ नहीं होता, दूसरे शब्दों के साथ ही अर्थ बनता है।

सोसोर की विश्लेषण की पद्धति और संरचनात्मक भाषा विज्ञान को आधार बनाकर लेवी स्ट्रॉस ने नृतत्वशास्त्र का अध्ययन किया। लेवी स्ट्रॉस के लिए संकेत एक व्यक्ति के सदृश्य है, जो सामाजिक संबंधों में नए-नए अर्थ ग्रहण करता है, कहीं पुत्र, कहीं भाई, कहीं चाचा इत्यादि। जैसे व्यक्ति भी वाक्य में प्रयुक्त कोई शब्द हो। इस विमर्श में एक उक्ति प्रचलित हुई कि अकेली रेखा के विषय में नहीं कहा जा सकता कि वह कैसी है, लंबी या छोटी, पतली या मोटी, जब तक उसके पास कोई दूसरी रेखा नहीं खींची जाती। एक रेखा के अर्थ को समझने के लिए दूसरी रेखा आवश्यक है। नृतत्वशास्त्री लेवी स्ट्रॉस का यह द्विपदीय प्रयोग (बाइनरी टर्म) बहुचर्चित हुआ।

इस तरह भाषा की संरचना समाज की संरचना के अध्ययन का उपकरण बन गई, भाषा और समाज एकीकृत हुए।

लेवी स्ट्रॉस के बाद सोसोर के संरचनात्मक भाषा विज्ञान की अगली कड़ी के रूप में विखण्डन के पक्षधर उत्तर संरचनावादी विचारक जॉक दरिदा का नाम जुड़ता है। जैसे सोसोर ने वाणी और भाषा का अंतर किया था, दरिदा ने भाषा और लेखन का अंतर किया। उनका मानना था कि उत्तर संरचनावाद में भाषा से अधिक महत्वपूर्ण लिखित सामग्री होती है। जैसे संरचनावाद में शब्द का अर्थ अकेले शब्द में नहीं, अन्य शब्द के संबंधों में होता है, वैसे ही उत्तर संरचनावाद में लिखित सामग्री से बने विमर्श का अर्थ भी दूसरे विमर्शों के संबंध में होता है। विमर्शों के क्षेत्र में भी शब्दों के परस्पर संबंध से निकलनेवाले अनेक अर्थ की तरह, परस्पर संबंध से अनेक विमर्शों की शृंखला बनती जाती हैं। लेवी स्ट्रॉस के संरचनात्मक चिन्तन भी नातेदारी की शृंखला दिखाई देती है।

दरिदा ने पाठ को विमर्शों का पुलिंदा कहा। उसके विश्लेषण के लिए विखण्डन की विधि बनाई। उनकी दृष्टि में समाज की रीति-नीति पूर्व निर्धारित पाठ की तरह है, जिसे किसी मान्य लेखक ने लिखा और समाज मानस में भर दिया। इस तरह की पूर्व निर्धारित धारणाओं पर चलने वाले समाज जीवन को दरिदा निर्मम थिएटर कहते हैं और वैकल्पिक थिएटर की परिकल्पना देते हुए कहते हैं कि ऐसा थिएटर होना चाहिए, जिसमें दृश्य और चरित्र विकेंद्रित हों, पात्र अपने संवाद और अभिनय के लिए स्वाधीन हों। निर्मम थिएटर के विखण्डन से दरिदा का अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि वे परतंत्रता के विरुद्ध स्वाधीन

और प्रसन्न समाज जीवन की अपेक्षा करते हैं। वस्तुतः भाषा, मनुष्य-मस्तिष्क, ज्ञान, शक्ति और समाज जीवन का अभिन्न अंग हैं।

यूरोप के चिन्तन पर संरचनात्मक भाषा-विज्ञान का व्यापक प्रभाव पड़ा, भौतिक चिन्तन को स्थूलता से मुक्ति मिली। मार्क्सवाद का भी न्यू मार्क्सवाद सिद्धान्त सामने आया। न्यू मार्क्सवादी विचारकों में एक है हेबरमॉस। इस विचारक को इसलिए महत्व दिया जाना चाहिए कि इसने भाषा के व्याकरण की तरह सार्वभौमिक ज्ञान और सार्वभौमिक नैतिकता के नियम बनाने की बात उठाई। हेबरमॉस का यह विचार नोम चोम्स्की की भाषा संबंधी धारणा से प्रेरित है। चोम्स्की ने तर्क दिया था कि भाषा को प्रयोग में लाकर सार्वभौमिक नियम बनाए जा सकते हैं। मनुष्य के मस्तिष्क में जिस तरह की जैविकीय संरचनाएँ होती हैं, समाज में वैसी ही संरचनाओं का निर्माण होता है। हेबरमॉस ने चोम्स्की के विचार को संस्कृति के संदर्भ में लिया और सांस्कृतिक तत्त्वों का विश्लेषण किया। वैश्वीकरण के दौर में भाषा और संस्कृति के साथ तर्कसंगत संप्रेषण पर हेबरमॉस के कार्य को महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए, क्योंकि वह ज्ञान को वरीयता देता है, मानता है कि ज्ञान ही मनुष्य को पशु समाज से अलग एक विशिष्ट पहचान देता है।

सोसोर के संरचनात्मक भाषा विज्ञान से आरंभ हुई यह ज्ञान यात्रा अपेक्षा करती है कि जिस पाणिनि से सोसोर ने भाषा का दर्शन प्राप्त किया, उसपर सार्वभौमिक ज्ञान, नैतिकता और विश्व भर की भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला व्याकरण बनना चाहिए, निश्चय ही भारतीय मनीषा के इस वैश्विक योगदान से विश्वमानस में नई ज्योति जगमगा उठेगी।

**pramod.d96@gmail.com**

# विचार—दर्शन

— डॉ. भुवनेश्वर दूबे  
मिर्जापुर, भारत

जीवन जब से आरंभ हुआ, तभी से सभी प्राणियों ने अपने मतानुसार जीवन को जीने की कलात्मकता को बनाते हुए एक नए आयाम द्वारा सृजनशीलता के लिए प्रयत्न किया। सभी प्राणियों में मनुष्य को छोड़कर अन्य के बारे में गहन विचार करने पर ही कुछ तथ्य सामने आ सकते हैं। किसी भी वाद एवं सिद्धांत का कोई मूल तथ्य नहीं होता, क्योंकि किसी भी चीज़ की प्रामाणिकता तभी सिद्ध होती है, जब उसे स्वीकार किया जाए। मानव हमेशा अपने मतानुसार वाद—सिद्धांत, नियम अनुलोम—विलोम, आरोह—अवरोह, सुख—दुख, लाभ—हानि इत्यादि को स्वीकार करता है। एक ही समय में एक ही क्षण कोई मनुष्य दुखी होता है और कोई मनुष्य सुखी होता है। सुखी और दुखी होने का मतलब अहसास होना है, जिसको सुख का अहसास होता है, वह सुखी होता है और जिसको दुख का अहसास होता है, वह दुखी होता है। मानव—मन दृश्यमान जगत में सभी पदार्थों अथवा अवयवों का स्वादी होता है। मन के कारनामे बहुत अनोखे होते हैं। हम सोचते हैं कि, जिसके पास प्रभुत्व है, वह सबसे बड़ा और सुखी है, लेकिन मुझे लगता है कि एक अल्हड़ आदमी, जिसे प्रभुत्व से कोई मतलब नहीं होता, प्रकृति में निवास करते हुए अपने को सबसे बड़ा सुखी मानता है, बल्कि यह कहें कि उसे सुख—दुख के ज़्यादा अहसास नहीं होते। ज़रूरी नहीं है कि प्रभुत्वशाली व्यक्ति सुख की अनुभूति करे। अनुभूति करना तो मन का कार्य है। स्वीकारात्मक प्रवृत्ति द्वारा मनुष्य हमेशा से ही किसी अवयव को प्रामाणिक मान लेता है।

जब मनुष्य के अनेक वाद—सिद्धांत इत्यादि

प्रस्तुतीकरण में होते हैं, तो मनुष्य को प्रामाणिकता की आवश्यकता होती है। जहाँ पर स्वीकार की स्थिति सबसे ज़्यादा सामने आती है, उसी को प्रामाणिक मान लिया जाता है। मनुष्य ने ही अपने वाद सिद्धांत इत्यादि को स्वीकार करवाने हेतु अथवा मनवाने हेतु प्रामाणिकता का निर्माण किया है। पक्ष—विपक्ष इत्यादि द्वैतात्मक प्रवृत्तियों द्वारा सबसे ज़्यादा जिस पक्ष में स्वीकार करने की प्रवृत्ति होती है, अर्थात् अधिक लोगों द्वारा जो चीज़ स्वीकार की जाती है, उसे हम प्रामाणिक मान लेते हैं, जबकि सत्य की कसौटी पर प्रामाणिकता का मतलब सत्य स्वानुभूति से होता है। प्रामाणिकता का कोई आकार—विकार—प्रतिकार होता ही नहीं है। उसे तो अपने वाद एवं सिद्धांतों को सिद्ध करने के लिए बनाया गया है। ज़रूरी नहीं है कि अदालत में न्याय की कुर्सी पर बैठा न्यायाधीश न्याय करता ही हो, क्योंकि वह प्रामाणिकता पर न्याय करता है। अन्याय पक्ष से सहमति अधिक मिलने पर ही न्यायाधीश अन्यायी पक्ष को ज़बरदस्ती न्यायिक पक्ष बनाकर, उसी को अपनी संस्तुति प्रदान कर देता है, क्योंकि जिसे वह सबूत कहता है, वह सिर्फ किसी के पक्ष और किसी के विपक्ष स्वीकारात्मक प्रवृत्ति होती है। सबूत अथवा प्रमाण सबसे ज़्यादा स्वीकारात्मक प्रवृत्ति के द्वारा सिद्ध होता है, जो कहीं से भी तथ्यपरक नहीं है। मानव हमेशा हर चीज़ अपने ही पक्ष में स्वीकार करना चाहता है। उसके अन्दर सब कुछ होते हुए भी मोहात्मक अथवा लोभात्मक प्रवृत्ति कहीं न कहीं उसे अपनी आगोश में बाँध लेती है, फलतः मनुष्य उन प्रवृत्तियों में बँधकर वही कार्य करता है, जो वे प्रवृत्तियाँ कहती हैं।



यह संभवतः मन की उड़ान होती है। इसीलिए हमेशा मस्तिष्क की डोर से मन को नियंत्रित करना आवश्यक होता है। किसी कार्य को करने से पहले मस्तिष्क से विवेक का प्रयोग किया जाए, तो अंशतः कार्य सही होने का अवसर प्राप्त होता है। विवेक का तात्पर्य है कि सही—गलत का विचार करना, लेकिन यह जरूरी नहीं है कि हमारी दृष्टि में जो सही है, वह दूसरों की दृष्टि में भी सही हो। सब की मानसिकता अलग—अलग होती है।

सभी अपने मत अथवा विचार की सिद्धि चाहते हैं। वस्तुतः जिस कार्य अथवा व्यवहार से किसी को दुख न हो, उसे ही सही समझकर कार्य प्रवृत्ति में रत होना चाहिए। परिवार में एक साथ बहुत से लोग रहते हैं। कुछ बातों में सबकी राय एक होते हुए भी सभी के विचार में आंतरिक रूप से अंशतः संदेहास्पद स्थिति बनी ही रहती है, क्योंकि कहीं—कहीं उस जगह अपनत्व यानी अपने बारे में मोहात्मक प्रवृत्ति हावी हो जाती है, तो हमारा विचार एक रहते हुए भी आन्तरिक से भ्रमात्मक एवं संदेहात्मक होता है। वह हमेशा अपने विचार अथवा सिद्धांत को ज्यादा प्रामाणिक तथा दूसरे के विचार अथवा सिद्धांत को गौण प्रामाणिक बनाने के इच्छुक रहते हैं। यानी जो कुछ हम कह रहे हैं, वही सही है, यह कहना मात्र दम्भी स्वभाव को दर्शाता है तथा सच्चाई को न स्वीकार करने की स्थिति से अवगत कराता है। हमारे कहने और करने से यदि किसी को नुकसान नहीं होता, सभी को लाभ होता है, तो उसे स्वीकृति दे देनी चाहिए और उसे ही सच की श्रेणी में ग्रहण करना चाहिए। हमारी प्रवृत्ति अनुकरणात्मक है। हम हमेशा नए तथ्यों का निर्माण नहीं करना चाहते हैं और कभी करने का प्रयास भी करते हैं, तो कहीं—कहीं हमारी मोहात्मक प्रवृत्तियाँ उस पर हावी हो जाती हैं। हम अपने बारे में सोचकर ही यानी अपना लाभ जिसमें हो, वही निर्माण करने के आदती हो जाते हैं। विश्व में ऐसे कोई प्रमाण नहीं मिलते कि किसी ने कोई

निर्माण अपने नुकसान के लिए और दूसरों के फायदे के लिए किया हो। यह अलग बात है कि अपने द्वारा अपने हित में किया गया निर्माण प्रयोग करने पर भले ही हमारा नुकसान कर दे, उसे केवल संयोग मात्र समझा जा सकता है।

एक माता—पिता जब अपने परिवार अथवा बच्चों का पालन—पोषण करता है, तो निःस्वार्थ भाव से कार्य प्रवृत्ति में रत रहते हुए भी उसके अन्दर अंशतः यह भाव निश्चित रूप से रहता है कि जब कभी हम अशक्त या कमजोर होंगे, तो हमारा परिवार अथवा हमारे बच्चे, हमारे सहायक बनेंगे। यह अलग बात है कि बाद में चलकर भले ही उनके परिवार अथवा बाल—बच्चे उनके सहायक न बने। मसलन अत्यधिक मात्रा में सोच यही होती है। हमारे मन में जीवन के प्रारंभ होने पर ही, हमारी पारिवारिक सोच हमारे कोमल मन पर हावी होने लगती है। उसी समय हमें बता दिया जाता है कि कौन हमारा अपना है और कौन पराया और इसे व्यवहार द्वारा निरावाहन करके दिखा भी दिया जाता है। हम उनका अनुकरण कर लेते हैं और उसे अपने मन—मस्तिष्क में भर लेते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि बचपन से ही जो हमारा सहायक होता है अथवा जो हमारे साथ रहता है, उसे स्वाभाविक रूप से हम अपना समझते हैं। हमें जन्म देने वाली और हमारा पालन—पोषण करने वाली माँ हमेशा हमारे साथ रहती है और वह जिस ढाँचे हमें ढालती है, हम उसी ढाँचे में ढल जाते हैं। यह बात अलग है कि बाद में हमारे ऊपर भले ही पारिवेशिक प्रभाव पड़े। हमारे सामने परिवार हमेशा रहता है तथा दूसरे प्राणी या मनुष्य हमसे बाद में परिचित होते हैं, इसलिए निजत्व और परत्व का बोध हमें जन्म के पश्चात् ही होने लगता है। स्व का भाव हम जन्म से ही अपने आप में समाहित करते हैं, इसीलिए हमारे मन—मस्तिष्क में स्वत्व और परत्व यानी अपने और पराये का भाव जागृत होता है। जबकि सच की कसौटी पर यदि कसा जाए,



तो स्व यानी अपनेपन से भी विरक्ति जरूर होती है। हम भ्रमित होकर मोह को ही प्रेम का दर्जा देते हैं, जबकि यह सही नहीं होता।

मानव मन परिवर्तन का आकांक्षी अथवा स्वादी होता है। जब तक एक स्त्री और पुरुष वासनात्मक प्रेम को प्राप्त करने के प्रयास में लगे रहते हैं, तब तक उनके अन्दर एक दूसरे के प्रति लगाव अथवा रोचकता का भाव बना रहता है, लेकिन जैसे ही दोनों के वासनात्मक प्रेम का मिलन भोग में परिवर्तित होकर शिथिलावस्था को प्राप्त करता है, उन्हें परस्पर विरक्ति हो जाती है। इसीलिए जगत् का स्वरूप हमेशा प्रतिपल-प्रतिक्षण परिवर्तित होता रहता है, क्योंकि सभी प्राणियों को हमेशा नवीनता की अपेक्षा अथवा आवश्यकता महसूस होती है। सृष्टि का मतलब ही सहयोजन अथवा सहयोग है। सहयोग का मतलब सभी का आपस मिलाव है। यदि सभी प्राणी मिलजुलकर पृथ्वी पर निवास न करें, तो प्राकृतिक संतुलन बिगड़ जाएगा। जीवन प्रक्रिया विश्व पटल पर बिना सहयोग के नहीं चलती, जो जिस अवस्था और परिवेश में पलता है, उसे उसी समय की सारी गतिविधियाँ अथवा परिस्थितियों में रहना होता है। मनुष्य के अन्दर सारी भावनाएँ सुषुप्तावस्था में विराजमान रहती हैं, जैसे ही उन भावनाओं को अनुकूल अवसर प्राप्त होता है, वे जागृत हो जाती हैं और अपना प्रभाव तथा स्थान ग्रहण कर लेती हैं और मनुष्य उन भावों के वशीभूत होकर कार्य प्रवृत्ति में लग जाता है। श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, ममता, दया, करुणा, परोपकार इत्यादि भाव हमारे अन्दर ही समाहित होते हैं। इनको जागृत करने के लिए किसी न किसी माध्यम की आवश्यकता होती है। जैसे मूर्ति पूजा का मतलब ही होता है कि एक साकार स्वरूप के माध्यम से अपने श्रद्धा-भाव को जगाना। अगर मनुष्य की श्रद्धा यथार्थ में जागृत हो जाए, तो उसके अन्दर की आत्मा निश्चित रूप से मूर्ति के अन्दर दिखाई पड़ सकती है, जिसे अपना

वह आराध्य समझकर उसकी पूजा करता है।

श्रद्धा-भाव का जागृत होना भी ज्ञान दशा कहलाती है। जब अपनी आत्मा का प्रतिरूप किसी और में दिखाई पड़ने लगता है, तो उसी को हम परमात्मा की संज्ञा से संबोधित कर सकते हैं। जैसे यदि मनुष्य की दृष्टि न हो, तो क्या शीशे में अपने मुखड़े को देखा जा सकता है? यानी चेहरा दर्पण नहीं, बल्कि अपनी ही दृष्टि देखती है, दर्पण तो निमित्त मात्र होता है और कहीं भी कोई चमकीली वस्तु हो, अगर दृष्टि है, तो जरूर उसे देखा जा सकता है, लेकिन दृष्टिहीनता की स्थिति में हजारों दर्पणों का प्रयोग करने के बाद भी चेहरा नहीं देखा जा सकता, उसी प्रकार से यदि हमारी आत्मा ही न हो, तो क्या हम सभी भावों अथवा जिसे परमात्मा कहते हैं, उसे पहचान सकते हैं? यानी अपने मन अथवा हृदय द्वारा ही हम किसी भी तथ्य की अनुभूति करते हैं। यदि मनुष्य का हृदय न हो तथा उसमें अहसास न हो, तो हमें किसी भी चीज़ की अनुभूति नहीं होगी, फलतः हम जड़वत रहेंगे जैसे पत्थर जड़वत होता है। इसीलिए भावों के उद्वेलन तथा अनुभूति के लिए हृदय का निर्माण किया गया और उसी में पूरी सृष्टि रची-बसी है। शरीर के क्षय होने के पश्चात् आत्मा कहाँ जाती है, किसी को पता नहीं, लेकिन जब तक शरीर में आत्मा का निवास है, तभी तक वह अपनी अनुभूति द्वारा सभी के दर्शन कराती है। आत्मा के लिए शरीर का होना भी आवश्यक है, क्योंकि यदि शरीर नहीं रहेगा, तो उसका रहस्य खत्म हो जाएगा, इसीलिए आत्मा ने अपने को शरीर में छिपाया है, जबकि स्थिति यह है कि शरीर का संचालन भी आत्मा मस्तिष्क द्वारा करवाती है। शरीर की सारी बागडोर आत्मा के हाथ में ही होती है। जब शरीरापात हो जाता है, तो आत्मा रहस्यमय रूप से उसे छोड़कर चली जाती है, या यूँ कहें कि जैसे ही आत्मा शरीर को छोड़कर चली जाती है, वैसे ही शरीर का क्षय हो

जाता है। बिना आत्मा के शरीर रह ही नहीं सकता। इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि शरीर का महत्व नहीं है। आत्मा की उपस्थिति में शरीर का होना नितांत आवश्यक है, क्योंकि उसके रहस्य को शरीर ही ढकता है। आत्मा यानी सम्पूर्ण भावों की अनुभूति करने वाली जो होती है। आत्मा उसे कहा जा सकता है, जो सम्पूर्ण प्राणियों में समाहित अनुभूति के रूप में कार्यरत रहती है। वह सुख-दुख, लाभ-हानि, जय-पराजय, जन्म-मरण इत्यादि सारे द्वैतों का स्वादी होता है, अर्थात् सभी परिस्थितियों और गतिविधियों तथा सम्पूर्ण रसों का निर्माण करने वाली तथा उसका आस्वाद लेने वाली आत्मा ही होती है। आत्मा की संतुष्टि दशा ही समाधि की स्थिति होती है और उसे ही सभी से अलग मुक्तावस्था कहा जा सकता है। अच्छा-बुरा इत्यादि का विवेचन वही करती है। मनुष्य कभी-कभी इसी के वशीभूत होकर गलत कार्य में भी लग जाता है। ज़रूरी नहीं है कि जिस कार्य के प्रति हमारी दृष्टि प्रतिकूल होती है, उस कार्य में सभी की दृष्टि प्रतिकूल हो। कार्य करने की दृष्टि हमेशा उस कार्य को अनुकूल मानती है तभी तो उस कार्य में वह लग जाता है। मनुष्य अपने अन्दर विराजमान दोषों अथवा असद् गुणों का निवारण करने की अपेक्षा उनको और भी परिपुष्ट बनाने में लग जाता है, क्योंकि वे दोष अथवा असद् गुण उसके लिए दोष और असद् गुण नहीं होते, बल्कि वे उसे स्वाभाविक रूप से उपयोगी और अनुकूल प्रतीत होते हैं, इसीलिए वह ऐसे कार्यों में लग जाता है।

मनुष्य के अन्दर अच्छे अथवा बुरे भाव आते-जाते हैं और निश्चित रूप से वह इन भावों का आकलन भी करता है, लेकिन लोभात्मक प्रवृत्ति में फँस जाने की वजह से मनुष्य अच्छाई को त्यागकर, बुरा मार्ग ग्रहण कर लेता है। उदाहरण के लिए एक ही माता-पिता से उत्पन्न संतान अलग-अलग एवं भिन्न विचारों की रहती हैं। जब भी किसी कार्य

प्रवृत्ति में एक साथ लगने के लिए उन्हें कहा जाए, तो वे अपने विभिन्न विचारों के माध्यम से लगती हैं। इसीलिए कार्य के प्रतिफल में भी भिन्नता आ जाती है। उनमें से किसी का कार्य उत्तम तथा किसी का कार्य निम्न श्रेणी में दिखाई पड़ता है, लेकिन निम्न श्रेणी का कार्य करने वाला भी अपने ही कार्य का पक्षधर होता है, वह भले ही लोगों द्वारा स्वीकृत किसी कार्य को उत्तमता की कसौटी पर सही मान ले, लेकिन अन्दर की भावना से वह अपनी ही कार्य प्रवृत्ति के पक्ष में रहता है।

जब मनुष्य को किसी कार्य को करने पर सफलता मिलती है, तो निश्चित रूप से मनुष्य को आत्मबल प्राप्त हो जाता है। अच्छा कार्य करने से जो आत्मबल प्राप्त होता है, बुरा कार्य करने से आत्मबल में कहीं न कहीं सन्देह और भ्रम का बोलबाला होता है। हमें यह सोचना चाहिए कि सदैव अच्छा करने से ही आत्मबल बढ़ता है, बुरा कार्य करने से नहीं। लोभ बल, अनाचार बल इत्यादि निश्चित रूप से पतन की ओर उन्मुख करता है। कहने का मतलब यह है कि मनुष्य को अपना लाभ देखते हुए दूसरों के अधिकार को छीनना नहीं चाहिए, क्योंकि ऐसा करने पर मन को अशांति मिलती है और उस अशांति के परिणामस्वरूप मनुष्य के अच्छे कर्म में भी त्रुटि आ जाती है। इसीलिए कभी भी किसी को अशांति प्रदान नहीं करनी चाहिए। ज़रूरी नहीं है कि सभी को हम संतुष्टि प्रदान कर सकें, क्योंकि संतुष्टि भी मन से सम्बंधित है, लेकिन जितने को हम संतुष्टि प्रदान कर सकते हैं, उतने को तो ज़रूर करना चाहिए। सभी का मन-मस्तिष्क और विचार अलग-अलग होता है, इसलिए कोई भी कार्य जो हमारे लिए सकारात्मक होता है, वही हो सकता है कि दूसरों के लिए नकारात्मक हो, क्योंकि हमारे सोचने-विचारने के पहलू नकारात्मक या सकारात्मक होते हैं। मनुष्य के अन्दर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों विचार रहते हैं। वह नकारात्मक विचार द्वारा सकारात्मक

पहलू को देखता है और सकारात्मक विचार द्वारा नकारात्मक परिणाम को देखता है।

मानव मन विविध प्रकार का आस्वादी होता है, इसलिए हमेशा वह गतिमान रहता है। संसाधन से पूर्ण व्यक्ति का मन ज़्यादा गतिशील होता है, क्योंकि वह विलासिता से युक्त होता है। इसकी अपेक्षा गरीब व्यक्ति का मन अधिक गतिमान इसलिए नहीं होता, क्योंकि वह संसाधनों से हीन होता है और हमेशा आवश्यकता की पूर्ति में अपने मन—मस्तिष्क को लगाए रहता है। अभावग्रस्तता मन की चंचलता पर रोक लगा देती है, इसे चाहे लाचारी कहें या विवशता। वैसे मेरे अनुसार लाचारी अथवा विवशता स्वयं मनुष्य ग्रहण करता है अथवा करवाता है, क्योंकि जो लाचार होता है, उसे पता रहता है कि क्यों वह लाचार है और पता रहने पर भी वह अपनी कमज़ोरी को दूर नहीं करता, लाचार बना रहता है। मनुष्य का कर्म ही उसे लाचार या विवशता की श्रेणी में लाता है और दूसरी बात यह है कि कभी—कभी मनुष्य शोषित होने पर विरोध नहीं करता। उसका विरोध न करना भी, शोषण को न्यौता देना है। उत्थान—पतन के आरोह—अवरोह में जीवन चक्र हमेशा चलता है।

मनुष्य जब से जन्म लेता है, तभी से अपने शरीर के पोषण में लग जाता है और आजीवन शरीर के पोषण में ही लगा रहता है। चाहे वह पोषण अपना हो या अपने से सम्बंधित लोगों का। शरीर के सभी भाव अवसरानुकूल आते—जाते रहते हैं। इसीलिए मनुष्य की चित्तवृत्ति हमेशा एक जैसी नहीं होती। समय कभी नहीं बदलता, मनुष्य की परिस्थितियों और कार्य करने की प्रवृत्ति में बदलाव होता है। मनुष्य अपनी परिस्थिति और कार्य करने की प्रवृत्ति—बदलाव को समय के बदलाव पर थोप देता है। आदिकाल में मनुष्य के पास संसाधन कम रहे होंगे, जिसके चलते वह प्रकृति में निवास करता रहा होगा। इसी से प्रकृति के सेवन से वह ज़्यादा ताकतवर रहा होगा।

इसीलिए पुरानी कथाओं और गाथाओं में ऐसा सुना जाता है कि मनुष्य अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए हमेशा से छल—प्रपंच करता आया है, लेकिन ऐसे भी मनुष्य इस जगत में उत्पन्न हुए हैं, जो सर्वथा इससे दूर रहने का प्रयत्न करते रहे। घर—परिवार, रिश्ते—नाते सब अपने अवसरानुकूल बनते रहते हैं और बिगड़ते रहते हैं। इसका कारण यह है कि हमेशा से ही मनुष्य ही मनुष्य का द्रोही होता है और द्रोह की उत्पत्ति अपने कार्य की सिद्धि के लिए होती है। छल—प्रपंच द्वारा मनुष्य को लगता है कि उसके कार्य की सिद्धि होती है, लेकिन यह सोचना भूल है। छल—प्रपंच द्वारा मनुष्य की कार्य प्रवृत्ति क्षीण होती है, जिनके अन्दर कमियाँ होती हैं, वही छल—प्रपंच ज़्यादा करते हैं। अपनी कमियों को छिपाने के लिए छल—प्रपंच करना, जीवन को प्रतिकूल दिशा में झोंकना होता है। यह विचारणीय है कि सभी मनुष्य के शरीर में जितने भी भाव हैं, वे सुप्तावस्था में होते हैं और अवसर पाने पर वे भाव स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं, इसीलिए कहा जाता है कि कोई भी कार्य करने से पहले सोच—विचार अवश्य करना चाहिए। भाव की उत्पत्ति के पश्चात् किसी को मेरे द्वारा दुख न हो अथवा मेरे कार्य से किसी को दुख अथवा पीड़ा न पहुँचे, इस भाव का आना नितांत आवश्यक है।

कभी—कभी मनुष्य अच्छा कार्य भी करता है, तो उसके कार्य को देखकर अथवा सुनकर कुछ मनुष्यों को ईर्ष्या अथवा जलन होती है। ईर्ष्या भाव रखना भी अपनी क्षीणता को प्रकट करना है। जिस मनुष्य के अन्दर किसी कार्य—प्रवृत्ति में लगने की ताकत नहीं होती है, तो वह ईर्ष्या भाव प्रकट करता है और दूसरे शक्तिशाली मनुष्य को भी अपने जैसा बनाने का प्रयत्न करता है। इन सब विचारों में भी कहीं न कहीं लोभ—मोह की प्रवृत्ति होती है, जिसके वशीभूत होकर मनुष्य कार्य करता है। ईर्ष्या भाव के उत्पन्न होने पर मनुष्य के अन्दर क्रोध उत्पन्न होता है और

वह क्रोध के वशीभूत होकर बुरे कर्मों को करने पर उतारू हो जाता है, अर्थात् जो मनुष्य अच्छा कर्म कर रहा होता है, उस मनुष्य को अच्छा कर्म करने से रोकने तथा उसे दुख पहुँचाने का प्रयत्न ईर्ष्या भाव रखने वाला मनुष्य करता है। इसी भाव के कारण मनुष्य का स्वतः पतन हो जाता है। वेदों में तो मानसिक रूप से अर्थात् मन में गलत सोचना भी पाप का कारण बताया गया है। पाप-पुण्य की दशा-दिशा हरेक मानव स्वयं ही निश्चित करता है तथा उसका निर्माणकर्ता और भोगी भी वह स्वयं ही होता है।

मनुष्य जिस किसी के बारे में जिस तरह की दृष्टि या सोच रखता है, मनुष्य के लिए वह चीज़ उसी की दृष्टि के अनुसार होती है। सुन्दरता मनुष्य की दृष्टि अथवा विचार में निहित होती है। सुन्दरता का कोई पैमाना नहीं होता है। सुन्दरता तो भावात्मक होती है। जिस किसी के बारे में अच्छा सोचा जाता है, वह अच्छा होता है और जिसके बारे में अच्छा नहीं सोचा जाता, वह बुरा होता है। अच्छा और बुरा होना सिर्फ एक मात्र दृष्टि का विकारित स्वरूप है। वस्तुतः जो आदर्श अथवा यथार्थ हो तथा जिसके द्वारा अधिकांशतः कल्याणकारी स्थिति उत्पन्न हो, वह अच्छाई की श्रेणी में रखा जा सकता है अथवा जिसके द्वारा हृदय आह्लादित हो,

उसे अच्छी अनुभूति कहा जा सकता है। रसात्मकता सबके अन्दर किसी न किसी रूप में निहित होती है। अपनी इन्द्रिय ही सुख अथवा दुख प्रदान करती है, यह बात अलग है कि माध्यम कोई अन्य बन जाए। पुरुष और स्त्री की संयोगावस्था में पुरुष और स्त्री एक दूसरे के रसात्मकता अथवा आनंद को उत्पन्न करने के माध्यम मात्र होते हैं, जबकि रसात्मकता अथवा अनुभूति-स्वाद तो स्वयं की इन्द्रिय ही प्रदान करती है। अहसास इन्द्रिय उत्तेजन में प्रमुख भूमिका का निर्वहन करता है। अहसास प्राप्ति के निमित्त को मनुष्य हमेशा कस्तूरी की भाँति ढूँढता रहता है, जबकि अहसास का निवास उसके अंतर्हृदय में होता है। मनुष्य को जब भी कोई अनुकूल माध्यम मिल जाता है, तो उसका अहसास अपने-आप जाग जाता है। अहसास के जग जाने पर मनुष्य अपनी इन्द्रियों द्वारा स्वानुभूति करता है और आनंद की चरमावस्था प्राप्त करने का प्रयास करता है। संसार में जितने भी रिश्ते-नाते होते हैं, वे सभी, जीवन में अहसास-स्वाद के सहायक होते हैं, जिससे मनुष्य अपना स्वाद परिवर्तित करते हुए जीवन व्यतीत करता है। भोग की प्रवृत्ति मनुष्य को जन्म से ही प्राप्त हो जाती है। यह बात अलग है कि भोगने की दशा-दिशा अलग-अलग कर्मों के अनुसार होती है।

**bh.dubey13@gmail.com**

## भारतीय संस्कृति

— सुश्री अनुराधा बुद्धिनाथ  
बेल एर रिव्थेर सेश, मॉरीशस

मनुष्य की अमूल्य निधि उसकी संस्कृति है। संस्कृति एक ऐसा पर्यावरण है, जिसमें रहकर व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी बनता है तथा प्राकृतिक पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता अर्जित करता है। अतः भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वाधिक

प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृति है। इसे विश्व की सभी संस्कृतियों की जननी कहा जाता है। जीने की कला हो या विज्ञान अर्थात् राजनीति का क्षेत्र, भारतीय संस्कृति का सदैव विशेष स्थान रहा है। अन्य देशों की संस्कृतियाँ समय की धारा के साथ-नाथ नष्ट

होती जा रही हैं। परन्तु भारत की संस्कृति आदि काल से ही अपने परम्परागत अस्तित्व के साथ अजर-अमर बनी हुई है।

यह ध्यान देने योग्य है कि विश्व के सभी क्षेत्रों और धर्मों के अपने रीति-रिवाजों, परम्पराओं तथा परिष्कृत गुणों के साथ अपनी संस्कृति है। भारतीय संस्कृति स्वाभाविक रूप से शुद्ध है, जिसमें प्रेम, सम्मान, दूसरों की भावनाओं का मान-सम्मान एवं अहंकार रहित व्यक्तित्व अन्तर्निहित है। भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्वों, जीवन मूल्यों तथा वचन पद्धति में एक ऐसी निरन्तरता रही है कि आज भी करोड़ों भारतीय स्वयं को उन मूल्यों और चिन्तन प्रणाली से जुड़ा हुआ महसूस करते हैं, अर्थात् इससे प्रेरणा प्राप्त करते हैं। प्रसिद्ध मानव विज्ञानी 'मैलिनोव्स्की' के अनुसार "मानव जाति की समस्त सामाजिक विरासत या मानव की समस्त संचित सृष्टि का ही नाम संस्कृति है।" नृविज्ञान इस मानव द्वारा निर्मित कृत्रिम जगत् को ही संस्कृति की संज्ञा देता है।

'अनेकता में एकता' सिर्फ कुछ शब्द नहीं, बल्कि यह एक ऐसी चीज़ है, जो भारत जैसे सांस्कृतिक तथा विरासत में समृद्ध देश पर पूरी तरह लागू होती है। अतः भौगोलिक दृष्टि से भारत विविधताओं का देश है, फिर भी सांस्कृतिक रूप से एक इकाई के रूप में इसका अस्तित्व प्राचीनकाल से बना हुआ है। इसके अतिरिक्त भारत में आर्थिक एवं सामाजिक भिन्नता भी पर्याप्त रूप से विद्यमान है। इन भिन्नताओं के कारण ही भारत में अनेक सांस्कृतिक उपधाराएँ विकसित होकर पल्लवित और पुष्पित हुई हैं। इनके बावजूद भी भारत की पृथक सांस्कृतिक सत्ता रही है। बड़ों के लिए आदर अर्थात् श्रद्धा भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। बड़े खड़े हैं, तो उनके सामने न बैठना, बड़ों के आने पर स्थान छोड़ देना, उनको खाना पहले परोसना जैसी क्रियाएँ अपनी दिनचर्या में प्रायः दिखाई देती हैं, जो हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है।

और तो और सभी बड़ों, पवित्र पुरुषों तथा महिलाओं का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए और उन्हें मान-सम्मान देने के लिए छोटे उनके चरण स्पर्श करते हैं। छात्र अपने शिक्षक के पैर छूते हैं।

शून्य की अवधारणा और ओम की मौलिक ध्वनि भारत द्वारा ही विश्व को दी गई है। कठोर एवं अभद्र भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है। दूसरों को बाएँ हाथ से कोई वस्तु देना एक रूप से अपमान माना जाता है। एक सुसंस्कृत भारतीय के लिए बहुत आवश्यक है कि उसके जूते, चप्पल किसी अन्य व्यक्ति को भूलवश छू जाने पर तुरन्त माफ़ी माँगा जाता है। 'जॉर्ज बर्नाड शॉ' के अनुसार "भारतीय जीवन शैली प्राकृतिक और असली जीवन शैली की दृष्टि देती है। हम खुद को अप्राकृतिक मास्क से ढँककर रखते हैं। भारत के चेहरे पर मौजूद हल्के निशान रचयिता के हाथों के निशान हैं।" इसलिए कहा जाता है कि किसी भी देश के विकास में उसकी संस्कृति का बहुत योगदान होता है। देश की संस्कृति, मूल्य, लक्ष्य, प्रथाएँ साझा विश्वास का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीय संस्कृति कभी कठोर नहीं रही इसलिए यह आधुनिक काल में भी गर्व के साथ ज़िंदा है।

भारत एक ऐसी धरती है, जिसके अभिवादन के तरीके बहुत अलग हैं। हर घर का अपना अलग अभिवादन का तरीका है। उदाहरणार्थ हिन्दू परिवारों में बड़ों को नमस्ते कहकर अभिवादन किया जाता है। उसी तरह मुस्लिम आदाब कहकर अभिवादन करते हैं। कहा जा सकता है कि कोई 'हेलो' या 'हाय' ऐसा जादू नहीं पैदा कर सकता है। इसके साथ-साथ भारतीय लोग फूल माला से स्वागत करने के लिए प्रसिद्ध हैं। भारतीय शादियों में दूल्हा और दुल्हन के बीच फूल माला का आदान-प्रदान अपने-आप में एक रस्म है। लोग प्रार्थना करते हुए भी देवी-देवताओं को फूल मालाएँ प्रदान करते हैं। यहाँ तक कि समय बदल गया है, लेकिन भव्यता हमेशा से भारतीय शादियों का अभिन्न तथा अनिवार्य

हिस्सा रही है। भारत में शादी आज भी एक ऐसी संस्था है, जिसमें दो लोग नहीं, बल्कि दो परिवार एक होते हैं। मुसलमानों के भी शादी समारोह के उत्सव का अपना तरीका होता है, जिसे निकाह कहते हैं।

यह एक तथ्य भी है कि भारतीय महिला की सुन्दरता उसके कपड़ों में होती है। देश भर में पारंपरिक और एथनिक फिर भी समकालीन भारतीय साड़ियाँ प्रसिद्ध हैं। मामूली बदलाव के साथ सलवार कमीज़ भारत के हर हिस्से में लोकप्रिय पोशाक है। यहाँ तक कि पुरुषों के लिए भी परिधानों के प्रकार में कोई कमी नहीं है। धोती-कुर्ता से लेकर शर्ट-पैंट तक भारतीय पुरुष वह सब कुछ पसंद करते हैं, जो अच्छी तरह से फिट हो और अच्छा दिखे। इसके अलावा गहने पहनना भारत में एक लम्बी परम्परा है। इसमें कोई शक नहीं है कि भारत में गहने सिर्फ व्यक्तिगत प्रयोग के लिए नहीं खरीदे जाते हैं, परन्तु शुभ अवसरों पर तोहफे में देने के लिए भी खरीदे जाते हैं। भारतीय समाज में इन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी दिया जाता है। भारतीय गहनों की अद्वितीय डिज़ाइन, कलात्मक लुक तथा सृजनात्मकता भारतीय संस्कृति एवं परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। यहाँ तक कि मेहंदी भी एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह एक प्रकार की प्राचीन लोक कला है।

भारत में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, जैन या पारसी सभी तरह के धर्मों के लोग मिल सकते हैं। उत्तर भारत में विभिन्न धार्मिक स्थानों की यात्रा की जा सकती है; जैसे कि 'वैष्णो देवी', 'हरिद्वार' और 'वाराणसी' जहाँ पर लोग भगवान का आशीर्वाद पाने के लिए पूजा करने जाते हैं। धर्म के पालन में इतनी विविधता होने के बाद भी यहाँ के लोगों में अभी भी एकता है। यह भारतीय मूल्य हैं, जो लोगों को एक साथ बांधे रखते हैं। आमतौर पर भारत में दिन सूर्य नमस्कार के साथ शुरू होता है। इसमें लोग सूर्य को जल चढ़ाते हैं और मन्त्र

पढ़कर प्रार्थना करते हैं। भारतीय लोग प्रकृति की पूजा करते हैं और यह इस संस्कृति की अनूठी बात है। हिन्दू धर्म में पेड़ों और जानवरों को भगवान की तरह पूजा जाता है। लोग भगवान में विश्वास रखते हैं। भारत में सभी धर्मों की शुरुआत भजन से की जाती है और यही कीमती मूल्य बच्चों में बचपन से ही डाले जाते हैं।

इसके अतिरिक्त भारतीय शास्त्रीय नृत्य, जैसे भरतनाट्यम, कथकली, कथक और कुचिपुड़ी आदि नाट्य शास्त्र, पुराण एवं शास्त्रीय साहित्य और रामायण एवं महाभारत जैसे महाकाव्यों के संकेतों का पालन करते हैं। भारतीयों के लिए संगीत आत्मा के लिए बिल्कुल वैसा ही है, जैसा भोजन शरीर के लिए। और तो और फिल्मों भी एक अन्य प्रकार की प्रदर्शन कला है, जिसके लिए भारत दुनिया भर में लोकप्रिय है। अतः चित्रकारी में भारत का इतिहास अजंता की गुफाओं में प्रमुखता से दिखता है। भारतीय चित्रकारी में रचनात्मकता तथा रंगों का प्रयोग हमेशा से अनूठा एवं शालीन रहा है। अपनी संस्कृति को ध्यान में रखते हुए भारतीय कलाकार अन्य यूरोपीय कलाकारों के गुणों को भी आत्मसात करके भारतीय चित्रों को पारंपरिक स्पर्श के साथ-साथ समकालीन रूप भी देते हैं।

वस्तुतः जनवरी से लेकर दिसंबर तक हर महीने में विशेष त्यौहार या मेला होता है। मकर संक्रांति, होली, राम नवमी, पूर्णिमा, दीपावली आदि को अत्यंत महत्व दिया जाता है, अर्थात् इन्हें बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। दुर्गा पूजा, गणेश चतुर्थी आदि के दौरान भारतीयों के नाच की असली प्रतिभा दिखाई देती है। केवल यही नहीं; यह देश एक विशेष अंतराल पर हस्तशिल्प मेलों का भी आयोजन करता है। लोग एक-दूसरे के साथ खुश होते हैं। इसके साथ-साथ भारत के पकवान भी बहुत ही स्वादिष्ट होते हैं। कई राज्य और धर्म होने के कारण यहाँ व्यंजनों की संख्या भी बहुत है। भारत में थाली की अवधारण बहुत प्रसिद्ध है। छोले भटूरे, राजमा



चावल आदि मसालेदार भोजन भारत की लोकप्रियता बढ़ाते हैं। इतनी विविधता के बावजूद भारत में लोग एकजुट हैं और अपनी संस्कृति पर गर्व महसूस करते हैं। चाहे अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म समारोह हो या सौंदर्य प्रतियोगिताएँ, विश्व मंच पर भारत ने प्रतिभा तथा संस्कृति का प्रदर्शन किया है। समय के साथ चलने और लचीलेपन के कारण भारतीय संस्कृति आधुनिक और स्वीकार्य भी है।

कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति स्थिर एवं

अद्वितीय है, जिसके संरक्षण की ज़िम्मेदारी वर्तमान पीढ़ी पर है। इसकी उदारता तथा समन्वयवादी गुणों ने अन्य संस्कृतियों को समाहित तो किया है, किन्तु अपने अस्तित्व के मूल को सुरक्षित रखा है। एक राष्ट्र की संस्कृति उसके लोगों के दिल और आत्मा में बसती है। उदारता, विशालता तथा सर्वांगीणता की दृष्टि से अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा भारतीय संस्कृति अग्रणी स्थान रखती है।

**dikshabuddeenauth1997@gmail.com**



# हिंदी के विकास पुरुष : फ़ादर बुल्के

— डॉ. कंदार सिंह  
झारखण्ड, भारत

बात उन दिनों की है, जब मैं 1981 ई. में राँची में रहकर इण्टरमीडिएट की पढ़ाई कर रहा था। उस समय तक कामिल बुल्के का नाम अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्थापित हो चुका था। मेरी बलवती इच्छा थी कि एक बार बुल्के सर से मिलकर, मैं उनका अभिवादन करूँ। डॉ. बुल्के उस समय स्थायी रूप से मनेरसा हाउस, पुरुलिया रोड, राँची, झारखण्ड में निवास कर रहे थे। उसी समय मेरे एक मित्र आनन्द सिंह, जो सेंट जेवियर कॉलिज, राँची से इण्टरमीडिएट कर रहे थे, उनका भी निवास पुरुलिया रोड में संध्या सिनेमा के पास था। मैंने आनन्द जी से आग्रह किया कि एक दिन मनेरसा हाउस, बुल्के सर से मिलने के लिए चला जाए। जनवरी का महीना था। क्रिस्मस की छुट्टी के बाद कॉलिज खुल गए थे। एक संध्या हम दोनों जब मनेरसा हाउस पहुँचे, उस समय हमसे पूर्व ही दो व्यक्ति वहाँ पहुँचे हुए थे। उनकी बातों से लगा कि वे दोनों रिश्ते में चाचा-भतीजे थे। भतीजे ने बुल्के सर को संबोधित करते हुए कहा “सर! ये मेरे अंकल हैं।” इतना सुनते ही बुल्के सर ने झिड़कते हुए भतीजे से कहा “तुम्हारी भाषा इतनी समृद्ध है और तुम दीन-हीन भाषा अंग्रेज़ी में ‘अंकल’ कह रहे हो। अंग्रेज़ी के एक ‘अंकल’ शब्द से चाचा, फूफा, मौसा, मामा तथा पिता के दोस्त आदि अनेक रिश्तों का बोध होता है। जबकि हिंदी में हर रिश्तों के लिए अलग-अलग शब्द होते हैं। इस दृष्टि से हिंदी काफ़ी समृद्ध है। अगर तुम अंकल की जगह ‘चाचा’ कहते, तो बेहतर होता।” इतना सुनते ही वह व्यक्ति झेंप गया और उनसे माफ़ी माँग ली।

हिंदी से इनकी इस प्रकार की आत्मीयता ने हमें

मंत्रमुग्ध कर लिया। उनकी लंबी कद-काठी, गोरा वर्ण, सफ़ेद-भूरी दाढ़ी, नीली-नीली गोल-गोल आँखों से गज़ब का स्नेह झलक रहा था। करीब आधे घंटे तक हिंदी भाषा, मानवता की सेवा से संबंधित हमारी उनसे बातें हुईं। फिर प्रसन्नता लिए हम लोग वापस लौट आए।

1986 ई. में जब मैंने स्नातकोत्तर (हिंदी), राँची विश्वविद्यालय, राँची में नामांकन करवाया उस समय हमारे गुरु डॉ. वचनदेव कुमार, डॉ. दिनेश्वर प्रसाद, डॉ. सिद्धनाथ कुमार, डॉ. श्रवण कुमार गोस्वामी, डॉ. महेन्द्र किशोर, डॉ. नागेश्वर सिंह, डॉ. जंग बहादुर पांडेय, डॉ. मंजू ज्योत्स्ना आदि सभी किसी न किसी रूप में बुल्के सर से प्रभावित दिखे, जैसा कि प्रसंगवश समय-समय पर उनसे संबंधित चर्चाएँ विभाग में होती रहीं।

हिंदी के अनन्य भक्त, संत, साहित्यकार डॉ. फ़ादर कामिल बुल्के का जन्म 1 सितंबर, 1909 ई. को बेल्जियम के पश्चिम फ़्लैण्डर्स प्रांत के रम्सकपैले नामक गाँव में हुआ था। डॉ. बुल्के के पिता का नाम अदोलक तथा माता का नाम मरियम था। डॉ. बुल्के के माता-पिता दोनों ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ एवं धर्मनिष्ठ थे। माता मरियम में सेवा एवं सहानुभूति के गुण कूट-कूटकर भरे हुए थे। एक दिन डॉ. दिनेश्वर प्रसाद सर ने बताया कि बुल्के साहब में पिता से बलिष्ठ शरीर और कर्मशक्ति तथा माता से भावुक हृदय और सेवा भाव मिला था और धर्म के प्रति निष्ठा माता और पिता दोनों से प्राप्त हुई थी। यह सत्य है कि उन्हें माता और पिता दोनों के सर्वोत्तम गुण मिले थे, किन्तु उनके आरंभिक जीवन में सर्वाधिक प्रभाव माता जी का पड़ा था, क्योंकि पिता को

अनिवार्य सैनिक भर्ती नियम के तहत प्रथम विश्व युद्ध में शामिल होना पड़ा था। युद्ध के दौरान उन्हें बन्दी भी बना लिया गया था। लड़ाई समाप्त होने के बाद घर लौटे। तब तक डॉ. बुल्के एवं उनके अन्य भाइयों का माता मरियम ने ही अकेले लालन-पालन किया था। इस कारण डॉ. बुल्के माता से अधिक प्रभावित हुए।

डॉ. बुल्के बेल्जियम के जिस गाँव के थे उससे सटे लिस्सेवेगे गाँव में 13वीं शताब्दी में निर्मित कुँवारी मरियम का एक विशाल गिरजाघर है, जो अपनी ऊँची मीनार, कलात्मकता एवं चमत्कारपूर्ण कहानियों के लिए जगत प्रसिद्ध है। बचपन से ही फ़ादर बुल्के उस गिरजाघर में जाया करते थे। वे गाँव के जिस कॉन्वेंट स्कूल में अध्ययन कर रहे थे, वहाँ की प्रिंसिपल मदर सुपीरियर गेरट्रूड के व्यक्तित्व से काफी प्रभावित थे। दूसरी ओर मदर गेरट्रूड को भी बालक बुल्के के व्यक्तित्व में न जाने क्या दिखाई पड़ा, जो उन्होंने उनसे कहा “गॉड से संन्यासी बनने का वरदान माँगना।” कॉन्वेंट की शिक्षा के बाद डॉ. बुल्के का नामांकन गाँव के ही नगरपालिका स्कूल में कराया गया। लिस्सेवेगे में हाई स्कूल नहीं था। अतः 1921 ई. में नज़दीक के गाँव ब्रुगे के सेंट फ्रांसिस जेवियर हाई स्कूल में दाखिला करवाया गया। 1928 ई. में हाई स्कूल की परीक्षा पास करने के बाद इंजीनियरिंग की प्रवेश परीक्षा में भी उन्हें प्रथम स्थान मिला, इसके पश्चात् फ़ादर कामिल बुल्के ने लूवेन इंजीनियरिंग कॉलिज में नामांकन करवाया। लूवेन इंजीनियरिंग कॉलिज की दूरी उनके घर से लगभग डेढ़ सौ किलोमीटर थी। यहाँ उन्होंने छात्र राजनीति में भी सक्रिय भूमिका निभाई। एक बार जब छुट्टियों में प्रथम वर्ष इंजीनियरिंग की परीक्षा की तैयारी के लिए गाँव आए, उन्हीं दिनों उनके जीवन में एक अद्भुत घटना घटी, जिससे उनके जीवन की गति अलग दिशा की ओर मुड़ गई।

एक दिन संध्या समय जब घर के सभी सदस्य

घर से बाहर गए हुए थे, उस एकांत समय में एकाग्रतापूर्वक कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। अचानक उनकी पीठ की ओर बिजली जैसी चमक आई और उसकी रोशनी में उन्हें यह ज्ञान मिला कि उनको इंजीनियर नहीं संन्यासी बनना है। इस घटना से उन्हें यह ज्ञात हुआ कि यह ईश्वर का आदेश है। इस क्षेत्र में मुझे जाना ही पड़ेगा। इंजीनियरिंग द्वितीय वर्ष की परीक्षा के समय तक उनके इस निर्णय से एक-दो लोगों को छोड़कर अन्य कोई अवगत नहीं था। परीक्षा के बाद एक दिन घर आकर उन्होंने अपने इस निर्णय से अपने माता-पिता को भी अवगत करवा दिया। तब माँ ने रोते हुए फ़ादर बुल्के से कहा “मैं प्रभु की इच्छा स्वीकार करती हूँ।” पिता जी ने भी सदा की तरह सहज भाव से धीरे से कहा “तुम्हारा घर पर होना हमारे लिए कितना अच्छा होता।” माता-पिता दोनों बेटे के इस निर्णय से अवाक् थे, क्योंकि उनके मन में एक स्वप्न पल रहा था कि बड़ा होकर कामिल घर का सहारा बनेगा, लेकिन उनके स्वप्न के विपरीत कामिल ने तो प्रभु का संत बनने की इच्छा को निष्ठापूर्वक स्वीकार कर लिया।

23.07.1930 ई. में फ़ादर बुल्के का गेन्त के पास झांगन जेसुइट नव शिष्यालय में प्रारम्भिक धर्म शिक्षा के लिए दाखिला करवाया गया। वहाँ से दो वर्षों के बाद 1932 ई. में हॉलैंड के वाल्केनबर्ग जेसुइट केन्द्र में धर्म शिक्षा के लिए रखा गया। जहाँ संन्यास संबंधी निर्णय पर पुनर्विचार का भी विकल्प था। पर डॉ. बुल्के अपने इस निर्णय पर अटल थे। यहाँ उन्होंने लैटिन, ग्रीक, जर्मन भाषाओं के साथ ईसाई धर्म, दर्शन के भी ज्ञान प्राप्त किए।

1934 ई. में डॉ. बुल्के जब वाल्केनबर्ग से लूवेन लौटे, तो धर्माधिकारियों द्वारा उनके सामने दो विकल्प रखे गए— अपने ही देश में रहकर धर्म का प्रचार करें या दूसरे देश में जाकर धार्मिक सेवा कार्य करें। उन्होंने अपने एक स्थानीय व्यक्ति फ़ादर

लीवेन्स के विषय में सुना था कि उन्होंने भारतवर्ष में आदिवासियों के बीच जाकर सेवा की है। इनका भी मन भारत जाकर सेवा करने के लिए मचल उठा। 20 अक्टूबर, 1935 को डॉ. बुल्के बेल्जियम से भारत आए। सबसे पहले मुंबई की धरती ने उनकी अगवानी की। पुनः मुंबई से आदिवासी बहुल क्षेत्र झारखण्ड, राँची में उनका आगमन हुआ। राँची पहुँचने पर उनको प्रसन्नता इस बात की थी कि माँ उनकी विदाई के समय खुश थी, लेकिन जब यहाँ आए, तो पत्र के द्वारा ज्ञात हुआ कि उनकी विदाई के बाद माँ रोते-रोते बेहोश हो गई थी। 10 नवंबर, 1935 ई. को माँ के द्वारा लिखा गया एक पत्र डॉ. बुल्के को प्राप्त हुआ। इस पत्र में वात्सल्य एवं धर्म के प्रति कर्तव्यबोध का समन्वय दिखता है। पत्र का अनुवाद इस प्रकार है —

“प्रिय कामिल,

तीन सप्ताह पहले तुम चले गए। अब तक तुम अपने गंतव्य तक पहुँच गए होंगे। कामिल, विश्वास रखना कि मैं रोई, बहुत रोई, तुम्हारे जाने के बाद। मैं तुम्हारा विरोध नहीं करना चाहती थी, क्योंकि मुझे तुम पर बहुत गुमान है, किन्तु मैं तुम्हारी माँ हूँ, मैं तुम्हें बहुत प्यार करती हूँ। इसी कारण तुम्हारी विदाई के समय मुझे बहुत तकलीफ हुई। बेटा विश्वास रखना मैं रोती हूँ, इसलिए नहीं कि मैं दुखी हूँ। मैं भगवान को धन्यवाद देती हूँ कि उन्होंने मुझे तुम्हारी तरह संतान दी है। मैं प्रार्थना करूँगी कि तुम वहाँ स्वस्थ रहकर भलाई कर सको।

स्मृतियों में रखने वाली, तुम्हारी माँ।”

पत्र पढ़ने के बाद फ़ादर बुल्के को बहुत अफ़सोस हुआ, किन्तु जिस रास्ते पर निकल पड़े थे, वहाँ से लौटना नामुमकिन था।

1936 ई. में फ़ादर बुल्के को राँची से दार्जिलिंग, सेंट जोसेफ कॉलेज में भौतिकी एवं रसायन पढ़ाने के लिए भेजा गया, किन्तु वहाँ मौसम की प्रतिकूलता की वजह से उन्हें पुनः राँची वापस आना पड़ा। यहाँ

आकर गुमला के संत इग्नेशियस स्कूल में गणित अध्यापन करने लगे। इतने दिनों में उन्होंने महसूस किया कि यहाँ की जनता के हृदय में उतरने के लिए हिंदी जानना अति आवश्यक है। उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य एवं काफी दुख भी हुआ कि यहाँ विदेशी भाषा अंग्रेज़ी को हिंदी की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है, क्षेत्रीय भाषाएँ भी उपेक्षित हैं। उन्होंने यह तय किया कि भारत की मातृभाषा हिंदी सीखेंगे और अंग्रेज़ी की जगह उसे स्थापित करने में सहयोग करेंगे। अतः उन्होंने गुमला से ही हिंदी सीखना प्रारंभ किया।

संयोग से अभी मैं जहाँ हूँ, यहीं सीतागढ़, हजारीबाग के पंडित बदरीदत्त शास्त्री से उन्होंने 1938 ई. में पूरे एक वर्ष तक संस्कृत एवं हिंदी की शिक्षा ली। अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण डॉ. बुल्के ने हिंदी एवं संस्कृत पर इतना अधिकार प्राप्त कर लिया कि अब उन्हें हिंदी एवं संस्कृत के ग्रंथों का अध्ययन एवं अध्यापन करने में कोई समस्या नहीं रही। उनके इस भाषा ज्ञान की क्षमता को देखकर पंडित बदरीदत्त शास्त्री ने उन्हें ‘चलता-फिरता शब्द कोश’ की उपाधि दे दी। 1939 ई. में डॉ. बुल्के विशेष धार्मिक-शिक्षा ग्रहण करने के लिए कर्सियांग चले आए। चार वर्षों तक धर्म शिक्षा ग्रहण करने के दौरान उन्होंने फ़ादर बायार्त के निर्देशन में ‘न्याय-वैशेषिक के ईश्वरवाद’ पर एक लघु शोध-प्रबंध लिखा। वहीं फ़ादर बोल्कार्ट की सहायता से उन्होंने ‘द सेवियर’ नामक पुस्तक की रचना की। यह ईसा की जीवनी से संबंधित उनकी पहली मौलिक कृति थी। बाद में उन्होंने 1940 ई. में ‘मुक्तिदाता’ नाम से स्वयं इसका हिंदी में अनुवाद किया। डॉ. बुल्के ने बहुत कम समय में ही अपनी मेहनत के बल पर हिंदी एवं संस्कृत भाषा पर और भी अधिक पकड़ मजबूत कर ली। 1940 ई. में फ़ादर बुल्के ने हिंदी साहित्य सम्मेलन की ‘विशारद’ परीक्षा पास की।

समय बीतता गया, फ़ादर बुल्के हिंदी के प्रति और

अधिक समर्पित होते गए और हिंदी से एम.ए. करने के लिए मन बना लिया। किन्तु समस्या यह थी कि वे किस विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. करें? उस समय भारतवर्ष में अनेक विश्वविद्यालयों में एम.ए. की पढ़ाई होती थी। इसके लिए उन्होंने विभिन्न विश्वविद्यालयों का भ्रमण भी किया। अंत में डॉ. बुल्के ने इसके लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय को चुना। वहाँ के तत्कालीन विभागाध्यक्ष डॉ. धीरेन्द्र वर्मा को एक पत्र के माध्यम से इसके लिए निवेदन भी किया, किन्तु बहुत दिनों तक कोई उत्तर नहीं पाकर, उन्होंने स्वतंत्र छात्र के रूप में कलकत्ता विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय में स्नातक की परीक्षा पास की। इसके बाद हिंदी में एम.ए. करने के लिए डॉ. बुल्के ने स्वयं इलाहाबाद विश्वविद्यालय जाकर डॉ. धीरेन्द्र वर्मा से मुलाकात की। किन्तु डॉ. वर्मा ने कहा कि यहाँ किसी विदेशी का एम.ए. करने का प्रावधान नहीं है, किन्तु उनके हिंदी-ज्ञान की जानकारी के लिए उन्होंने विनय पत्रिका के दो पदों की व्याख्या करने को कहा। डॉ. बुल्के ने उन पदों की इतनी भावप्रवण व्याख्या की कि उपस्थित तमाम लोग आश्चर्यचकित रह गए। तब विभागाध्यक्ष डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने विशेष परिस्थिति में उन्हें एम.ए. करने की अनुमति दे दी।

1947 ई. में एम.ए. पास करने के बाद डॉ. बुल्के ने डॉ. माताप्रसाद गुप्त के निर्देशन में 'राम कथा : उत्पत्ति और विकास' शीर्षक पर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। इस विषय पर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त करने के बाद भी उन्होंने लगातार 18 वर्षों तक काम किया। उन्होंने इसके लिए संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी, बंगला, तमिल के साथ तिब्बती, बर्मी, इंडोनेशियाई, थाई आदि भाषाओं में राम की कथा को ढूँढने का प्रयास किया। परिणाम स्वरूप इसमें रामकथा से संबद्ध अनेक नवीन तथ्य जुड़ते गए और राम की कथा को एक व्यापक भाव भूमि प्राप्त हुई। 1950 ई. में इस विशेष अनुसंधानपरक ग्रंथ के प्रकाशन से डॉ. बुल्के की

ख्याति अंतरराष्ट्रीय स्तर की हो गई।

एक महत्वपूर्ण बात और यहाँ निवेदन करना चाहूँगा कि जिस समय डॉ. बुल्के शोध कर रहे थे, उस समय तक भारतीय विश्वविद्यालयों में शोध-ग्रंथ अंग्रेजी में लिखे जाते थे। उन्होंने सर्वप्रथम इस परंपरा से अलग हटकर अपने शोध-प्रबंध को हिंदी भाषा, देवनागरी लिपि में लिखा। जबकि अंग्रेजी में प्रबंध लिखना उनके लिए ज़्यादा आसान था, बावजूद इसके उन्होंने हिंदी में लिखा। यह इनका हिंदी के प्रति लगाव तथा हिंदी की समृद्धि में अभूतपूर्व योगदान है। इस पुनीत कार्य के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डॉ. अमरनाथ झा भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने डॉ. बुल्के द्वारा हिंदी में शोध-प्रबंध लिखने के आग्रह पर विश्वविद्यालय की शोध संबंधी नियमावली में ही परिवर्तन कर दिया।

1950 ई. में ही सेंट जेवियर कॉलिज, राँची में उन्हें हिंदी विभागाध्यक्ष के पद पर प्रतिष्ठित किया गया। 1960 ई. तक विभागाध्यक्ष के पद पर आसीन रहते हुए उन्होंने इण्टर से लेकर बी.ए. ऑनर्स तक के विद्यार्थियों को पढ़ाया। इस तरह उन्होंने हिंदी के लिए एक सफल शिक्षक के रूप में अध्यापन किया। कुछ दिनों बाद विद्यार्थियों की विरक्ति देखते हुए उन्होंने तय किया कि अब अध्यापन कार्य से मुक्त होकर स्वतंत्रतापूर्वक लेखन करना चाहिए। उनकी इस इच्छा का सम्मान करते हुए उन्हें अध्यापन कार्य से मुक्त कर दिया गया। तबसे लेकर 1982 ई. तक सतत् लेखन एवं दीन, दुखियों की सेवा में लगे रहे।

उन्होंने डॉ. दिनेश्वर प्रसाद के साथ प्रमुखतः शोध-अनुसंधान, कोश-निर्माण, अनुवाद आदि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए। कुल मिलाकर 29 पुस्तकें, लगभग 60 शोध-निबंध, अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश तथा अनेक महत्वपूर्ण कृतियों के अनुवाद भी किए। किंतु हिंदी में उनकी विशेषज्ञता का मुख्य विषय

‘तुलसी साहित्य’ ही रहा। उनकी तुलसी विषयक दृष्टि की जानकारी के लिए ‘राम कथा और तुलसी’ तथा ‘मानस कौमुदी’ विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। हिंदी सीखने की सुविधा के लिए उन्होंने ‘ए टेक्निकल इंग्लिश-हिंदी ग्लासरी’ नामक महत्वपूर्ण पुस्तक की रचना की। उनके अंग्रेजी-हिंदी कोश के अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। अनुवाद के क्षेत्र में उन्होंने मॉरीस मेटरलिक की प्रसिद्ध नाट्य कृति ‘द ब्लू बर्ड’ का ‘नीलपंछी’ नामक अनुवाद किया, जो 1958 ई. में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित किया गया। बाइबल से संबद्ध अनेक पक्षों का हिंदी अनुवाद भी उल्लेखनीय हैं। हिंदी के विकास के क्षेत्र में ‘अंग्रेजी-हिंदी कोश’ का भी काफी योगदान है। इस कोश को पढ़कर उनके लोगों ने हिंदी सीखी। आज भी अनेक सरकारी, गैर सरकारी कार्यालयों में इसकी मदद से हिंदी अनुवाद आसानी से किया जाता है। इस कोश की विशेषता को रेखांकित करते हुए हिंदी के महान लेखक इलाचन्द्र जोशी ने कहा है कि “यह कोश न केवल हिंदी और अंग्रेजी के नये पाठकों के लिए उपयोगी है, वरन् हम जैसे लेखकों के लिए भी बहुत उपयोगी है।”

हिंदी तथा तुलसी के प्रति इतनी गहरी निष्ठा देखकर ऐसा लगता है कि ‘फादर बुल्के’ कहीं तुलसी के अवतार तो नहीं थे? भारत सरकार द्वारा ऐसे महान संत तुलसी प्रेमी, हिंदी प्रेमी, भारत प्रेमी डॉ. बुल्के को 1974 ई. में उनके इस महत्वपूर्ण

योगदान के लिए ‘पद्मभूषण’ की उपाधि से सम्मानित किया गया। उनके गुरु डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने ‘राम कथा : उत्पत्ति और विकास’ के विषय में लिखा है कि यह ग्रंथ वास्तव में राम कथा संबंधी समस्त सामग्री का विश्वकोश है।

जून 1982 ई. में उनके दाहिने पैर की उंगली में गैंग्रीन नामक बीमारी हो गई। ऐसे तो 1950 ई. से ही उनके बलिष्ठ, गौर वर्ण शरीर में अनेक बीमारियाँ घर कर गई थीं। सबसे पहले कान खराब हुए, फिर पेष्टिक अल्सर हुआ, फिर ब्लड प्रेशर, फिर गुर्दे की बीमारी, फिर हार्ट की बीमारी के कारण वे अन्दर से टूट से गए थे, फिर भी उन्होंने कभी हिम्मत नहीं हारी। हिंदी और हिंदुस्तान के लिए अंतिम क्षण तक उन्होंने अपने शरीर की एक-एक बूँद निचोड़कर दे दिया। मृत्यु के पूर्व वे काल से सिर्फ चार सौ घंटे की मोहलत बाइबल के अनुवाद के लिए माँगते रहे, मौत से संघर्ष करते रहे, किन्तु इस गैंग्रीन ने तो 1982 ई. में साँसें ही छीन ली। और बाइबल के ओल्ड टेस्टामेंट के हिंदी अनुवाद का स्वप्न अधूरा रह गया।

डॉ. बुल्के विदेशी होकर भी हम भारतीयों से अधिक भारतीय, हमसे अधिक हिंदी सेवी, हमसे अधिक तुलसी, राम के उपासक तथा दीन-दुखियों के सेवक थे। ऐसे महान संत का हिन्दुस्तान ही नहीं संपूर्ण विश्व-हिंदी समाज सदा ऋणी रहेगा।

**kedarsngh137@gmail.com**

# बुलारी

— अनीता गंगाधर  
अजमेर, भारत

बात आज से करीब सत्रह साल पहले की है। पुत्र प्राप्ति के पश्चात् मेरी तबीयत कुछ ज़्यादा ही खराब रहने लगी थी। माँ को बहुत चिंता होने लगी, तो हमारी कामवाली बाई ने माँ से कहा कि बहन जी नागौर ज़िले में एक स्थान है, आप वहाँ की बुलारी बोल दो, अन्नू जीजी बिल्कुल ठीक हो जाएँगी। माँ ने मेरी तबीयत को देखते हुए तुरंत बुलारी बोल दी।

भगवान की कृपा से कुछ समय बाद मेरी तबीयत ठीक भी हो गई। मैं अपनी माँ के पास आई हुई थी, तो माँ ने कहा कि चलो तेरी तबीयत के लिए जो बुलारी बोली थी, उसे पूरी कर आते हैं। उस समय मेरी मौसी और मामा के बच्चे भी आए हुए थे, तो सभी बहुत खुश हो गए कि चलो एक पंथ दो काज हो जाएँगे। घूमना भी हो जाएगा और धोक भी लगा लेंगे।

माँ ने बाई जी से कहा “बाई जी! कल हम सभी जल्दी चलेंगे, तो आप सब्जी-पूड़ी बना लेना।” इस पर बाई जी ने मना करते हुए कहा “नहीं बहन जी! धोक लगाने के बाद वापसी में जब अपन पुष्कर आएँगे तो वहीं रुककर खाना खाएँगे। हमेशा ही तो खाना साथ में लेकर चलते हैं, पर अबकी बार अपन पुष्कर में मेरे भाँजे ने नया होटल खोला है, वहाँ पर खाएँगे।” माँ ने कहा ठीक है और अगले दिन तय समय पर हम लोग रवाना हो गए। अभी नागौर ज़िले में प्रवेश किया ही था कि हमारी गाड़ी खराब हो गई और जो पार्ट खराब हुआ था, वह आस-पास भी कहीं नहीं मिलता था, तो ड्राइवर हमें वहीं छोड़कर और दूसरी बस में बैठकर उस पार्ट को लेने अजमेर चला गया। हम वहीं चादर बिछा के

सड़क किनारे एक पेड़ की छाँव में बैठ गए। पानी तो हमारे पास था, लेकिन खाने के लिए कुछ नहीं था और भूख से सभी बेहाल हो रहे थे।

दिन के दो बजने को आए, लेकिन अभी तक कुछ खाया नहीं था। अब समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें। वह कहावत भी सही होती नज़र आ रही थी कि ‘घर खीर, तो बाहर खीर’ और ड्राइवर भी अभी तक आया नहीं था। ड्राइवर को फोन किया, तो बोला अभी एक-डेढ़ घंटा और लगेगा। अब इंतज़ार के अलावा कोई चारा नहीं था। बहुत-सी गाड़ियाँ आ जा रही थीं, हमें देखते तो पूछते कि क्या हुआ और चले जाते। तभी 3:30 बजे के लगभग एक महिला घाघरा-ओढ़नी पहने नज़दीक के खेत से चलकर हमारे पास आई और पूछा “क्या बात हो गई? मैं बहुत देर से आपको देख रही हूँ।” हमने उसे सारी घटना बता दी। वह तुरंत बोली “आप चिंता ना करें। मेरा घर पास ही है, मैं अभी आपके लिए खाना लेकर आती हूँ।”

थोड़ी देर बाद ही वह महिला हमारे लिए मोटी-मोटी रोटियाँ और बैंगन की सब्जी लेकर आई। हमने ना कुछ सोचा, ना कुछ समझा और तुरंत बैंगन की सब्जी और रोटी खाने बैठ गए। उस समय तो ऐसा लग रहा था कि मनचाही मुराद पूरी हो गई है। बैंगन हम सभी बच्चे कभी खाते ही नहीं थे, लेकिन उस दिन वह बैंगन भी बहुत स्वादिष्ट लग रहा था और वह महिला किसी देवदूत से कम नहीं लग रही थी। खाना खाने के कुछ देर पश्चात् ही ड्राइवर साहब गाड़ी का पार्ट सही करा लाए थे और हमने आगे की यात्रा आरामपूर्वक कर ली।

आज हमें दो बातें अच्छे से समझ आ गई थीं



— एक तो घर से बिना खाए कभी नहीं निकलना चाहिए और दूसरा कुदरत की हर चीज़, जो हमें कुदरत ने खाने के लिए दी है, स्वादिष्ट होती है।

किसी भी चीज़ को बिना सोचे समझे नकारना नहीं चाहिए।

anitagangadhar@gmail.com

## ‘भूतहा’ कब्रिस्तान

— श्रीमती सुनीता आर्यनायक  
न्यूग्रोव, मॉरीशस

मेरे लिए भूत प्रेतों में विश्वास करना या न करना हमेशा से वाद-विवाद का विषय रहा है। जितने मुँह उतने ही किस्से-कहानियाँ भी, लेकिन जीवन में कई बार कुछ ऐसे अनुभव होते हैं, जो आपको ऐसी बातों पर विश्वास करने पर विवश कर देते हैं। वैसे तो कहीं घूमने जाना एक बहुत आनंददायक अनुभव होता है, लेकिन ये ज़रूरी नहीं कि हर अनुभव आपके लिए अच्छी यादें ही देगा।

करीब 10 साल पहले की बात है, जब हम परिवार के साथ नैनीताल की सुंदरता का आनंद लेने गए थे। इस यात्रा से पहले तक भूत-पिशाच, पितृ-भगवान आदि जैसी शक्तियाँ मेरी समझ से बिल्कुल परे थीं और न ही मैं इनमें विश्वास करती थी; पर इस एक यात्रा ने मेरा और मेरे परिवार का पूरा दृष्टिकोण ही बदल दिया। जी हाँ.. मैंने अपनी आँखों से इसका प्रभाव देखा है। मैं आज भी समझ नहीं पाती कि क्या सचमुच ऐसा कुछ हुआ है मेरे साथ। भगवान हो न हो, पर अब किसी से ये नहीं कहती कि भूत और आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं होता।

नैनीताल से करीब 6 कि.मी. दूर भोवाली रोड पर ब्रिटिश काल में बने इस कब्रिस्तान का इतिहास बहुत डरावना है। सन् 1850 के दशक के बीच यहाँ ब्रिटिश अधिकारियों को दफनाया जाता था। कहते हैं कि 1880 के भयानक हादसे के बाद से इसे ‘भूतहा’ का नाम दे दिया गया। साथ ही घटना ने नगर के भौगोलिक नक्शे तक को बदल दिया था।

यह हादसा इतना भयानक था कि इसकी दहशत कई सालों तक बनी रही।

16 दिसंबर, 1880 का वह दिन नैनीताल के इतिहास का सबसे भयानक दिन बना। इस भयावह हादसे ने 150 से अधिक लोगों की जीवन लीला समाप्त कर दी थी। उस दिन एक ऐसे भूस्खलन ने नैनीताल की शान्ति में दस्तक दी, जो कि जान-माल के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध हुआ और कस्बे का सबसे बड़ा हिस्सा पूरा गायब हो गया। कहते हैं हादसा इतना भयानक था कि बचाव अधिकारियों को शवों को खोजने में महीनों लग गए और उनके जीवन का ये अंतिम निवास स्थान बना ये ‘भूतहा’ नैनीताल का कब्रिस्तान।

इस कब्रिस्तान में जाने से पहले मैं इसके इतिहास, इसकी कहानी से बिल्कुल अनभिज्ञ थी। हम पाँच लोग एक साथ उत्तराखण्ड के जिस रास्ते पर मन किया वहीं चल पड़े, सब अपनी ही मस्ती में थे। एक प्यारी-सी शाम, हम भोवाली रोड से अपने होटल की ओर जा ही रहे थे कि सब की आँखें एक अजीब से गेट पर जा टिकी। क्योंकि सूरज ढलने और अंधेरा गहराने में अभी थोड़ा समय बाकी था, इसलिए हमने गाड़ी इस गेट की तरफ मोड़ दी। यह सोचकर कि चलो अभी तो सूर्य अस्त होने में कुछ समय है, यहाँ आनंद लिया जाए।

पुराने दरवाज़े और अज्ञात जगह को देखकर हमें अंदाज़ा तो था कि जो हम कर रहे हैं कुछ ठीक नहीं कर रहे। तभी अचानक मेरे एक पारिवारिक



मित्र इस कब्रिस्तान से जुड़े सन् 1880 की घटना के बारे में बताने लगे। हमने किस्सा सुना नहीं, कि सबने अंदर जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। सब लोग बहुत उत्सुक थे कि यहाँ कुछ नया देखने को मिलेगा।

हम सब देखते-ही-देखते कब्रिस्तान के अंदर धमाचौकड़ी मचा रहे थे, यहाँ दफ़न लोगों की कहानियाँ जानने को उतावले हो रहे थे। एक से दूसरी कब्र पर कूद रहे थे, ऐसा लग रहा था कि मानो हमारा बचपना वापस आ गया हो। जैसे हम पुराना इतिहास जानने के कितने इच्छुक हो।

उन मासूम लोगों की मौत का उपहास बना रहे थे। हम सब अपने गले से विचित्र और हास्यजनक आवाज़ें निकालकर एक-दूसरे को डराने का भरसक प्रयास कर रहे थे। कहते हैं न कि असावधानी में कब लापरवाही हो जाती है, पता ही नहीं चलता। शायद वहाँ दफ़न लोगों को हमारा व्यवहार नहीं भाया।

करीब घंटे भर बाद हम वहाँ से रवाना हुए और मेरे पारिवारिक मित्र ने गाड़ी चलाने की कमान संभाली। एक घंटे बाद मुझे ऐसा लगा मानो मुझसे मेरी शक्ति छीन ली गई हो और मैं बदहवास-सी हो गई। मुझे इतनी अधिक थकान हो रही थी कि मैं बता भी नहीं सकती और ये कोई आम थकान नहीं थी। अलग, बेहद अजीब। ऐसा लगा जैसे शरीर में बहुत दर्द हो रहा हो और सारा खून पैरों के रास्ते बाहर निकाल लिया गया हो। दर्द मेरी सहन-शक्ति से बाहर हो रहा था। मुझे ऐसा लग रहा था कि जैसे किसी नस में खिंचाव आने के कारण ऐसा हो रहा हो, ये सोचकर मैंने किसी से कुछ नहीं कहा, बस आँख बंद कर ऐसे ही बैठी रही।

जो रास्ता थोड़ी ही देर का था, लगा जैसे कितनी देर से हम गाड़ी में ही हैं। होटल पहुँचने के आधे घंटे के अंदर ही हम सब को काफी तेज़ बुखार चढ़ा और किसी को कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। हम सब लगातार थर-थर काँपे जा रहे

थे और हमें इस बात का आभास हो गया था कि कब्रिस्तान में जो हुआ, वो ठीक नहीं हुआ। हम लोग बहुत ज़्यादा भयभीत और सहमे हुए थे।

किसी को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि क्या होगा, थोड़ी ही देर में सबको झपकी आ गई। कुछ घंटों बाद जब नींद खुली, तो सबका बुखार जैसा था वैसे का वैसे ही रहा, तो हमारा चिंतित होना स्वाभाविक था। हमने सोचा क्यों न गरम-गरम सूप पिया जाए, हो सकता है बुखार उतर जाए।

मैंने फ़ोन किया, मुझे अभी भी याद है, वो वेटर जो हमारे लिए सूप लेकर आया था, उसने कमरे में घुसते ही भाँप लिया था कि दाल में ज़रूर कुछ काला है। वह हमें एकटक देखे जा रहा था, सोच रहा होगा कि हँसता-खेलता परिवार यहाँ आया था, जो कि कल तक बहुत खुश था और सारी रात पार्टी में आनंद लिया, अब ऐसा लग रहा था, जैसे उन सभी के पैरों तले किसी ने ज़मीन खींच ली हो।

हमारा भाग्य या अच्छी किस्मत कि हमारी वेटर से इस बारे में विस्तार से बात हुई। हमारी कहानी सुनकर उसने बताया कि जो हुआ वो बिलकुल ठीक नहीं हुआ।... ऐसा नहीं करना चाहिए था। वेटर हमें शक्तियों के बारे में बताता गया और हम भी अवाक् होकर सुनते रहे। वेटर की बातों में कितनी सच्चाई थी, ये तो नहीं पता, लेकिन डर क्या होता है उस दिन पता चला। वेटर ने कहा कि गलती सभी से होती है। आप से यह अनजाने में हुई है, जिसका कि आपको आभास तक नहीं था। जानबूझकर की गई गलती ज़्यादा तड़पाती है। अभी तो हमें जैसे काटो तो खून नहीं। डर के मारे मुँह से आवाज़ भी निकलनी बंद हो गई। वेटर ने हमें प्रार्थना की शक्ति के बारे में बताया। हमने सीखा कि क्षमा में बड़ी ताकत है। जैसे ही आप क्षमा माँगते हो, आपका नया जन्म-सा हो जाता है। वेटर ने बताया तब हमें समझ में आया कि सच्चे दिल से की हुई प्रार्थना, तो जैसे संजीवनी बूटी है। और अगर मन साफ़, तो भगवान भी आपका साथ देते हैं।

उसके बहुत समझाने के पश्चात् हमने अपने गलत कर्मों के लिए सच्चे हृदय से क्षमा याचना माँगी और पूरे मन से परिवार की कुशल-मंगल और शांति की प्रार्थना की। जब कोई और रास्ता न दिख रहा हो, तो प्रार्थना ही वो रास्ता है, जो हमें आशा की किरण देता है। ये बात मुझे उस दिन पता चली। उसी प्रार्थना की बड़ी ताकत ने हमें बहुत शक्ति दी और आशा की किरण का पीछा करते हुए हम अपने लक्ष्य तक पहुँच गए।

सच्चे हृदय से की गई प्रार्थना की शक्ति तो देखो, अगली सुबह मैं और मेरा पूरा परिवार स्वस्थ

उठ बैठे, मानो हमारे साथ कल रात सब कुछ अच्छा ही घटित हुआ हो, डरावनी रात का अंत हुआ। जो होना होता है, वो होकर रहता है, मगर समझदारी इसी में है कि हम गलतियों से सीख लें और हमेशा सही रास्ते पर बने रहें। ये बात मुझे उस दिन अच्छी तरह समझ में आ चुकी थी। जहाँ भी जाओ, उस स्थान की, वहाँ के लोगों का मान-सम्मान करो। अगर हम सबका सम्मान करते हुए सही रास्ते पर रहते हैं, तो हमारे साथ सदा मंगल होता है, अमंगल होने की आशंका ही नहीं रहती।

बात बहुत पुरानी है, लेकिन मेरे संस्मरण में ये अभी तक जीवित है।

**sunitaarianaick@gmail.com**

## गुज़ारिश

— प्रीति गोविंदराज  
वर्जीनिया, अमेरिका

“आपसे एक गुज़ारिश थी, बस आज भर की बात है मैडम जी! आपको मालूम है, मैंने आपसे कभी ऐसी कोई रिक्वेस्ट पहले नहीं की।” मैंने अपने इक्कीस वर्ष की आयु का अनुभव—जग ढूँढा एवं अपने मन से परिपक्वता की भीख माँगी। मन असमंजस में उलझा रहा, तनाव बढ़ने लगा। “क्या बात है आप बात तो बताइए” अपने स्वर में आत्मविश्वास का वो अल्पांश जोड़ती हुई बोली, जो उस क्षण मुझमें विद्यमान नहीं था। हालाँकि मन घबराया हुआ था कि भला कौन—सा आग्रह हो सकता है? दो सप्ताह पहले ही तो मेरी कमिशनिंग हुई थी। अब तक की जो मेरी परिचारिका—यात्रा थी वह शिक्षकों की छत्रछाया में बीती थी। किसी प्रकार का संशय होता, तो तुरंत उनसे पूछा जा सकता था। जैसे ही यूनिवर्सिटी की डिग्री मिली, प्रत्याशित परिवर्तन भी आए! फौजी अस्पताल में लेफ़्टनन्ट की उपाधि मिलते ही पल भर में पूरे वार्ड की ज़िम्मेदारी! एक

सप्ताह इसी वार्ड में दिन की ड्यूटी लगी, फिर पिछले सप्ताह से रात की ड्यूटी शुरू हुई। अपने कंधों पर फ़ेमिली कर्क या कैंसर वार्ड का दायित्व था और अब तक तो उसे बखूबी निभा भी रही थी। मेरे अलावा उस ड्यूटी को निभाने वाले और दो कर्मचारी थे, आया और सफ़ाईवाली। आया किचन से खाना लाती और बाँटती, सफ़ाईवाली शैया—ग्रस्त रोगियों को मल—मूत्र कराती और सुबह पूरे वार्ड की बढ़िया सफ़ाई करती। मैं पहली बार पूर्णतः स्वावलंबी ड्यूटी निभा रही थी, दिन के समय तो वरिष्ठ सिस्टर का अनुभवी सहयोग होता है। पिछले सप्ताह से मेरी नाइट ड्यूटी भी एक नित्य क्रम में बंध गई थी। इस वार्ड में तीस—पैंतीस कैंसर रोगियों की देखभाल के लिए मैं ही एकमात्र नर्स थी। एक बात मुझ पर ये खुली, दिन की तुलना में रात के एकांत में सभी शांत हो जाते हैं, विश्राम की तैयारी में। दिल अपनत्व का एक मित्र ढूँढता है, जिससे बिना किसी

भय के, मन की सारी पोथी खोली जा सके! धीरे-धीरे सब रोगियों से एक संबंध-सा बन गया था। उन सब से मुझे लगाव भी हो गया था। मानो मेरे अपने थे सभी, उन की जिम्मेदारी सिर्फ शारीरिक ही नहीं, मानसिक तौर पर भी थी।

किन्तु कैरियर के प्रारंभ में ऐसी अधीरता तो स्वाभाविक थी! काम और ज्ञान के संदर्भ में पूरी निष्ठा और तैयारी थी। मुझे ऐसा लग रहा था कि हवलदार अब्दुल अली की विनती मुझे अवश्य किसी मानसिक संघर्ष की ओर ले जा रही थी! उनकी पत्नी ब्रेन-कैंसर की रोगी थी और उनका स्वास्थ्य भी दिन-पर-दिन बिगड़ता जा रहा था। ग्लयोमा और वो भी स्थानांतरण के साथ, अर्थात् मेटैस्टसिस। इस रोग का निदान गंभीर और दुखदायी ही होता है। अब्दुल अली जी अपनी पत्नी सायरा की सेवा इतने स्नेह से करते थे कि देखने वाले दंग रह जाते। सायरा मात्र अट्ठाईस वर्ष की कश्मीरी स्त्री थी। कभी यही चेहरा फूलों की तरह खिला-खिला था, ये बात हमें उनके निकाह की फोटो से पता चली, जिसे अब्दुल ने बिस्तर के पीछे एक सरस्ते फ्रेम में लगा रखा था। जब-तब उसे वह तस्वीर दिखाता और सायरा मुस्कुरा देती। एक और तस्वीर भी थी; दो बच्चों की प्यारी तस्वीर! बेटा करीब पाँच साल का और गुड़िया की तरह गोल-गोल गाल वाली तीन साल की बच्ची। वह उन दो बच्चों की सोचकर कभी-कभी रोने लगती।

सायरा का स्वास्थ्य ऐसे असहाय पड़ाव पर आ गया था कि उसकी काया तो मानो कंकाल हो! कभी उससे वेदना के कारण कर्ण भेदी चीख सुनाई पड़ती, तो कभी वह अपनी असमर्थता से दुखी होकर लगातार धीमे-धीमे कराहती। अब्दुल अली उसकी किसी भी प्रतिक्रिया से रुष्ट नहीं होते। सुबह छः बजे से लेकर रात के सात बजे तक प्रतिदिन उतनी ही कोमलता से और तत्परता से सायरा की देखभाल करते। सुबह आठ बजे तक नहला-धुलाकर उसके केश-रहित सिर को दुपट्टे

से सलीके से ढँक देते। उसके हल्के-फुल्के शरीर को गोदी में उठाकर रेडियो थेरपी के लिए ले जाते। रेडियो थेरपी उस समय कोई चमत्कारी उपचार नहीं था, वेग से बढ़ते हुए ट्यूमर को कम से कम घटाने वाली स्थिति तक लाने के लिए एक सहारा-भर था। ताकि उसके फैलाव के दुष्प्रभाव भी घट जाए, विशेषकर दर्द और सीशर, यानी मिर्गी के दौरे। सायरा ऑक्सीजन और सेलाइन के सहारे जी रही थी, यदि दर्द का इन्जेक्शन समय से न मिलता, तो छटपटाने लगती। पिछले कुछ दिनों से मिर्गी के दौरे जब-तब पड़ने लगे थे। सिर के भीतर इतना दाब बढ़ गया था कि दवाइयों का प्रभाव कम होता जा रहा था। कुल मिलाकर एक ऐसे मोड़ पर रुकी थी सायरा कि आत्मा किसी भी क्षण उसकी देह को छोड़कर जा सकती थी। कभी-कभी उसकी वेदना देखकर सोचती कि ईश्वर भी इतना निर्मोही होता है, जाने ऐसी यातना क्यों दे रहा है! फिर अब्दुल अली का प्यार-दुलार और धैर्य देखती, तो अपने आप लज्जित हो जाती। एक पलड़े में उसके पति को ऐसी अद्भुत श्रद्धा भी तो दी है उसी प्रभु ने!

उसी वार्ड में मेरी सबसे पसंदीदा मरीज़ थी "जसप्रीत", मेरी प्यारी सिखनी। उसके दाहिने पैर को घुटनों से ऊपर काट दिया गया था। यहाँ हर कहानी का खलनायक, तो कैंसर ही था। वो दिन भर बैसाखी के सहारे चलती हुई कभी किसी की मदद करती, तो कभी किसी को हँसाती। किसी ने उसे अपने दुर्भाग्य पर दुखी होते हुए नहीं देखा। पूरे वार्ड में आशा की किरण फैलाती थी, खिलखिलाकर हँसने वाली "जसप्रीत"। अपनी इच्छा से कभी मेरे लिए गुरुद्वारे से इलायची वाली चाय बनाकर लाती, तो कभी कड़ा प्रसाद खिलाती। यदि व्यस्तता के कारण मैं खाना खाना भूल जाती, तो वो आकर पूछती "छोटी मैडम जी, आपने खाना खाया?" सुबह की ड्यूटी में बड़ी मैडम थी, जो कि मेजर के पद पर थी और उनके साथ मैं कप्तान मैडम थी। सबके लिए हमारे यही नाम थे और हमारी पहचान भी यही

थी। अगर मैंने नहीं में उत्तर दिया, तो तुरंत दूध का गिलास उठा कर ले आती “पियो मैडम जी, दूध है वॉनडरफुल” वो दूध के टीवी में प्रचलित विज्ञापन की नकल उतारती हुई नाटकीय अंदाज़ में बोलकर सबको खूब हँसाती। उसके इन स्नेहपूर्ण आग्रह को कोई ठुकरा कैसे सकता था? बस एक दिन उसकी आँखों में आँसू दिखे थे, जब वह सायरा के बच्चों के बारे में बातें कर रही थी। “कम अज़ कम, अपनी नानी के पास हैं, बच्चे प्यार से पल रहे हैं।”

एक दिन मैंने जसप्रीत से कुछ ऐसी बातें सुनी, जिसे सुनकर क्रोध और संताप दोनों भावनाएँ उमड़कर उपद्रव मचाने लगी। चार-पाँच महिलाएँ गर्भाशय ग्रीवा के कैंसर की शिकार थीं, जिनमें से तीन को उनके पतियों ने त्याग दिया था! अपने घर से लाकर मैके में छोड़ दिया था। ऐसे में उन्हें कर्क रोग कम कष्टदायक प्रतीत हुआ होगा। इस प्रकार केवल जानलेवा रोग ही नहीं, निर्दयी प्रकार से छोड़े जाने की उदासी भी झेलनी पड़ी उन्हें। उनमें दो मरीजों को गाँव के किसी सज्जन पुरुष ने बचा लिया। उनको सरकारी अधिकार की जानकारी दी और फौजी अस्पताल में निःशुल्क उपचार के लिए भर्ती करवाया। आभा भी ऐसी ही एक स्त्री थी, उसके दो छोटे बेटे उसकी माँ के घर पल रहे थे। छोटी बहन उसकी देखभाल के लिए उसके पास वार्ड में रुकी थी। कोई अपने बच्चे की देखभाल की चिंता करता, कोई उनकी पढ़ाई की चिंता करता, तो कोई अपने पति की या माँ-पिताजी की। अपनी चिंता तो तब होती, जब दर्द हृदय से बढ़ जाता। उपचार के दुष्प्रभाव मर्ज की ही तरह भयावह थे। जसप्रीत का पति अच्छा जीवनसाथी था, उसके इस संघर्ष में हर पल उसके साथ रहनेवाला। दो वर्ष पूर्व ही उसकी शादी हुई थी। उन्होंने तय किया था कि कैंसर को अपने जीवन में हावी नहीं होने देंगे। जब तक हो सके उससे लड़ेंगे और अपनी यही हिम्मत औरों को देते रहेंगे। इन प्रेरणादायक कहानियों को सुनकर मैं विह्वल हो जाती। उड़िया अम्मा जो इशारों से मुझे

समझाती कि उन्हें मुँह के कैंसर के कारण वेदना हो रही है, दवाई पाते ही वो मुझे अपनी भाषा में आशीर्वाद देती। उनके हाथ अनजाने में मेरी माड़ से बने कैप बिगाड़ देते, लेकिन उस स्नेह के आगे मेरी कैप का कोई महत्त्व नहीं था! अठारह वर्षीय अंजलि जिसे होडजकीन लिम्फोमा था, अपनी किताब में लगातार चित्र बनाती रहती। जसप्रीत उसे चुटकुले सुनाकर हँसाती नहीं, तो बेचारी अपनी निराशा में ही डूबकर मर जाती। अपने माता-पिता के सामने मुस्कुराकर उनका ढाढ़स बाँधती, लेकिन उनके जाते ही दोबारा अपने कवच में घुस जाती!

उस दिन भी जसप्रीत मेरे पास खड़ी थी, जब अब्दुल अली ने अपनी विनती दोहराई। मैंने सबको दवाइयाँ देकर अपने हाथ धोए ही थे। आज अब्दुल अली का चेहरा इतना बुझा-बुझा सा लग रहा था कि मेरे मुँह में बोल आकर खामोश हो गए। सायरा दो दिन से उन्हें पहचान नहीं रही थी, वो बच्ची की तरह अपनी खीज दर्शाती, किन्तु अब्दुल अपनी व्यथा किसे सुनाता या दिखाता? “क्या हुआ अब्दुल भाई?” जसप्रीत ने मेरी ओर से फिर जाँच पड़ताल शुरू की।

अब्दुल की आँखों में आँसू भरे थे और स्वर रूँधा था, आज उन्हें देखकर और अधिक संताप का आभास हुआ। “मैडम जी आज आप मुझे सायरा के साथ रहने की पर्मिशन दे दें, प्लीज़। बस एक मेहरबानी कर दो मैडम, आपको सारी उम्र दुआएँ दूँगा।” प्रतिदिन शाम साढ़े-सात बजे तक सायरा का मुँह-हाथ धुलाकर उसका कंबल और तकिया आदि उसके आरामानुसार व्यवस्थित करके अब्दुल अली चले जाते थे। फेमिली वार्ड का नियम था कि कोई मर्द वहाँ साढ़े-सात बजे के पश्चात् नहीं रुक सकता था, क्योंकि ये जनाना वार्ड था। नौ बजे तक मुख्य-रसोई से रात का दूध लाने के बाद, आया सभी दरवाज़े बंद कर देती थी। सब महिला-रोगियों की सुरक्षा का ऐसा प्रश्न मेरे सामने कभी क्या आता, ऐसा प्रश्न तो किसी अनुभवी नर्सिंग ऑफिसर के

सामने भी संभवतः आया न हो। मैं अपने आंतरिक द्वंद में फँसी थी कि आया ने अपनी राय दी “ऐसे तो अलाव नहीं है, भाई साहब। मैं तो दस साल से काम कर रही हूँ!” सफ़ाई वाली अम्मा तो आँचल में मुँह छिपाकर हँसने लगी, उसे ये आग्रह शायद हास्यास्पद लगा हो। मेरा मन अपने संघर्षों से जूझ रहा था, अपने दिल की सुनूँ या केवल नियम पालन करूँ? कुछ तो निर्णय लेना था। अब्दुल की आँखों से अविरल अश्रुधारा बहे जा रहे थे। चाहे वो जितनी भी मानसिक यातना सह रहे हों, इससे पहले उन्हें इस प्रकार रोते नहीं देखा। “आज ही की बात है मैडम जी बस, कल नहीं पूछूँगा। बस आज एक रात।” उनके विनम्रतापूर्ण निवेदन ने मेरा दिल तोड़ दिया, मेरी आँखें डबडबाने लगी। जाने कब पीछे से अंजलि, आभा और अन्य कई रोगी भी हमारे पास आकर खड़े हो गए। जब कुछ रोचक घट रहा हो, तब निमंत्रण की आवश्यकता नहीं होती। उड़िया अम्मा भी हाव-भाव दिखाकर पूछने लगी “क्या हुआ?” उनकी आँखें रोते हुए अब्दुल से मेरे चिंतित चेहरे के मध्य झूला झूलती रहीं। आभा ने मेरी दुविधा भाँप ली और मेरे पास आकर अधिवक्ता के रूप में बोली “मैडमजी, प्लीज़ इन्हें रहने दीजिए न आज, कितनी विनती कर रहे हैं! ऐसे तो इनको कभी रोते नहीं देखा। दिल में जितना भी दुख हो, पर हमेशा सायरा को बच्चों की तरह समझा-बुझाकर उसकी सेवा करते रहते हैं। कभी-कभी तो सायरा उन्हें खीजकर मार भी देती है, जैसे बच्चे करते हैं, पर ये भाई साहब सब चुपचाप सहते हैं! आपने तो बस दो-तीन हफ़्ते से अब्दुल जी को देखा है, हम तो दो महीने से उन्हें जानते हैं। इनसे सीधा आदमी तो मैंने आज तक नहीं देखा।” जसप्रीत ने अपनी वकालत की “सच बात है मैडमजी, इनसे किसी को क्या खतरा हो सकता है?” “पर फेमिली वार्ड में आदमी अलाओ नहीं है” हमारी आया, शांता बाई अपने नियम पर डटी रही। “सिर्फ़ डॉक्टर साहब अलाओ है, मुझे मालूम है। मैडम कॉल करेंगी, जब

कोई ईमर्जेंसी होगा। दवा-दारू, चेकअप के बाद मैं फिर से सब दरवाज़े बंद कर दूँगी।” “क्यों?” सदैव चुपचाप रहनेवाली अंजलि ने कारण पूछा, तो शांता बाई कुछ हैरान दिखी। “हमारी ज़िम्मेदारी है सब लेडीज़ पेशेन्ट हैं न। कुछ बदल जाएगा तो मैडम को मेट्रन को जवाब देना होगा!” “हम सब मैडम का साथ देंगे, कोई हमारी सुरक्षा के बारे में हमसे भी तो पूछे!” छुई-मुई अंजलि ने जब इतने आत्मविश्वास से कहा, तो आभा और जसप्रीत ने भी उसकी हाँ में हाँ मिलाई। “मैडम जी रहने दो अब्दुल जी को” अबकी बार आभा की आँखों से आँसू बड़े वेग से बहने लगे। “ऐसे भाग्य लिखाकर आई है सायरा, काश हमारे पति को इन की तरह सात फेरे का मतलब पता होता। विवाह के तीन वर्ष तक इस बदन को खूब लूटा, जब इसमें कैंसर आ गया, तो मेरे मायके छोड़ आए! आज तक न मुझे चिट्ठी लिखी, न ही पूछा कि ज़िन्दा हूँ या नहीं।” फिर सख्ती से आँसू पोंछती हुई बोली “आपको मेरी कसम मैडम जी, इनको आज रात ठहरने दो।”

एक तो मेरे अनुभव का अभाव, दूसरा फौज की कड़ी अनुशासन प्रणाली की दो-धारी तलवार मेरे सामने तांडव कर रही थी। अंत में अब्दुल भाई को रहने की अनुमति दे ही दी। सुबह छः बजे सायरा इस संसार को त्याग परमात्मा के पास चली गई। अब्दुल बच्चों की तरह बिलख-बिलखकर खूब रोये। उड़िया अम्मा उन्हें अपने बच्चे की भाँति सीने से लगाकर धीरज दिलाती रही। एक पल में भाषा अपनी पहचान खोकर भावना में विलीन हो गई। उस समय माँ का दर्जा केवल उनके पास था। उनका दुख मुझसे तो क्या, किसी से भी देखा नहीं जाता था। सात बजे जब तक जसप्रीत के पति कर्तार सिंह वार्ड में नहीं आए, तब तक अब्दुल सायरा के बिस्तर के पास ही बैठा रहा। सायरा के मृत शरीर को नहला-धुलाकर तैयार भी करना था। कर्तार जी ने अब्दुल को बलपूर्वक उठाया और किसी तरह उसे ड्यूटी रूम तक ले आया। मैंने उनके लिए

चाय और नाश्ता रखवाया था। “यार अब्दुल क्या करें, हम सब के साथ सब ने बड़ा बुरा किता। लेकिन देख छोटी मैडम जी ने बड़ी बहादुरी दिखाई, किसी करनल मैडम ने भी ऐसा काम नहीं किया। इन्होंने तुझे सायरा बी के साथ रहने दिया न?” अब्दुल को अचानक कुछ याद आया, हाथ जोड़कर बोलने लगा “ये एहसान कभी नहीं भूलूँगा, आप भूल जाओगे मैं नहीं भूलूँगा। अल्लाह ताला आपको हमेशा खुश रखे।” “यार मैडम जो चाहती है, वो भी कर ले मेरे भाई। वे चाहती हैं कि तू थोड़ा हाथ—मुँह धोकर चाय—नाश्ता कर ले” वरना हमारी मैडम अपना काम कैसे करेगी। तुझे पता है न सुबह वाली सब मैडम इनसे सीनियर हैं, डॉट खिलवाएगा?” किसी तरह

अब्दुल ने चाय पी और कुछ खाया। उसकी आँखें धँसी हुई थी, चेहरा बेजान लग रहा था, जाने कितने दिनों से वो सोया नहीं था। कर्तार ने उसके साथ सारी सरकारी कार्यवाही समाप्त की।

उस दिन किस तरह मैं वापस हॉस्टल पहुँची और रात को कैसे सायरा के बिस्तर को खाली देखकर अपनी झूटी निभा सकी, मालूम नहीं! इस घटना को बीते पच्चीस वर्ष हो गए, किन्तु अब्दुल का चेहरा अब—तब आँखों में घूम जाता है। ईश्वर से अब्दुल जैसे मनुष्य बनाने की दुआ करती हूँ, जो अपने रिश्ते निभाना जानते हैं। उम्मीद करती हूँ कि खुदा मेरी भी ये गुजारिश सुन ले!

**cs\_preethi@hotmail.com**



# जर्मनी की एक यादगार यात्रा

— डॉ. काजल पाण्डे  
पुणे, भारत

मैं लुपथांसा एयरलाइंस द्वारा जर्मनी के डार्मस्टाट नामक स्थान पर घूमने गई थी, जो जर्मनी के फ्रैंकफर्ट विमान क्षेत्र से 25 कि.मी. दूर है। मैं नई दिल्ली आई.जी.आई. हवाई अड्डे से रवाना हुई और उड़ान के 6 घंटे के बाद फ्रैंकफर्ट विमान क्षेत्र पर पहुँची। फ्रैंकफर्ट, जर्मनी में स्थित एक प्रधान अंतरराष्ट्रीय विमान क्षेत्र है। मेरे लिए आश्चर्य की बात यह थी कि हवाई जहाज में उपलब्ध भोजन भारतीय था, जो कि बहुत ही स्वादिष्ट था और विमान परिचारिका हिंदी में बातचीत कर रही थी। इससे साफ पता चलता है कि भारत और भारत की सम्मानीय भाषा हिंदी की कितनी लोकप्रियता है।

फ्रैंकफर्ट विमान क्षेत्र से मैंने 26 यूरो में डार्मस्टाट के लिए टैक्सी ली। मैं डार्मस्टाट में अटलांटा नामक होटल में रही। होटल स्टाफ बहुत ही विनम्र था और होटल प्रबंधक ने शहर का नक्शा प्रदान किया, जिससे मुझे डार्मस्टाट घूमने में कोई परेशानी न हो। डार्मस्टाट में सिटी सेंटर, ऑल्ड थिएटर आदि जैसे कई पर्यटक आकर्षण हैं।

डार्मस्टाट में और उसके आस-पास के स्थानों पर घूमने के लिए ट्राम सबसे सस्ता साधन है, जिससे मैं सिटी सेंटर गई, जिसे डार्मस्टाट के 'दिल' के रूप में भी जाना जाता है। जिसमें किला, लुइसप्लात्ज़ (स्तंभ) और मार्केट स्क्वायर है, जो लोकप्रिय पर्यटक स्थलों में से एक है।

सिटी सेंटर के पास, आप लुडविग हॉर्स स्टैच्यू और लायन स्टैचू भी देख सकते हैं, जो अपनी महिमा में खड़े हैं। अन्य प्रसिद्ध स्मारक ओल्ड थिएटर (हेसिसस लैंडस्कोरिव) है, जिसे 1819 में जॉर्ज मोलर द्वारा 2000 से अधिक सीटों के साथ

बनाया गया था। आज इसमें हेसे के संग्रह और फोयर (लॉबी) है, जो 1870 की पुनर्निर्मित शैली में बहुत प्रभावशाली लगती है। भवन के सामने विशाल स्थान पर, समय-समय पर सर्कस और अन्य शो के टेंट लगाए जाते हैं। पुराना थिएटर केवल सप्ताह के दिनों में जनता के लिए खुला रहता है।

घूमने के लिए एक और ऐतिहासिक स्थान हीडलबर्ग शहर है, जहाँ हीडलबर्ग नामक किला है, जो कि डार्मस्टाट से 60 कि.मी. दूर है और जहाँ टैक्सी द्वारा पहुँचा जा सकता है। यह जर्मनी में एक प्रसिद्ध किला है और हीडलबर्ग शहर का प्रमुख आकर्षण है। किला आल्प्स के उत्तर में सबसे महत्वपूर्ण पुनर्जागरण संरचनाओं में से है।

हीडलबर्ग किले में दुनिया की सबसे बड़ी शराब केग का घर है। किले के सामने नेकर नदी है, जिसके ऊपर एक पुराना पुल है।

नेकर नदी का दृश्य और हीडलबर्ग किले से शहर के दृश्य लुभावने लगते हैं। हीडलबर्ग किला शहर के सबसे ऊपर स्थित है। यह एक भव्य पुराना और सुंदर किला है। एक बार किले के ऊपर जाकर नदी के लुभावने दृश्यों के साथ शहर की पुरानी से पुरानी इमारतों का नज़ारा भी देखा जा सकता है। हीडलबर्ग किले में कई अच्छी मूर्तियाँ और खंडहर हैं।

जर्मनी से वापस अपने भारत देश में लुपथांसा एयरलाइंस से ही आई, जिसमें एक बार फिर से भोजन भारतीय था, जो कि काफी स्वादिष्ट था।

जर्मनी की इस शानदार यात्रा के दौरान मैंने इस बात पर ध्यान दिया और इसकी सराहना भी की कि सभी जर्मन लोग अपनी भाषा का ही प्रयोग



करते हैं, चाहे आप वो भाषा जानते हो या नहीं। वे और कोई भाषा में आपसे बात नहीं करेंगे। इससे साफ तौर पर पता चलता है कि वे अपने देश की भाषा का कितना सम्मान करते हैं। सभी सार्वजनिक स्थानों पर सफाई रहती है। जर्मन लोगों को फूलों से बहुत लगाव है, आपको प्रत्येक के घर में फूल जरूर दिखाई देंगे।

हमें भी अपने दैनिक जीवन में इन गुणों को

शामिल करना चाहिए और भारत को एक पर्यटक स्थल के रूप में और अच्छा बनाने का प्रयास करना चाहिए।

निम्नलिखित लिंक डार्मस्टाट में अन्य पर्यटक आकर्षणों के बारे में अधिक जानकारी दे सकता है: <http://www.planetware.com/tourist-attractions-/darmstadt-d-hs-dar.htm>

**kajaldelhi2001@gmail.com**

## गंजे पहाड़ों का सौंदर्य

— सोनी स्वरूप  
वाराणसी, भारत

राहुल सांकृत्यायन का यात्रावृत्तांत पढ़ा रही थी, लहासा की ओर, जिसमें उन्होंने तिब्बत का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है। उस पाठ को जैसे मैं जी रही थी। इतनी जल्दी लद्दाख जाने का कार्यक्रम बनेगा आश्चर्य हो रहा था। पहाड़ों के प्रेम के प्रति मेरी दीवानगी ने मुझे ऑफ सीज़न में लद्दाख जाने के लिए प्रेरित किया, सो अक्टूबर माह के मध्य में दिनांक 17 को दिल्ली पहुँची और 18 अक्टूबर की सुबह हल्की गुलाबी ठंड के साथ सुबह सूर्य देव के दर्शन लद्दाख के लेह एअरपोर्ट पर किए। कितनी रोमांचक होने वाली थी यह लद्दाख यात्रा, इसका अनुमान मुझे हवाई जहाज़ की लैंडिंग से ही हो गया था। चारों तरफ भूरी-भूरी खाकी पहाड़ियों से घिरा हुआ, कहीं बर्फ़ीला, तो कहीं चट्टानी हिमालय। वहाँ का हवाई अड्डा सेना का है। बहुत ही कुशल अनुभवी चालक जहाज़ को वहाँ पर उतार सकता है। आई.टी.बी.एफ. के अतिथि गृह में खारदुंगला रूम हमें मिला, जिस में कभी इंदिरा गांधी ठहरी थी। चांगला में हमारे मित्र का परिवार ठहरा था। अतिथि गृह की एक बात मुझे दिलचस्प लगी कि हमारे ठहरने के कमरों के नाम हिमालय के

विभिन्न दर्रे यथा खारदुंगला, चांगला आदि के नाम पर रखे गए थे। 1 घंटे के बाद ही मुझे सर कुछ भारी-सा मालूम हुआ और लगा कि श्वास लेने में कुछ कठिनाई महसूस हो रही है। कारण स्पष्ट था कि अधिक ऊँचाई होने के कारण वहाँ ऑक्सीजन के स्तर के साथ तापमान भी कम था, जिसका प्रभाव होना स्वाभाविक था। अतिथि गृह में लकड़ी के बने छोटे-छोटे कमरों में जाने का मन नहीं कर रहा था। कमरों से अधिक ऑक्सीजन मुझे बाहर प्रतीत हो रही थी। मैंने कुछ देर सोने का प्रयास भी किया, लेकिन सो नहीं सकी। शाम होने तक मैं और पुत्री दोनों सर दर्द और भयानक ठंड से ग्रस्त हो गए। मुझे और बेटी को उल्टियाँ भी होने लगी। डॉक्टर द्वारा दी गई डॉमेक्स दवाई खाई। मैं कुछ तनाव में आ गई कि बेकार ही ठंड के मौसम में मैंने लद्दाख की यात्रा का कार्यक्रम रखा। बच्चों को उल्टियाँ करते देख मैं कुछ घबरा-सी गई थी, परंतु अगले ही क्षण कमरे से बाहर आई और जैसे ही मेरी नज़र विशाल पहाड़ों की ओर गई न जाने तनाव कहाँ छूँतूर हो गया था। ऐसा लगा जैसे तटस्थ पर्वत शृंखला मुझसे कह रही हो क्या

तुम मेरे सौंदर्य को बिना आत्मसात किए ही लौट जाओगी। यह विचार आते ही मैंने वापस जाने का विचार त्याग दिया। अक्टूबर माह में लेह में तापमान के अत्यधिक गिर जाने के कारण हरियाली लगभग समाप्त होने लगती है, जिसके कारण ऊँचाई पर ऑक्सीजन और उसका स्रोत दोनों ही कम हो जाते हैं। कुछ देर बाद हमने तय किया कि पास में बने स्थानीय बाजार में ही टहल लिया जाए। शाम के 4.00 बजे थे और ठंड कुछ ज्यादा ही बढ़ रही थी। हमने जल्दी से गेस्ट हाउस वापस आकर भोजन किया व अपनी-अपनी रजाइयों में दुबक गए।

अगले दिन डॉर्जी हमको मैगनेटिक हिल्स और गुरुद्वारा पत्थर साहिब के दर्शन कराने ले गया। वीरान पथरीले पहाड़ों के बीच से गुजरते हुए लेह से श्रीनगर की ओर जाने वाले हाईवे पर थे। डॉर्जी ने बताया कि सामने जो काली पहाड़ियाँ दिखाई दे रही हैं, वही मैगनेटिक हिल्स कहलाती हैं, क्योंकि उन पहाड़ियों में चुंबकीय शक्ति है, जो गाड़ियों को करीब 20 किलोमीटर प्रति घंटे की रफ़्तार से खींच लेती है। डॉर्जी ने गाड़ी को न्यूट्रल कर दिया फिर भी गाड़ी आगे बढ़ रही थी। मैंने बिना किसी देरी के इन क्षणों के वीडियो बना लिए। हमें बताया गया कि पहाड़ी की चुंबकीय शक्ति से आसमान में उड़ने वाले जहाज़ भी नहीं बच पाते हैं। अतः चुंबकीय शक्ति से बचने के लिए जहाज़ की रफ़्तार बढ़ा दी जाती है। यह सब कुछ देखकर मैंने दांतों तले अंगुली दबा ली। प्रकृति कितनी संतुलित दिखाई दे रही थी मुझे। दर्शन और विज्ञान का अद्भुत संगम था यह स्थान। निम्मू नामक स्थान पर लेह के आसपास के अंतिम नज़ारे के रूप में था सिंधु और जांस्कर का संगम। लद्दाखी पहाड़ उत्तराखंड के पहाड़ों से पूर्णतया भिन्न थे। यह पहाड़ काले, भूरे, हलके स्लेटी रंग के गंजे पहाड़ थे, जिनपर एक भी पेड़ दिखाई नहीं दे रहा था। बिना पेड़ों के भी ये पर्वत बेहद खूबसूरत प्रतीत हो रहे थे। प्रायः सब की धारणा रहती है कि पहाड़ों की खूबसूरती बढ़ाने में

पेड़ों का अत्यधिक साथ रहता है, लेकिन लद्दाखी पहाड़ इस मामले में कुछ अलग ही हैं, इन पहाड़ों पर पेड़ों का ना होना ही उनका वास्तविक सौंदर्य है। दूर नीचे मटमैले और नीले रंग की जलधारा आपस में मिलती हुई दिखी। जांस्कर और सिंधु के इस संगम को देखकर तो मन में जैसे हिलोरें उठने लगीं। यह वही सिंधु नदी है, जिसके बारे में इतिहास की किताबों में पढ़ा था। वह सिंधु नदी, जो मानव जीवन की प्रथम अत्यधिक विकसित सभ्यता की जन्मदात्री है। दो अलग-अलग नदियों का पानी मिलकर भी ना मिलने जैसा था। प्रकृति के इस अद्भुत नज़ारे को देख मन प्रफुल्लित हो उठा। यह वही सिंधु नदी है, जो कभी अपनी बाढ़ों के लिए भी प्रसिद्ध रही थी, परंतु अब यह संकुचित हो चुकी है। इसके आसपास का क्षेत्र लाल मोरम और सफ़ेद रेत से बना है। गर्मी के दिनों में हिम खंडों से इसमें ग्रीष्म ऋतु में ही पानी अच्छी मात्रा में दिखता है। आसपास के पहाड़ों पर पत्थर कुछ गोल प्रकार के हैं, संभवतः सिंधु नदी बहुत विस्तृत और अधिक ऊँचाई पर भी रही होगी तथा पानी के बहाव से ही ये पत्थर गोल चिकने हुए होंगे और कभी उसी जल का एक भाग रहे होंगे। अब हम गुरुद्वारा पत्थर साहिब के दर्शन के लिए आगे बढ़ चले। जम्मू कश्मीर भारत का एकमात्र ऐसा राज्य है, जहाँ से सिंधु नदी होकर गुज़रती है। कड़ाके की ठंड में संगम से लौटते हुए पहाड़ों के मध्य एक विश्वविद्यालय भी मिला। देखकर ऐसा प्रतीत हुआ कि वहाँ इतनी दूर कौन पढ़ने आता होगा। लद्दाख में विशेषकर उच्च शिक्षा के केंद्र बहुत ही कम हैं, ज्यादातर युवक लद्दाख से पढ़ने श्रीनगर, चंडीगढ़ या दिल्ली जाते हैं। इन काले पहाड़ों का सौंदर्य बरबस मुझे अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। एक खाली रोड और दूर-दूर तक छाई हुई वीरानी। किसी का नामोनिशान तक नहीं था। शीत लहरी की ध्वनि कानों में मादक स्वर घोल रही थी। रास्ते में दिखाई पड़ने वाले पेड़ ठंड की वजह से हरे ना

होकर हलके लाल व भूरे रंग के दिखाई दे रहे थे। इन वृक्षों की अपनी ही खूबसूरती थी। लाल रंग ठंड के साथ अपने-अपने प्रेम की कुछ अनकही दासताँ कह रहा था। रास्ते में स्कूल कॉलिज में पढ़ने वाले छात्र दिखाई देते, तो मैं अत्यंत प्रसन्न हो जाती। इस प्रकार गुरुद्वारा पत्थर साहिब के दर्शन कर हम शाम तक अतिथि गृह आ पहुँचे। शहरों के कोलाहल से दूर सन्नाटों को बुनते लद्दाख से मुझे कब प्रेम हो गया था, मालूम ही न चला। कठिनाइयों से भरा जीवन फिर भी जीवंत मुस्कान अविरल! काश! काश! कि हर लम्हा रुक सकता। अगले दिन मॉनेस्ट्रीज़ के दर्शन करने निकले। रास्ते में हर स्थान, पहाड़ों पर तोरण द्वारों पर रंग-बिरंगे कपड़े की झालरनुमा पट्टियाँ लगी रहती हैं। इन रंग-बिरंगी झालरों में 'ओम मनी पदमने हुम' मंत्र लिखा रहता है। झालरों को शुभ माना जाता है। लद्दाखियों का मानना है कि यह मंत्र किसी भी प्रकार के अनिष्ट से हमें बचाता है। लद्दाखी मानते हैं कि गिट्टी के ऊपर गिट्टी रखकर माँगने से समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। वापस लौटकर हमने विश्व शांति हेतु बनाया गया शांति स्तूप देखा और उसके बाद हॉल ऑफ़ फ़ेम गए, जो सीमा पर शहीद हुए हमारे जवानों की याद दिलाता है।

लेह से पैंगोंग की ओर जाते वक्त रास्ते में शे नामक गाँव में एक स्कूल है टुक पदमा कारपो स्कूल। श्री ईंडियट्स फिल्म ने इस विद्यालय को प्रसिद्ध बना दिया था। इस विद्यालय को रेंचो स्कूल के नाम से भी जाना जाता है। पथरीले रास्तों से होकर इस विद्यालय को देखने का एक कारण यह भी था कि मैं स्वयं भी शिक्षा जगत से जुड़ी हूँ। एक गरिमामय संस्थान के रूप में यहाँ किसी भी प्रकार की गंदगी फैलाना, फोटोग्राफी करना, खाना-पीना आदि प्रतिबंधित है। बाहर से स्कूल का परिसर अनोखा तो था ही, अंदर से भी वह अन्य स्कूलों से कुछ अलग था। इस कमरे की दीवारों पर श्री ईंडियट्स फिल्म की शूटिंग की बहुत सारी तस्वीरें टंगी हुई थी। एक फोटो में आमिर खान थे और वह इसी

कमरे के अंदर का दृश्य था। शिक्षिका ने विद्यालय के बारे में बताया कि सुदूर क्षेत्रों से आने वाले बच्चों का विशेष ध्यान रखा जाता है। हमारा यह प्रयास रहता है कि विद्यालय में दूरदराज़ के गरीब बच्चों को प्रवेश मिल सके। यह एक आवासीय विद्यालय है, जहाँ रहना-खाना मुफ्त है। श्री ईंडियट्स रिलीज़ होने के पश्चात् ही यह विद्यालय प्राकृतिक आपदा से क्षतिग्रस्त हो गया था। जिसे आमिर खान व राजकुमार हिरानी द्वारा पुनर्जीवित किया गया। यह विद्यालय सौर ऊर्जा से संचालित है, अतः इसे पर्यावरण सुरक्षा संबंधी पुरस्कार भी मिलते रहे हैं। ऐसी वीरान जगह पर बच्चों का आकर पढ़ना आश्चर्यजनक है। यह किसी गुरुकुल से कम प्रतीत नहीं होता। विद्यालय के समीप ही नरोपा फोतांग नाम का एक बौद्ध मठ है। मुझे कुछ बौद्ध बच्चे वहाँ नज़र आए, जिनके साथ हमने फोटो ली। मैंने लद्दाखी शब्द 'जुले' का प्रयोग करना सीख लिया था। नमस्ते, प्रणाम, अच्छा लगना, धन्यवाद आदि के लिए 'जुले' शब्द का इस्तेमाल किया जा सकता है, सो मैंने उनसे 'जुले' कहा। उनके मासूम चेहरों पर मुस्कुराहट खिल गई। उन्होंने मुझे नमस्ते कहा। यह जानकर कि उन्हें हिंदी भाषा से विशेष लगाव है, मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई।

अब हमें सिलसिलेवार रूप से अलग-अलग गोम्पा अर्थात् बौद्ध मठों को देखने जाना था। 11वीं से लेकर 18वीं शताब्दी के मध्य बने मठ, जहाँ समृद्धि और संपत्ति के प्रतीक हैं, वहीं ये आज भी धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक गतिविधियों के महत्त्वपूर्ण केंद्र हैं। पहाड़ों की चोटी में स्थापित मठों का उद्देश्य निश्चित तौर पर सांसारिक कोलाहल से दूर आध्यात्मिक विकास के लिए किया गया होगा। इन मठों के भीतर छोटे और बड़े कक्ष बने हुए हैं, जहाँ प्रार्थना व ध्यान किया जाता है। हवाई अड्डे से कुछ दूरी पर स्पितुक मठ है। इस मठ के ऊपरी भाग में भगवती तारा का मंदिर है। मूर्ति साल भर कपड़े से ढँकी रहती है, केवल जनवरी माह में 2

दिन के लिए ही इस आवरण को हटाया जाता है। यहाँ 11 सिर वाली अवलोकितेश्वर तथा बुद्ध की एक सुंदर प्रतिमा भी स्थापित है। यहाँ तक काली माँ का मंदिर भी है।

इसी प्रकार थिकसे मठ भी अत्यंत सुंदर है। इसके ऊपरी भाग में रिनपोच या लामा के लिए स्थान है। वहाँ की दीवारें अत्यंत सुंदर चित्रों और कलाकृतियों से सुसज्जित हैं। स्थानीय भाषा में थिकसे का अर्थ है पीला। यह गोम्पा पीले रंग का होने के कारण थिकसे गोम्पा कहलाता है। यह गोम्पा तिब्बती वास्तु कला का बेजोड़ उदाहरण है। हमने नीचे आकर एक रेस्तोराँ में स्थानीय व्यंजन के रूप में स्वादिष्ट थुकपा खाया। शंकर गोम्पा लेह बाजार में ही स्थित है। यहाँ पर पैदल ही पहुँचा जा सकता है। यह 200 वर्ष से अधिक पुराना है और इसकी चित्रकारी अद्भुत है। शाम हो रही थी और अब हमें अतिथि गृह वापस जाना था। इतना घूमने के पश्चात् हम मात्र के लिए भी नहीं थके थे। यह लद्दाख का प्रभाव ही था, जिसने मुझे कुछ ही दिन में अपना मुरीद बना लिया था। आज रात के खाने में विशेष प्रकार की कढ़ी थी, जिसे देखकर मेरे मुँह में पानी आ रहा था। जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे, लद्दाख की यात्रा रोमांचकारी होती जा रही थी। रात्रि में एकाएक नींद खुली, तो पाया कि बर्फ गिर रही है। मुझे इसी क्षण का इंतज़ार था। छतरी लेकर हम ताज़ी गिरी बर्फ का लुत्फ लेने लगे। मन हिलोरें ले रहा था। लद्दाख की सम्मोहन शक्ति ने अपना कार्य करना आरंभ कर दिया था।

सुबह नुब्रा के लिए हमें खारदुंगला होकर जाना था। तैयार होकर मैं बाहर निकली और पहाड़ों की ओर देखा, कल शाम तक जो पहाड़ काले दिख रहे थे, वे अब सफ़ेद दिख रहे थे, लग रहा था जैसे उस पर किसी ने सफ़ेद नमक बुरक दिया हो। मुझे अंदाज़ा हो गया था कि आज मौसम का खामियाज़ा हमें भुगतना पड़ सकता है। बहरहाल हम पूरी तैयारी के साथ नुब्रा के लिए निकल पड़े। रास्ते में

तरह-तरह के पहाड़ों से रूबरू होते हुए हम बढ़ रहे थे। अभी तक हमें पहाड़ों पर बर्फ नहीं दिखाई दी थी, जैसे ही हम साउथ पुल्लू, सियाचिन ग्लेशियर पर पहुँचे वहाँ का पास, खराब मौसम की वजह से बंद कर दिया गया। डॉर्जी ने बताया कि ऊपर अगर मौसम और खराब हुआ, तो संभवतः हमें वापस भी जाना पड़े। यह सुनना था कि हमने यह निश्चय किया कि बच्चे बर्फ में यहीं पर खेल लें। चारों तरफ़ वादियाँ सफ़ेद थीं और ठंड अत्यधिक। हमने आगे पैदल जाकर पता किया, तो मालूम हुआ बुलडोज़र से रोड पर पड़ी बर्फ हटाई जा रही है। लगभग 3 घंटे पश्चात् हम खारदुंगला के लिए बढ़े। उस बीच हमने बर्फ पर बर्फीला गुड़ड़ा बनाकर, उसे सजा-धजाकर तैयार कर दिया था। लेह आने के पश्चात् यह पहला अवसर था, जब हमें बर्फ मिली थी। आगे का रास्ता साफ़ था। लेकिन कहीं-कहीं रास्ते पर बर्फ का जमावड़ा भी था। हमारी कार हलकी-सी फिसलती हुई-सी प्रतीत हुई। डॉर्जी ने तुरंत गाड़ी रोकੀ और गाड़ी के टायरों पर लोहे की मोटी चेन चढ़ा दी। इस तरीके से बर्फ पर आसानी से कार को चलाया जा सकता था। अब हमें किसी बात का भय नहीं था।

चारों तरफ़ श्वेत, स्वर्ण, काले पहाड़ों का तो कहीं नामोनिशान ही दिखाई नहीं दे रहा था। मैंने ६ जूट का चश्मा नहीं लगा रखा था, मैं पर्वतों के सौंदर्य को उनके वास्तविक रूप में ही निहारना चाहती थी। प्रकृति के इस अद्भुत नज़ारे को देखकर रिक्त मन अभिसिक्त व अभिसिंचित हो गया। तनु वेड्स मनु का एक गीत "हो गया है प्यार तुमसे, तुम ही से एक बार फिर से, बोलो अब क्या करें, बोलो क्या करें" चल रहा था। बच्चों और मित्रों की मस्ती के बीच मन ने इन्हीं सफ़ेद पहाड़ों के मध्य कहीं अपना एकांतवास खोज लिया था। गीत ने मुझे प्रकृति के साथ आत्मसात कर लिया था। मेरी आँखों से अविरल अश्रु धारा फूट पड़ी, जिसे मैंने अन्य सभी की आँखों में आने से बचा लिया था। मुझे विश्वास

हो चला था यह मात्र पहाड़ों का सम्मोहन नहीं, उनके प्रति केवल प्रेम मात्र था जिसकी अनुभूति मुझे हर क्षण हो रही थी। मुझे प्रकृति के दृश्य और केवल अपनी श्वासों की गति सुनाई दे रही थी। दूर कहीं किसी शोरगुल से दूर एक निर्जन स्थान पर जैसे शून्य प्रवाहित हो रहा हो। बिना रुके हम आँखों में घाटी के सुंदर दृश्यों को कैद कर रहे थे। कभी भूरी-भूरी बंजर पहाड़ियाँ सफेद बर्फ से झाँक उठती थी। कभी लगता जैसे वनीला आइसक्रीम पर चॉकलेट चिप्स पड़े हुए हों। ऊँचे पहाड़ों की नीचे तलहटी में सियाचिन ग्लेशियर के पास भूरी मटमैली श्योक नदी बह रही थी। उस पहाड़ी रास्ते में लगभग 15 किलोमीटर का रास्ता ऐसा है, जहाँ पक्की सड़क नहीं है, कच्चा रास्ता है। डॉर्जी ने बताया कि वहाँ पहले कई मर्तबा सड़क बन चुकी है, लेकिन सर्दियों में जब वहाँ पूरी तरह बर्फ जमी होती है, सभी बुलडोज़र से बर्फ हटाने के दौरान सड़क पूरी तरह क्षतिग्रस्त हो जाती है, इसीलिए वहाँ पर कच्ची सड़क है। नुब्रा घाटी एक ढंडा मरुस्थल है। राजस्थान की भाँति यहाँ भी बालू के टीले वाले मैदान, जिन्हें सैंड ड्यून्स कहते हैं दिखने लगे थे। कहीं काले पत्थर वाले पहाड़, तो कहीं लाल, कहीं मटमैले-स्लेटी रंग के पहाड़ प्रतिपल अपना रंग परिवर्तित कर रहे थे। मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न था कि भला पहाड़ है कि पहाड़ों के बीच में रेगिस्तान! एक तरफ ऊँचे-ऊँचे पहाड़ और दूसरी तरफ बहती श्योक नदी। हम एक चेक पोस्ट पर पहुँचे, जो काराकोरम वन्य जीव अभ्यारण का द्वार था। आगे रास्ते में एक पेट्रोल पंप भी मिला। आगे का क्षेत्र पूरी तरह से रेगिस्तानी है। वनस्पति के नाम पर सिर्फ झाड़ियाँ ही थीं और बालू के टीले पर साँपाकार आकृतियाँ मन को मोह रही थी। नुब्रा नदी सियाचिन ग्लेशियर से निकलकर मुख्य शहर डिस्कट के पास जाकर श्योक से मिल जाती है। शाम ढलने को थी। हम सब ने काराकोरम की शृंखला में से एक-एक पहाड़ अपने-अपने नाम

कर लिया था और अमीर बन गए थे। शुक्र था कि यह पहाड़ मैदानी क्षेत्रों में नहीं है, अन्यथा मानव इन पहाड़ों को काटकर बेच देते, ठीक वैसे ही जैसे पेड़ों को काटकर धरती को बंजर मैदानों में तब्दील कर दिया। ठीक 8.00 बजे हम डिस्कट पहुँचे और विश्राम किया। सुबह होते ही हम नुब्रा घाटी के मुख्य आकर्षण दो कुबड़ वाले ऊँट और रेत के टीले, लेह बेरी की झाड़ियों और भूरे पहाड़ों के मध्य दिखती नुब्रा वैली की सुंदरता को देखने चल दिए। कहते हैं पुराने समय में जब सिल्क रूट हुआ करता था, तब मध्य-एशिया और मंगोलिया से ऐसे ऊँट लाए गए थे, जो आज भी यहाँ देखे जा सकते हैं। यह बेहद शांत स्वभाव के होते हैं। मैंने जिस ऊँट पर सवारी की, उसका नाम ओलामा था। दिन के समय यहाँ खूब गर्मी हो रही थी, सो कोट उतारने पड़े। लेह बेरी के बड़े-बड़े कांटेदार झाड़ी नुमा थे। यह बेरिज़ रसीली एवं खट्टी थी। यहाँ का लेह बेरी का जूस अत्यंत प्रसिद्ध है। कुछ देर बाद हम डिस्कट में मैत्रेय बुद्ध की 32 मीटर ऊँची मूर्ति को देखने चले गए, जो डिस्कट में आगमन के साथ ही दिखाई देने लगती है। मन अत्यंत प्रफुल्लित था, क्योंकि 18000 फीट की ऊँचाई पर रुकने का अवसर जो मिलने वाला था। खरदुंगला पर माइनस 18 डिग्री का तापमान हॉड़-माँस गलाने वाला था। गाड़ी से निकलने की हिम्मत कोई नहीं कर रहा था। सब दुबककर बैठे थे, पर समूह का नेतृत्व करते हुए मैं गाड़ी से बाहर निकली। जगह-जगह सेना के कैंप लगे हुए थे। ऊपर हम सैलानियों के अलावा और कोई नहीं आता-जाता। हमारे जाँबाज़ भारतीय सैनिक को देख मन उत्साहित हो उठा कि वे आज भी इतनी ठंड में हमारी रक्षा के लिए तत्पर हैं, उनके इस जज़्बे को कोटिशः नमन। शायद यही कारण है कि वे रात्रि में पहरा देते हैं, ताकि हम रात्रि में चैन की नींद सो सकें। मैं धीरे से सैनिक महोदय के पास गई और सेल्यूट करते हुए कहा "जय-हिंद"। हम दोनों की आँखों पर चश्मे थे, पर आँखें राष्ट्र प्रेम के



जल से अभिपूरित थीं। इससे पहले भी मैंने कई बार “जय-हिंद” का नारा लगाया, पर आज उस नारे में कुछ पूर्णता का अनुभव किया था। रास्ते भर यही विचार आता रहा कि कितना कठिन जीवन यापन होता है हमारे भारतीय सैनिकों का, जो देश की रक्षा के लिए किसी भी प्रकार के मौसम में, किसी भी प्रकार के आतंक से लोहा लेने के लिए सदैव तैयार रहते हैं। मन बार-बार उन सैनिकों के प्रति सम्मान में शीश नवा रहा था।

अगले दिन लेह से कारु व चोलाम्सर होते हुए पहला पड़ाव चांगला टॉप था, जो समुद्र तल से 17688 फुट की ऊँचाई पर था। लेह से पैगोंग तक के रास्ते बेहद रोमांचकारी थे। सिंधु नदी के किनारे बढ़ते हुए हम लेह-मनाली-हाईवे पर ही थे। रास्ते में भूरे खेतों का सौंदर्य अप्रतिम था। हरियाली नाम मात्र की थी, परंतु फिर भी उनमें सौंदर्य विद्यमान था। घाटी में हमें एक जगह मारुति कार पलटी हुई दिखाई दी। इतनी ऊँचाई से नीचे आर्मी के कैप व सड़कों को देखकर लगता था कि माचिस की डिबिया का मिनी मॉडल बनाया गया है। पहाड़ों पर रोड निर्माण का कार्य चल रहा था, जिसमें अधिकतर पहाड़ी महिलाएँ काम करती दिख रही थीं। रोड का कार्य बी.आर.ओ. (बॉर्डर रोड ऑर्गेनाइजेशन) द्वारा संपन्न कराया जा रहा था। खतरनाक और भयानक मोड़ को देखकर मन यही कह रहा था कि अगर नीचे गए, तो ढूँढने से भी अस्थि पंजर ना मिलेंगे। रास्ते में बहुत दूर-दूर तक सन्नाटा पसरा था, प्रकृति द्वारा तराशे हुए पहाड़ों के बेजोड़ नमूने देखने को मिल रहे थे। एक जगह तो सिर्फ लाल पत्थर वाले पहाड़ ही दिखाई दे रहे थे। कहीं दलदली झाड़ियाँ, तो कहीं अलग-अलग ढाँचों में तराशे पथरीले पहाड़ कुदरत की खूबसूरती का सर्वोत्कृष्ट नमूना बनकर हमारे समक्ष प्रकट होते जा रहे थे। बंजर भूमि से आगे बढ़ते बी.आर.ओ. द्वारा लगाए गए साइन बोर्ड अत्यंत रोचक थे। साइन बोर्ड पर लिखा था “इफ़ यू आर मैरिड डाइवोर्स स्पीड”, “डॉट बी

गामा इन द सिटी ऑफ़ लामा” और “थिक क्लीन”, जो हम सैलानियों को गति नियंत्रण व पर्यावरण के प्रति सचेत करते चल रहे थे। हम लगभग 11.00 बजे विश्व की तीसरी ऊँची रोड चांगला पहुँचे। तेज़ हवाओं से हमारा बुरा हाल था। ऊपर एक ही कैफ़ेतेरिया था और सेना का कैम्प था। सूर्य की तेज़ चमक बर्फीले पहाड़ों से टकराकर वहाँ के सौंदर्य में चार-चाँद लगा रही थी। स्थानीय घुमंतू जनजातियों को चांगवा कहा जाता है। शायद इसीलिए इसका नाम चांगवा पड़ा। रास्ते में दूर-दूर पर कुछ चरवाहों के घर दिखते, जिनकी छतों पर सूखी भूरी पुआल नज़र आ रही थी। डॉर्जी ने बताया कि अत्यधिक ठंड में मवेशियों के लिए घास नहीं के बराबर होती है, अतः यह सूखी पुआल उन्हें खिलाने के काम में लाई जाती है। गाड़ी में बजते मधुर संगीत की धुन में विशाल हिमालय के साथ लयबद्ध होती मैं प्रकृति की व्यवस्था को अपलक निहार जा रही थी। मैं अनुभव कर रही थी कि प्रकृति की गोद में किसी भी मनःस्थिति में अगर शरण ली जाए, तो वह आपको वैसी ही प्रतीत होने लगेगी। निराशा के पलों में प्रकृति आपके मार्गदर्शन हेतु सदैव उपस्थित हो जाती है, यही कारण है कि आश्रम व्यवस्था में से एक वानप्रस्थ आश्रम शायद इसीलिए रखा गया था, ताकि प्रकृति के सान्निध्य में उससे सदैव मार्गदर्शन प्राप्त कर सकें। आखिर बुद्ध को भी महाबोधि पीपल वृक्ष के नीचे ही प्राप्त हुई थी।

पथरीली पहाड़ियों के मध्य कहीं दूर पहाड़ों के बीच की धरती पर नीला नभ चमक रहा था। फ़िल्म श्री ईंडियट्स के अंतिम दृश्यों को इसी झील पर फ़िल्माया गया था, तभी से यह झील और अधिक प्रसिद्ध हो गई। यहाँ की दुकानों के नाम श्री ईंडियट्स पॉइंट, श्री ईंडियट्स कैफ़े, श्री ईंडियट्स कॉर्नर आदि थे। दिन में जितनी धूप थी, उतनी ही कड़ाके की ठंड थी। साथ में छोटे बच्चे होने के कारण हमने वहाँ रात्रि विश्राम के लिए रुकना ठीक नहीं समझा। पैगोंग का पानी खारा है। झील का

कुछ हिस्सा भारत और कुछ चीन में है। यह मानव ही है, जो अपने आप को सरहदों तक सीमित कर लेता है, प्रकृति अपने आप को सरहदों से सर्वथा मुक्त रखती है। नैसर्गिक सौंदर्य से परिपूर्ण मैंने ऐसी जगह नहीं देखी थी। झील का पानी इतना स्वच्छ है कि झील के तल पर पड़े हुए पत्थर साफ़ दिखाई देते हैं। कहते हैं कि झील का पानी इतना खारा है कि इसमें जलीय जीव देखने को ही नहीं मिलते। आसमानी, नीले व हरे रंग के लिए पहचानी जाने वाली पैंगोंग के सौंदर्य को मैं अपने अवचेतन मन में समेटे जा रही थी। कहीं न कहीं ऐसी तरलता का अनुभव मुझे हो रहा था। यह अलग अनुभव था, जो अविस्मरणीय था। प्रकृति का एक-एक ज़र्रा सौंदर्य से दैदीप्यमान लग रहा था। झील की एक-एक बूंद अपने अलौकिक अस्तित्व को मेरे समक्ष खोल दे रही थी। पैंगोंग की हर एक बूंद में मुझे एक अलग नीली पैंगोंग दिखाई देने लगी थी। यह जादुई जगह थी, हमारी वापसी का समय था, मैं वापस जा रही थी पर हृदय साथ न था, वह पैंगोंग को दे दिया था। लद्दाख के इस कोने में रहने वाले लोग निश्चित ही किसी योगी के समान प्रतीत हो रहे थे, जो भौतिक सुख सुविधाओं को छोड़कर प्रकृति की गोद में जीवन यापन कर रहे थे। शायद यही कारण है कि योगी शहरी कोलाहल को त्यागकर दूरस्थ एकांत स्थान में ऊँचे पहाड़ों की कंदराओं में साधना के लिए स्थान तलाशते रहे होंगे। अतिथि गृह पहुँचते-पहुँचते शाम हो चुकी थी। मन में बिछोह का दुख था, क्योंकि अब एक ही दिन शेष था। उस एक दिन को हमने स्थानीय लेह बाज़ार व अपने मित्र सोनम वांगचुक व उनके परिवार के साथ बिताने के लिए रखा था। अगले दिन हम सोनम जी के घर पहुँचे। तिब्बती शैली का बना उनका लकड़ी का मकान बहुत ही सुंदर था। उन्होंने बताया कि जब अधिक ठंड पड़ती है, तो वे अपने पुराने पुश्तैनी घर पर चले जाते हैं, जहाँ वे कड़ाके की सर्दी से बचने के लिए बुखारी का प्रयोग आसानी से कर सकते हैं। उनके बगीचे

में सेब का पेड़ लगा था, जिस पर रसीले सेब लगे थे। मैंने पहली बार पेड़ से सेब तोड़कर खाया था। सेब बहुत ही स्वादिष्ट थे। सेब के पेड़ से कुछ ही दूर मैंने देखा कि एक बड़ा गड़ढा खोदा जा रहा है। मेरे कौतूहलवश पूछने पर उन्होंने बताया कि अत्यधिक ठंड में जब यहाँ पर सब्ज़ियाँ नहीं मिल पाती हैं, तब ज़मीन में लंबे समय तक सब्ज़ियाँ गड़ढे में सुरक्षित रखी जा सकती हैं। सोनम जी की पत्नी से वहाँ के स्थानीय खान-पान में थुक्पा बनाने की विधि सीखी। उन्होंने बताया कि थुक्पा सर्दियों में शरीर को गर्म रखने का सबसे अच्छा उपाय है। इसमें याक के चीज़ का प्रयोग किया जाता है। स्थानीय बाज़ार में जगह-जगह तिब्बती महिलाएँ भेड़ की ऊन से सूत बनाती दिख रही थीं। हमने स्थानीय बाज़ार से बच्चों के लिए कुछ ऊनी वस्त्र खरीदे। परंपरागत तौर से कपड़े पर हाथ से बने हुए भगवान बुद्ध का चित्र खरीदा, जिसे लद्दाख में थान्का कहा जाता है। लद्दाख अपने बेशकीमती पत्थरों के लिए भी खासा प्रसिद्ध है। मैंने फ़िरोजा और रूबी पत्थर से बने परंपरागत आभूषण लिए व घर में सजाने का कुछ सामान खरीदा। स्थानीय बाज़ार में एक वृद्ध तिब्बती पुरुष लद्दाखी फूलों के विभिन्न प्रकार के बीज बेच रहा था। हमने उनसे कुछ खरीदे व उनके साथ एक फोटो ली। अंततः वह समय आ ही गया। सुबह हम लोग हवाई अड्डे के लिए रवाना हो गए। अंतिम बार लद्दाख के पर्वत दर्शन कर रही थी। कृतज्ञता और प्रेम से भरी पूरी थी मैं।

सही मायने में प्रकृति के सान्निध्य में यह एक सार्थक यात्रा थी, जिसमें राष्ट्र प्रेम, संस्कृति, प्रकृति प्रेम और आध्यात्मिकता का मिलाजुला अनुभव हुआ था। एक अन्वेषी की भाँति मैंने “कुछ” खोज लिया था। अपने रूप में शाश्वत सौंदर्यवान रहे इन गंजे पहाड़ों के सौंदर्य के रूप में लद्दाख याद किया जाता रहेगा। लद्दाख से पुनः मिलने का वादा लेकर मैंने उन्हें अलविदा कहा।

**soniswaroop@gmail.com**



# एक अंतिम यात्रा : ईरोड से रामेश्वरम् तक

— डॉ. सोमदत्त काशीनाथ  
वाक्वा, मॉरीशस

शनिवार 29 जुलाई, 2018 का दिन था। मेरे मित्र पण्णीर सेलवम ने मुझसे कह दिया था कि शनिवार को जब वह अपने पिताजी की अस्थियों का विसर्जन करने रामेश्वरम् जाएगा, तब मुझे भी उसके साथ चलना होगा। साथ में उसकी बहन और उसके जीजाजी भी होंगे। गाड़ी से लगभग छः-सात घंटों का सफ़र होगा। बस से जाने में पूरा दिन लग सकता है, क्योंकि यहाँ से रामनाथपुरम् जाने के लिए तीन चार बसें बदलनी पड़ती हैं। मैं पूर्व निश्चित समय से पहले ही तैयार होकर उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। गाड़ी ठीक दो बजे हॉटल के सामने रुकी और मैं छः-सात घंटों की उस लम्बी यात्रा के लिए उनके साथ निकल पड़ा। पण्णीर सेलवम से मेरी अच्छी जान-पहचान उन दिनों हुई थी, जब हम दा. नों दिल्ली विश्वविद्यालय के अंतरराष्ट्रीय छात्रावास में रहते थे। छात्रावास में हमारे कमरे पास-पास थे। वह उन दिनों दिल्ली विश्वविद्यालय के तमिल विभाग में एम. फिल का छात्र था और मैं बी.ए. (ऑनर्स) हिंदी द्वितीय वर्ष में था। वास्तव में, हमारी मित्रता का आधार भी कुछ विचित्र ही था। दिल्ली में रहने वाले अहिंदी भाषियों के लिए हिंदी भाषा का ज्ञान रखना कितना आवश्यक होता है, इसका आभास किसी से रास्ता पूछते समय या फिर दुकानों और बाजारों में मोल-तोल करते समय हो ही जाता है। इसी कमी को दूर करने के लिए पण्णीर ने मुझसे हिंदी सीखना आरम्भ किया था और मैं भी उससे तमिल भाषा के कुछ शब्द सीख लिया करता था।

धीरे-धीरे इस मित्रता ने समय के साथ-साथ अपनेपन का रूप धारण कर लिया। इसी कारण मैंने जब 'वाट्सएप्प' द्वारा उसे सूचित किया था कि मैं

पी.एच.डी. के वाईवा के लिए दिल्ली आ रहा हूँ, तब उसने कहा था "अन्ना, जब तुम भारत आओगे तब मेरे यहाँ अवश्य आना। मेरे अम्मा-अप्पा से मिल लेना। वे तुम्हें अक्सर याद करते हैं... फिर हम कहीं घूमने जाएँगे। यहाँ कॉन्सट्रक्शन के काम से कहीं जाने का समय ही नहीं मिलता है। तुम्हारे आने से मुझे भी अपने-आपको फ़्री करने का बहाना मिल जाएगा।" इस तरह दक्षिण-भारत भ्रमण की मेरी यह योजना बनी। किन्तु जब मैं 28 जुलाई, 2018 को एअर इंडिया द्वारा कोयम्बातूर हवाई अड्डे पर उतरा, तब उसके ड्राइवर ने मुझे बताया कि कुछ दिन पहले पण्णीर अन्ना के पिताजी का निधन हो गया, इसीलिए वह मुझे रिसीव करने एअरपोर्ट नहीं आ सका। उसने ईरोड के एक हॉटल में मेरे रहने का प्रबंध कर दिया है। हॉटल जाने से पहले मैं उसे तथा उसके परिवार को सहानुभूति देने के लिए जब पहुँचा तभी उसने मुझसे कहा था "अन्ना, हम शनिवार को अप्पा की अस्थियों का विसर्जन करने रामनाथपुरम् जा रहे हैं, तुम भी हमारे साथ चलना।" मैंने उसके इस प्रस्ताव को स्वीकार लिया, क्योंकि मैं उसके अप्पा के अंतिम संस्कार में उपस्थित नहीं हो सका। इसीलिए कम से कम अस्थियों के विसर्जन के समय मैं अपने मित्र के निकट रहना चाहता था।

ईरोड से निकलकर हम जिस रास्ते से रामेश्वरम् जा रहे थे, वह मुझे दक्षिण भारत की अपनी पहली यात्रा का स्मरण करा रहा था। रास्ता पूर्व की अपेक्षा अभी अधिक चौड़ा और पक्का प्रतीत हो रहा था। अठारह साल पहले यहाँ के रास्ते अधिक घुमावदार और तंग थे। कुछ दुकानें और मकान अपनी ऐतिहासिकता का प्रमाण दे रहे हैं, तो कुछ अपनी

आधुनिकता का परिचय दे रहे हैं। मिट्टी की ईंटों के स्थान पर निर्माण-कार्यों के लिए अब यहाँ पत्थर की ईंटों का प्रयोग होने लगा है। ये पत्थर आस-पास के पहाड़ों से लाए जा रहे हैं। सड़कों के निर्माण में भी इन्हीं पत्थरों से बने कंकड़ का प्रयोग हो रहा है। पहले रास्तों के दोनों किनारों पर पेड़-पौधों के कारण अधिक हरियाली थी, पर अब वह हरियाली कम हो गई है। सड़कों पर मवेशियों के स्वच्छंद विचरने के दृश्य भी अपेक्षाकृत कम ही देखने को मिल रहे थे। हाँ, सड़कों के किनारे खड़े, फल और सब्जियाँ बेचते हुए ठेले वालों की संख्या बहुत कम हो गई थी। संभवतः यातायात की सुविधा के कारण और जगह-जगह पर सब्जियों की दुकानें खुलने के कारण ठेले वालों ने अपनी प्रासंगिकता खो दी थी। घरों और इमारतों के बीच जीवन्त रंगों का प्रदर्शन करते हुए मंदिर स्वतः मेरे ध्यान को अपनी ओर खींच लेते थे। मंदिरों की दीवारों, उनके स्तूपों तथा मंडलों पर बड़ी सावधानी से बनाई गई सुन्दर मूर्तियाँ दक्षिण भारतीय शिल्पकारों तथा मूर्तिकारों की दक्षता का प्रमाण दे रही थीं। कहीं-कहीं घोड़ों की विशालकाय मूर्तियाँ खड़ी थीं, तो कहीं राक्षसों से समान डरावने चेहरों वाले क्षेत्र-रक्षक गाँव की रखवाली करते हुए दिख ही जाते थे। ऐसी कलाकृतियाँ यहाँ के मूर्तिकारों को एक अलग पहचान दे रही थी। सड़कों की बगल में खड़े देवालय समय की शृंखलाओं को जोड़ने के साथ-साथ हिन्दू धर्मावलम्बियों के विश्वास और आस्था को निरन्तर सींचने वाले स्रोत बने हुए थे। इनमें से कुछ मंदिरों का निर्माण दक्षिण भारत के चेरा, चालुक्य, पल्लव, चोल और बरमन आदि वंशों के राजाओं के द्वारा हुआ था, तो कुछ देवालय नई बस्तियों के बसने के बाद कुछ ही साल पहले बने थे। किन्तु उनमें एक विचित्र तारतम्य है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि पूर्व में बने प्रायः मंदिर अपनी विशालता एवं अलौकिक सौन्दर्य के कारण प्रचलित हैं और आधुनिक मंदिर ऐतिहासिक

मंदिरों की अपेक्षा बहुत छोटे हैं। किन्तु इसके उपरान्त भी नए मंदिरों की मूर्तिकला एवं वास्तुशिल्प में वही आकर्षण है। एकाएक मेरी दृष्टि कुछ ही दूरी पर खड़ी एक पहाड़ी पर गई। चेन्नीमलय का भव्य मंदिर पहाड़ी पर खड़ा देश के इस प्रान्त के लोगों के जीवन में धर्म और आस्था का रस घोलता हुआ पहाड़ी के मुकुट की तरह शोभायमान था। मंदिर का नाम 'अरुलमिगुसुमन्यम् स्वामी कोविल' है; अर्थात् छः मुखों वाले कार्तिकेय भगवान का देवालय। मैंने अपने दोस्त को बताया कि मॉरीशस में भी 'शेबेल' नामक एक गाँव की पहाड़ी पर भगवान मुरुगन (कार्तिकेय) का एक भव्य मंदिर है, तब उसने बताया कि दक्षिण भारत में भगवान मुरुगनस्वामी के प्रायः प्रमुख कोविल पहाड़ियों पर ही हैं। जिस प्रकार शैवों के लिए ज्योतिर्लिंगों का दर्शन आध्यात्मिक उन्नति में महत्वपूर्ण स्थान रखता है, वैसे ही शिवपुत्र कार्तिकेय के भक्त अपनी भक्ति के सामने अपने कष्टों को उपेक्षणीय सिद्ध करते हुए सौ-दो-सौ सीढ़ियाँ चढ़कर पूजा-अर्चना करने जाते हैं। वास्तव में, यह कष्ट ही ईश्वर में उनके विश्वास को अधिक सुदृढ़ करता है। यहाँ शारीरिक कष्ट एक तप के समान है।

बातों ही बातों में पण्णीर ने मुझे याद दिलाया कि जब मैं पहली बार यहाँ आया था, तब उसने मुझे चेन्नेमलय के मंदिर का दर्शन कराया था। उसके शब्दों के साथ मैं स्मृतियों के प्रवाह में तिरोहित होने लगा। उन दिनों छुट्टियों में मुझे छात्रावास के कुछ मित्रों के साथ पण्णीर के गाँव में आने का अवसर मिला था। उसके गाँव का नाम 'वडपलनी' है, जो तमिल नाडु के 'ईरोड' ज़िले में पाया जाता है। दक्षिण भारत के उस भ्रमण के दौरान मुझे तिरुवनंतपुरम्, कोची, टेकडी, ऊटी, मैसूर, कन्याकुमारी, चेन्नई, महाबलेश्वर, सेलम, मदुरई, बेंगलुरु और हैदराबाद आदि कई दक्षिण भारतीय शहरों तथा ऐतिहासिक स्थलों के दर्शन करने का अवसर मिला था। कभी-कभी विश्वास

नहीं होता है कि उस समय, एक महीने में और मात्र तीन-चार हजार की राशि में मैंने इतनी सारी जगहें देखी थीं। दो साल पहले जब मैं भारत आया था, तब मुझे दक्षिण भारत में बालाजी देवस्थानम्, काँचीपुरम् के भव्य कामाक्षी मंदिर और चेन्नई के हृदय में स्थित वडपल्ली में प्रसिद्ध मुरुगन कोविल में पूजा-अर्चना करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय पण्डीर के प्राध्यापक डॉ. राजगोपाल ने मुझे मद्रास यूनिवर्सिटी के साथ-साथ तमिल साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि सुब्रमन्यम् भारतीयार के निवास-स्थान के दर्शन कराए थे। कुछ साल पहले ही तमिलनाडु सरकार द्वारा कवि सुब्रमन्यम् भारतीयार के निवास-स्थान को एक साहित्यिक संग्रहालय के रूप में परिणत कर दिया गया था। किसी भी विदेशी के लिए दक्षिण भारत के पर्यटन का अपना एक अलग आनन्द होता है। वास्तव में कुछ आलोचकों ने देश के इस प्रान्त को मंदिरों और देवालयों की भूमि कहा है। उनके ऐसा मानने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भारत में धर्म तो सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग माना जाता है, किन्तु दक्षिण भारत में आभास होता है कि धर्म व्यक्ति के जीवन के प्रतिक्षण से जुड़ा हुआ है। सूर्योदय से पूर्व ही, अमीर हो या गरीब, प्रायः सभी के घरों के सामने रंगोलियाँ बनाकर भगवान को दैनिक गतिविधियों का साक्षी बना लिया जाता है। कहीं पुष्प की आकृति की रंगोली, तो कहीं भगवान विष्णु के शंख की, कहीं गणेश जी की आकृति वाली रंगोली, तो कहीं अन्य धार्मिक प्रतीकों का प्रदर्शन करने वाली कलाकृतियाँ बनी हुई मिल जाती हैं। प्रत्येक घर के सामने नित्य ही एक नई रंगोली देखने को मिलती है। इन रंगोलियों की रचना प्रायः घर की महिलाएँ ही करती हैं। कुछ लोग सवेरे-सवेरे मुरुगनस्वामी के कोविल में पूजा-अर्चना करने के बाद ही अन्न ग्रहण करते हैं। दक्षिण भारतीय लोगों में धर्म के प्रति गहरी आस्था और साधारण जीवन जीने की प्रवृत्ति हम जैसे यान्त्रिक जीवन के आदी बनते हुए विदेशियों को दक्षिण भारत आने के लिए

विवश कर ही लेती हैं।

लगभग एक घंटे की यात्रा के बाद गाड़ी मेरे मित्र के जन्मस्थल पर पहुँची। उसे घर से अप्पा की अस्थियों का कलश लेना था। अम्मा की आँखें भरी हुई थीं और हॉट स्वतः हिल रहे थे, किन्तु आवाज़ स्पष्ट सुनाई नहीं दे रही थी। मैंने उनके चरणों का स्पर्श किया, किन्तु कुछ भी बोलने की हिम्मत मुझे भी नहीं हुई। फिर गाड़ी पुनः अपने ध्येय की ओर अग्रसर हुई। 'वडपल्ली' गाँव पहले अधिक हरा-भरा था। चारों ओर लहलहाते हुए ईख के खेत दिखते थे। जगह-जगह पर चावल और बाजरे आदि अनाजों के खेत भी दिखाई देते थे। पहले मेरे मित्र के पिताजी गन्ने के तीन कारखानों के मालिक थे, जिनमें वे गुड़ का उत्पादन किया करते थे। किन्तु अठारह सालों के इस अन्तराल में यहाँ बहुत कुछ बदल गया है। उनके दो कारखाने बंद हो गए हैं और जो एक कारखाना अभी चल रहा है, उसके भी बंद होने की संभावना है। आज गुड़ का कोई मोल नहीं। ऊपर से उर्वरकों और कीटनाशकों के दामों में नित्य अभिवृद्धि से कृषकों की परेशानियाँ और बढ़ती ही जा रही हैं। मेरे दोस्त के घर के पास जो ईख के खेत थे, अब वे नदारद हो गए हैं। चावल के खेतों के स्थान पर लाल मिट्टी इस बात का संकेत दे रही है कि भारत के इस प्रान्त में भी कृषि के प्रति उदासीनता जड़ पकड़ रही है। नई पीढ़ी के युवक नए व्यवसायों में ही जीवन की सार्थकता देख रहे हैं। हाँ, कृषि के नाम पर कहीं-कहीं नारियल की खेती हो रही है। नारियल के पेड़ों के पीछे उतना परिश्रम नहीं करना पड़ता है और कम से कम तीस-चालीस सालों तक पेड़ों से नारियल मिलते रहते हैं। नारियल बेचकर अधिक आमदनी तो नहीं होती है, फिर भी यह आश्वासन रहता है कि फसलों के पीछे अधिक मेहनत तो नहीं करनी पड़ेगी। इस प्रकार की खेती से किसान दूसरे व्यवसायों में अपना पूरा समय लगा सकते हैं। जहाँ पूर्व में खेती किसानों के जीवन की प्रमुख गतिविधि

होती थी, आज उसे दूसरे-तीसरे स्थान पर रख दिया गया है।

कच्ची सड़क से निकलकर हम फिर पक्की सड़क पर आ गए। पहले रामेश्वरम् जाने के लिए ईराड से लोगों को सेलम, धर्मपुरी तथा मदुरई आदि प्रमुख शहरों से होकर जाना पड़ता था, जिससे तीन-चार घंटे अधिक लग जाते थे। किन्तु इधर 'बाईपास' सड़कों के निर्माण से प्रमुख शहरों के बीच यातायात को काफी सुविधा मिली है। कारों से सफर करने वालों के साथ-साथ सरकार ने बस यात्रियों के कष्टों का निवारण भी किया है। पहले दिन में एक या दो बार ही बसों के दर्शन होते थे, किन्तु आज नई सड़कों के निर्माण के बाद हर दस-पंद्रह मिनट पर बसें हॉर्न की आवाज़ से अपने आवागमन का संगीत सुनाती हुई तीव्रता से निकल जाती हैं। कभी वे अन्य वाहन चालकों को सावधान करने के लिए हॉर्न ध्वनित करती हैं, तो कभी लगता है कि हॉर्न एकाएक ही यात्रियों को नींद से जगाने के लिए बजाए गए हैं। हमारे यहाँ तो हॉर्न का इस प्रकार मुक्त रूप से प्रयोग नहीं हो पाता है। अगर कोई ऐसा करने का प्रयास करे, तो अवश्य ही उसे इस दुष्टता के लिए चलान भरना पड़ेगा। हॉर्न की आवाज़ से ध्वनि-प्रदूषण होता है, किन्तु यहाँ के चालक यही तर्क देते हैं कि इसके प्रयोग से एकाएक किसी पशु या मनुष्य के बस के सामने आ जाने पर होने वाली दुर्घटनाओं की संभावनाएँ कुछ कम हो जाती हैं। ऐसे ही एक हॉर्न की आवाज़ ने मुझे सचेत किया। हम लगभग तीन घंटे की यात्रा पूरी कर चुके थे। जगह-जगह पर रास्तों और पुलों का निर्माण हो रहा था, इसीलिए अनेक स्थलों पर गाड़ियों का तांता लगने से दस-पंद्रह मिनटों के लिए ठहरना पड़ रहा था। लगभग सात बजे थे। सामने स्कूल के बच्चे रास्ते के किनारे चले जा रहे थे। उनमें अधिकांश लड़कियाँ ही थीं। मेरे दोस्त ने बताया कि इन बच्चों के स्कूल उनके घर से बहुत दूर है। कुछ बच्चों को दो-तीन

घंटे चलकर स्कूल जाना पड़ता है। मैं सोच में पड़ गया कि कहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए जीवन के कष्टों से संघर्ष कर रहे ये बच्चे और कहाँ वे बच्चे जिन्हें माता-पिता तथा सरकार की ओर से सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं, फिर भी वे विद्या से विमुख होते हुए दिखाई देते हैं। जीवन की यह एक विडम्बना ही है कि जहाँ सुविधाएँ हैं, वहाँ रुचि नहीं और जहाँ रुचि है वहाँ सुविधाएँ नहीं! गाड़ी एक बड़ी इमारत के पास से गुज़री। वह एक मेडिकल कॉलिज था। चार-पाँच साल पहले इसका निर्माण हुआ था। पण्णीर अन्ना की कम्पनी 'कडल कॉन्सट्रक्शन' ने इसके कुछ भागों का निर्माण किया था। चन्द्रमा के आलोक में दूर एक मंदिर का स्तूप दिखा। रात्रि के कारण धुँधले होने पर भी उसकी भव्यता का आभास हो रहा था। वह मदुरई का 'मीनाक्षी अम्मन मंदिर' था। यह मंदिर देवी मीनाक्षी, शिवपत्नी पार्वती का मंदिर है। इस देवी की मूर्ति अत्यन्त सुंदर है और उसके एक हाथ में एक तोता है। हम जिस जगह पर थे, वहाँ से वह मंदिर बीस-तीस किलोमीटर की दूरी पर था, फिर भी वह साफ़ दिखाई दे रहा था। आठ बजने पर मेरे दोस्त ने एक भोजनालय के पास गाड़ी रुकवाई। हमने हाथ-मुँह धोकर भोजन किया। भोजनालय का नाम था 'शिव-शक्ति शैव हॉटल'। दक्षिण भारत में 'शैव' का अर्थ 'शाकाहारी' होता है। उस हॉटल का नाम आसानी से स्मरण हो गया था, क्योंकि रामनाथपुरम् में हम जिस लॉज में ठहरने वाले थे, उसका नाम भी इससे मिलता जुलता था, 'शिव-शक्ति लॉज'। आधे घंटे बाद हम गाड़ी में बैठकर आगे बढ़े। इस समय रास्ता उतना साफ़ नहीं दिख रहा था। इधर रास्ते में स्ट्रीट-लाईट नहीं थी और काफी रात भी हो चुकी थी। चारों तरफ़ टिमटिमाते तारों की भाँति घरों में जलती बिजली बत्तियाँ वातावरण को आलोकित कर रही थीं। जब गाड़ी तेज़ चलने लगती, तब दूर और पास के घरों से आ रही रोशनी विद्युत की लड़ियों के दृश्य का आभास दिलाने लगती।

लगभग देढ़ घंटे बाद हम रामेश्वरम् पहुँचे। सड़क की बाईं ओर नई-नवेली दुल्हन-सी सजी सुंदर इमारत खड़ी थी। मैंने जिज्ञासा व्यक्त की कि क्या यहाँ किसी की शादी हो रही है? तब मेरे दोस्त के जीजाजी, डॉ. सुभारावजी ने उत्तर दिया “नहीं भाई! यह एक संग्रहालय है। भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम का जन्म रामेश्वरम् में ही हुआ था। उनके निधन के बाद भारत सरकार ने उनके नाम पर इस संग्रहालय का निर्माण किया है। कल 27 जुलाई, 2018 को उनकी पुण्यतिथि थी। इसीलिए भवन को इस तरह सजाया गया है। यदि समय मिला तो लौटते समय देखेंगे।”

रात्रि में, लगभग साढ़े ग्यारह बजे हम रामनाथपुरम् पहुँचे। सामने रामेश्वरम् का भव्य ज्योतिर्लिंग मंदिर था। पास ही में स्वामी विवेकानन्द हाई स्कूल भी है, जिसका संचालन रामकृष्ण मठ द्वारा होता है। दाईं ओर एक रास्ता था। कुछ ही दूरी पर ‘शिव-शक्ति लॉज’ था। वहीं हमने रात गुजारी। लम्बी यात्रा की थकान के कारण मुझे जल्दी ही नींद आ गई। सवेरे उठते ही मैं छः बजे ही रामेश्वर ज्योतिर्लिंग के दर्शन करने के लिए निकल पड़ा, चूँकि सात बजे हमें अस्थियों का विसर्जन करने जाना था। मुझे उस मंदिर में अकेले जाना पड़ा, क्योंकि मेरे दोस्त ने बताया कि अभी उसे और उसके परिवार वालों के लिए मंदिर में जाना ठीक नहीं। रामेश्वर ज्योतिर्लिंग बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक है। इसके सम्बंध में एक संस्कृत श्लोक है — ‘सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने॥’ (अर्थात्, प्रभु श्री राम ने जहाँ सागर-सेतु का निर्माण किया था, वहाँ रामेश्वर ज्योतिर्लिंग है और दारुकावन में नागेश्वर ज्योतिर्लिंग है।) रामेश्वर ज्योतिर्लिंग ‘पदर पेत्र स्थल’ के नाम से भी प्रचलित है। इसी स्थल पर बैठकर भगवान श्री राम ने लंका विजय के पश्चात् अपने आराध्य देव भगवान शिव जी की पूजा की थी। उन्होंने राक्षसराज रावण के वध के बाद ऐसा अनिवार्य समझा था, क्योंकि ब्राह्मण की हत्या पाप

होता है। यहीं पर श्री राम और माता सीता ने रेत से शिवलिंग का निर्माण किया था। अब ये शिवलिंग इसलिए ज्योतिर्लिंग कहलाते हैं, क्योंकि भगवान शिव इनमें प्रकट हुए थे। काले पत्थरों से निर्मित इस विशाल मंदिर का निर्माण 15 एकड़ भूमि पर किया गया है। शिव-पार्वती की मूर्तियों से सुशोभित देवालय के अतिरिक्त, यहाँ कई राम-सीता आदि अन्य देवालय भी हैं। मंदिर में असंख्य शिवलिंग भी स्थापित हैं। हर देवालय के दर्शन करने से पूर्व दर्शनार्थियों को जगह-जगह पर बनाए गए तालाबों से जल लेकर स्नान करना पड़ता है, तभी दर्शन की अनुमति मिलती है। मैं मंदिर के सभी देवालयों के दर्शन करने में अक्षम रहा, क्योंकि मेरे पास अधिक समय नहीं था। बाहर निकलने पर मुझे आभास हुआ कि मैं मंदिर में चलते-चलते इस छोर से उस छोर तक पहुँच चुका था।

वहाँ से शिव-शक्ति लॉज में बीस-पच्चीस मिनट लग गए। फिर भी सात बजने से पूर्व ही मैं लॉज पहुँच गया। निश्चित समय पर हम लॉज से गाड़ी द्वारा निकले। हम उस स्थल पर पहुँचे, जहाँ प्रभु श्री राम ने ‘इरामर सेतु’ (राम सेतु) के निर्माण से पूर्व सागर से उसके अथाह जल को बाँधने की अनुमति माँगी थी। यहाँ का वातावरण वाराणसी के अस्सी घाट के समान ही था। धार्मिक वातावरण होने के कारण सूर्य की प्रथम किरणों के फैलने से पूर्व ही श्रद्धालुओं की भीड़ लग जाती है। यह एक मंदिर है और जगह-जगह पर बैठे पंडित दिखाई देते हैं। जो श्राद्ध कराने आए परिवारों के दिवंगत प्रियजनों की आत्मा की शान्ति के लिए हवन-विधि सम्पन्न करने में व्यस्त हैं। रास्ते पर चलतीं गायें और पीछे-पीछे चल रहे उनके बछड़े आकर लोगों के पास इस तरह खड़े हो जाते हैं, जैसे कि वे कुछ कहना या पूछना चाहते हों। लोग उन्हें छूकर आशीर्वाद लेते हैं और उन्हें घास या केले के छिलके खिला देते हैं। सामने पूर्व दिशा में था-अथाह सागर! लोग समुद्र के जल में डुबकी लगा रहे थे। मेरे दोस्त ने भी समुद्र के



पानी में डुबकी लगाई और उसने श्राद्ध के लिए हवन करवाया। अन्ततः हम सब उसके अप्पा की अस्थियों का विसर्जन करने के लिए समुद्र के पानी में उतरे। पूजा-विधि के पश्चात् हमने वहीं अल्पाहार किया और फिर वहाँ से निकले।

आधे घंटे बाद हम 'धनुषकोडी' पहुँचे। इससे पूर्व मैंने कभी यह नाम नहीं सुना था। यह वही स्थान है, जहाँ से भगवान श्री राम ने वानर सेना द्वारा लंका जाने के लिए सागर सेतु का निर्माण आरम्भ करवाया था। यहाँ से लंका जाने की दूरी मात्र 18 मिल है। किसी भी बुद्धिजीवी को यह सोचकर आश्चर्य होगा कि बिना किसी मानचित्र का प्रयोग किए प्रभु श्री राम को कैसे पता चला कि इस स्थान से श्री लंका की दूरी सबसे कम है और यहाँ सागर-सेतु का निर्माण करने में सुविधा होगी? पहले इस जगह पर लोग बसते थे। यहाँ मछुआरों के कई परिवार रहते थे। किन्तु सन् 1964 में आए एक भयानक तूफान के बाद सारी बस्तियाँ उजड़ गईं और जो जन जीवित बचे थे वे इस द्वीप से चले गए। अब केवल घरों और इमारतों के कुछ भग्नावशेष ही यत्र-तत्र खड़े दिखते हैं। अभी सरकार द्वारा 'धनुषकोडी' की स्मारिका तक जाने के लिए निर्मित मार्ग की सुरक्षा के लिए रास्ते के दोनों किनारों पर बड़े-बड़े पत्थर लगाए जा रहे हैं। आज 'धनुषकोडी' एक पर्यटन स्थल बन गया है। दूर तक समुद्र की गोद में रेत का पुल जैसे समुद्र को विभाजित करता हो। इस स्थान की एक विशेषता यह है कि यहाँ सागर के दो पृथक स्वभावों के दर्शन होते हैं। बाई ओर शान्त रूप धारण किया हुआ समुद्र है, तो दाई ओर उग्र रूप से रेतीले तट पर प्रहार करती हुई उसकी लहरें। यहाँ के लोग इन्हें 'पेन्न कडल' और 'आन कडल' कहते हैं। तमिल में 'कडल' का अर्थ 'समुद्र' होता है। 'पेन्न कडल' का अर्थ है सागर का स्त्री रूप, जो शांत है, तो दूसरी ओर 'आन कडल' अर्थात् सागर का पुरुष रूप जो क्रोध से भरा हुआ है। रामेश्वरम् के इस भाग से जाते समय हमने पम्बम ब्रिज (पुल)

देखा। वास्तव में रामेश्वरम् एक द्वीप है। पम्बम ब्रिज का निर्माण 1914 में, ब्रिटिश राज में हुआ था। तमिल नाडु के मुख्य भूभाग को इस द्वीप से जोड़ने वाले इस रेलवे पुल की विशेषता यह है कि यह जहाजों की आवाजाही के लिए ऊपर उठता है और उन्हें रास्ता देता है। उस समय पुल पर एक रेल गाड़ी जा रही थी और पुल के पास कुछ जहाज खड़े अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे थे।

थोड़ी देर बाद हम डॉ. अब्दुल कलाम नैट्योनल म्यूजियम मेमोरियल (डॉ. अब्दुल कलाम राष्ट्रीय संग्रहालय एवं स्मारक) के पास रुके। 'मिसाइल मैन' के नाम से प्रचलित डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम के 'नेटिव' (जन्मभूमि)—रामेश्वरम् में इस भव्य संग्रहालय का निर्माण 2016 में भारत सरकार की पहल के कारण किया गया था। जब मेरे मित्र के जीजाजी ने ड्राइवर से गाड़ी रोकने के लिए कहा, तब डॉ. कलाम के विषय में जानने की जो सुप्त जिज्ञासा थी, वह स्वतः जाग्रत हो उठी। संग्रहालय में प्रवेश निःशुल्क था और भवन के बाहर डॉ. कलाम के जीवन तथा उनके जीवन-दर्शन से जुड़ी हुई कई वस्तुएँ भी प्रदर्शित थीं। भवन में डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम के जीवन की उपलब्धियों के साथ-साथ उनकी सहज हृदयता से जुड़े हुए महत्वपूर्ण क्षणों को चित्रित करने वाले लेख एवं जीवंत रंगों से भरे चित्र भी विविध कक्षों में रखे गए थे। डॉ. कलाम को बच्चों से, भारतीय दर्शन से, भारतीय संस्कृति से तथा भारतीय संगीत से विशेष लगाव था। स्कूल और कॉलिज के विद्यार्थियों के साथ खींची गई उनकी कई तस्वीरों को और उनके मनपसन्द वाद्य-यन्त्र वीणा आदि को अच्छी तरह से एक कक्ष में संयोजित करके रखा गया है। वे सभी दृष्टि से प्रगतिवादी विचारों के समर्थक थे। इस्लाम धर्म से जुड़े रहने के उपरान्त भी वे मूल रूप से भारतीय दर्शन की भव्यता पर विश्वास रखते थे। वे जहाँ अपने पास 'कुरआन' रखते थे, तो वहीं श्रीमद्भगवत् गीता का अध्ययन भी करते थे।

उनके कुरआन और गीता की प्रतियाँ यहाँ प्रदर्शित हैं। उन्होंने अपने कार्यकाल में जिन मिसाइलों का निर्माण एवं परीक्षण करवाया तथा उन्होंने अपने जीवन में जिन-जिन पदों पर आसित होकर देश की सेवा की है, उनका उल्लेख यहाँ प्रदर्शित लेखों में मिलता है। संग्रहालय के अंदर फोटो खींचना मना है, किन्तु हमने अनेक फोटो खींचे।

लगभग दो बजे हम संग्रहालय से निकले और हमने ईरोड लौटने का रास्ता लिया। रामेश्वरम् पीछे छूटता हुआ दिखाई दे रहा था और मेरे मन में कई विचार उमड़ रहे थे। पण्णीर के पिता की

अस्थियों को अंतिम यात्रा कराने के साथ-साथ मुझे रामेश्वरम् दर्शन का जो अवसर मिला, उसे सुखद या आनंददायक तो नहीं कहा जा सकता था, किन्तु इस बात का संतोष था कि इस सफ़र ने आद्यान्त भारत के उन रूपों का दर्शन कराया, जिनकी कल्पना भी मैंने कभी नहीं की थी। रामेश्वरम् की रमणीय एवं पवित्र भूमि को छोड़ते हुए मैं थोड़ा उदास था। मेरे मन में एक संकल्प ने जन्म लिया। मैं यहाँ फिर आऊँगा! अवश्य आऊँगा! यहाँ बिताए कुछ घंटे पर्याप्त नहीं।

[mskashinath@gmail.com](mailto:mskashinath@gmail.com)

## मेरी मॉरीशस यात्रा

— डॉ. रत्नाकर नराले  
टोरंटो, कनाडा

कभी-कभी तो ऐसा ही होता है। बिना दस्तक के सौभाग्य की घंटी बज पड़ती है और नसीब की खिड़की अचानक खुल जाती है। बस एकदम उसी तरह से एक दिन आधी रात को हमारे फ़ोन की घंटी बज पड़ी और बिना दस्तक यात्रा के द्वार की कुंडी अचानक खुल गई। हम तो अधसोए अनजान थे। हमने सोचा आधी रात में किसका फ़ोन हो सकता है भला। एक बार सोचा, चलो कोई बात नहीं, उन्हें मैसेज छोड़ने देते हैं। कल सवेरे देख लेंगे। फिर सोचा, किसी को कोई सहायता ही न चाहिए हो। अतः फ़ोन उठाकर हमने कहा “नमस्ते जी! कौन है? आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ मैं।” हमारी निद्रालु आवाज़ सुनकर उन्होंने जान लिया और पूछा अभी क्या समय हुआ है वहाँ पर। हमने घड़ी की ओर देखा और कहा अभी तो रात के लगभग 2:00 बजे हैं जी। वह बोले क्षमा कीजिए सर हम भारत से बोल रहे हैं। समय का बदलाव ध्यान में नहीं आया। हमने कहा, कोई बात नहीं जी, फ़रमाइए! वे बोले हम भारत सरकार के विदेश

मंत्रालय के कार्यालय से बोल रहे हैं। आपको भारत सरकार ‘विश्व हिंदी सम्मान’ प्रदान करने के लिए मॉरीशस बुला रही है। क्या आप यह पुरस्कार स्वीकार करेंगे? हमने हँसकर कहा “अजी सरकार! नेकी और पूछ पूछ।” वह भी हँस पड़े और फिर कुछ और सवाल पूछकर उन्होंने शुभ रात्रि कहा। हमने भी उन्हें हार्दिक धन्यवाद कहकर शुभ रात्रि कहा।

बस क्षणार्द्ध में अचानक हमारे भाग्य की खिड़की खुल गई। कनाडा के भारतीय कौंसलावास के शुभ आशीर्वाद से हमें तुरंत ही मॉरीशस की अंतरराष्ट्रीय यात्रा की टिकट मिल गई। हमने हर्षित और कृतज्ञ होकर जिन-जिन संस्थाओं व श्रीमान-श्रीमतियों ने हमारा नामांकन किया था, उन सभी का हार्दिक आभार मानकर शीघ्रता से यात्रा की तैयारियाँ आरंभ कर दी। हमें तो कुछ ही दिनों में निकलना था।

टोरंटो से उड़ान भरकर हमारा हवाई जहाज़ उड़ता-रुकता जर्मनी और दक्षिण अफ़्रीका होता हुआ, दो दिनों के लम्बे सफ़र के बाद मॉरीशस



के द्वीप पर आ उतरा। यहाँ हवाई अड्डे पर सब ओर लगे हुए विश्व हिंदी सम्मेलन, भारत के प्रधानमंत्री श्री मोदी जी और मॉरीशस के प्रधान मंत्री श्री प्रवीण जगन्नाथ जी के सुंदर पोस्टर्स देखकर हमारा मन उत्साह से उमड़ उठा। इसी भवन में विद्यमान सुशील महिला-पुरुषों ने हमारा स्नेहपूर्वक स्वागत करके तथा नियम पंजीकरण किया और फिर खास यान से पूर्व नियोजित निवास स्थान पर हमें सुख से पहुँचा दिया। जाते हुए, मार्ग में लगे हुए भारत के और मॉरीशस के छोटे-बड़े राष्ट्रीय ध्वज देखकर अहसास हुआ कि यह संपूर्ण देश उत्साह से पुलकित हो उठा है और वह हमें भी हृष्ट कर रहा है। उस द्वीप पर सर्दी का मौसम आरंभ हुआ था, फिर भी कनाडा के मान से यहाँ सौभाग्यवश न अधिक ठंड थी, ना ही अधिक गरमी। इस आह्लाददायक वातावरण से हमारा मन अति प्रसन्न हो उठा था।

दूसरे दिन विश्व हिंदी सम्मेलन का उद्घाटन था। भव्य सभा मंदिर अवलोकनीय व अति चित्ताकर्षक सजाया हुआ था। भवन में आते ही प्रियदर्शिनी ललनाओं द्वारा अतिथियों का स्वागत सम्मान किया गया। सभारंभ में स्वर्गीय पूर्व प्रधानमंत्री कविवर श्री अटल बिहारी वाजपेई जी को आदरान्वित श्रद्धांजलि अर्पण की गई और फिर सम्मेलन की अध्यक्षता भारत की माननीय विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज जी ने की और उनकी अमृतवाणी का व्याख्यान हुआ। उनके भावना भरे शब्दों ने विविध देशों से पदार्पित सभी श्रोतागणों को श्रवणतृप्त कर दिया। इतना सुंदर व मनोरम भाषण हमने तो पहले कभी भी नहीं सुना था।

तीन दिवस के इस महान समारोह के मनोरम काल में हमें कई कवि, लेखक, ज्ञानी सज्जनों से परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और कई पत्रकार, नेता और हिंदी प्रेमियों से मिलने का अनमोल अवसर मिला। मॉरीशस के अनेक स्नेही-भद्र लोगों से आदान-प्रदान करने का सुयोग भी प्राप्त हुआ।

उन सभी महानुभावों से असीम प्रेरणा पाकर हमें लगा कि यहाँ आकर हमारा जीवन हेतु मानो सफल हो गया है।

हिंदी के इस महाकुंभ में उपस्थित होकर हजारों हिंदी प्रेमियों को एक साथ देखने और सैकड़ों हिंदी सेवियों से मिलने एवं वार्तालाप करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिन सुखद श्रीमान-श्रीमतियों से मैं मॉरीशस में मिल सका उन सभी महानुभावों के नाम तो यहाँ नहीं कहे जा सकते, फिर भी उदाहरण के तौर पर कुछ नाम, बिना किसी वरीयता से लगभग जिस क्रम में परिचय हुआ उस क्रम में लेने का यहाँ प्रयास कर रहा हूँ — किसी के नाम—धेय-संज्ञा निर्देशन में मेरी त्रुटि हो जाए, तो क्षमस्व हो। सर्वश्री पं. हरिशंकर शर्माजी, अध्यक्ष, संस्कार भारती, गयाना; डॉ. इनिस फ़ारनेल, उपनिदेशक, जार्ज अगस्त विश्वविद्यालय, गार्डिजन; लेखिका श्रीमती कल्पना लालजी, मॉरीशस; प्रो. विनोद कुमार मिश्र, महासचिव, विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस; प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय, निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, प्रधान संपादक, प्रवासी जगत, आगरा; डॉ. कमल किशोर गोयनका, उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा; डॉ. गंगाधर वानोडे, संपादक प्रवासी जगत, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा; श्री सुरेश रामबर्न, प्रधान, हिंदी स्पीकिंग युनियन, मॉरीशस; श्री प्रेमचंद बुझावन, संरक्षक, कृष्णानंद सेवाश्रम, मॉरीशस; श्री प्रेमदीप चमन, कोषाध्यक्ष, हिंदी स्पीकिंग युनियन, मॉरीशस; श्री संजय बिजलोल, पत्रकार, मॉरीशस; डॉ. श्री भगवान शर्मा, महामंत्री, अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति, दिल्ली; श्री हितेश शंकर, संपादक, पाञ्चजन्य, दिल्ली; डॉ. आर. के. पंत, पूर्व उप सचिव, सी. एस. बी. भारत सरकार, नई दिल्ली; श्री के. जी. सुरेश, मुख्य निदेशक, प्रचार मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली; श्री पवन कुमार बढे, उपसचिव, समाचार विभाग, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली; श्री राकेश पाण्डेय, संपादक, प्रवासी-संसार, दिल्ली; श्री राजेन्द्र उपाध्याय, आकाशवाणी, दिल्ली;

श्रीमती राजकुमारी चौकसे, समाज सेविका, भोपाल; प्रो. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, अध्यक्ष, हिंदी अध्ययन मंडल, उज्जैन; डॉ. विनय कुमार शर्मा, संपादक, शोध सरिता, लखनऊ; डॉ. राकेश कुमार दूबे, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी; डॉ. पुष्पिता अवस्थी, निदेशक, हिंदी युनिवर्स फाउंडेशन, नीदरलैंड; श्री रोहित कुमार 'हैप्पी', संपादक, भारत-दर्शन, न्यूजीलैंड; श्रीमती सुनीता नारायण, न्यूजीलैंड; प्रो. अशोक चक्रधर, नई दिल्ली; डॉ. अनूप भार्गव, यू.एस.ए.; डॉ. सुरेन्द्र गंभीर, यू.एस.ए.; मृदुल कीर्ति, जॉर्जिया, यू.एस.ए.; डॉ. संध्या सिंह, कन्वेनर हिंदी, राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, सिंगापुर इत्यादि।

इसके पूर्व सत्तर वर्षों में हमने अनेक देशों की यात्राएँ की थीं, मगर महासागर के बीच में खड़े इस स्वतंत्र देश को देखने का सुयोग हमें प्रथम बार ही प्राप्त हुआ था। मॉरीशस के पाँच दिन के प्रवास में हमें अनुभूति हुई कि यह अद्भुत देश कितना सुंदर और अनूठा है। यहाँ के गिरमिटिया लोगों के वंशज लोग कितने प्यारे हैं और प्यार बाँटने वाले हैं। यहाँ कहीं किसी में भी किसी प्रकार का भेदभाव न दिखा। सभी लोग उदार दिल के नेक और धर्मात्मा थे। सब के मुख में मीठी वाणी और सादगी थी। रोमांचक इतिहास ने इन्हें सुशील बना दिया है। इन लोगों ने अपने लोमहर्षक इतिहास की कटु यादें, मूल संस्कृति के उज्ज्वल संस्कार और त्यौहार जीवित रखे हैं, यह देखकर हमारा मन गदगद होकर भर आया।

इन प्रशंसनीय गिरमिटिया लोगों के धार्मिक वंशजों ने भारत की शिव संस्कृति व आचार-विचार अपने हृदय के पास रखकर भक्तिभाव के साथ अनेक सुंदर-सुंदर मंदिर बनाए हैं। ऊँची-ऊँची प्रेक्षणीय मूर्तियाँ खड़ी की हैं। पवित्र धाम निर्माण किए हैं। हमने जब यहाँ का गंगा-तालाब देखा, तो हमें परम शांति की अनुभूति हुई। यह पावन स्थान गिरमिटिया-विश्व के लिए सबसे बड़ा आस्था, विश्वास व सांस्कृतिक केंद्र है। बनारसी ढंग से

निर्मित इस पवित्र धाम पर सावन के महीने में भक्तजन शिवरात्रि के दिन काँवड़ लेकर शिव पार्वती के दर्शन के लिए संपूर्ण देश से आते हैं और अपना जीवन पुण्यमय कर लेते हैं। इस देश में अन्यान्य पवित्र स्थानों में भगवान राम-सीता, हनुमान, राधा-कृष्ण, गणपति, लक्ष्मी, शिव-गौरी आदि के दिलचस्प मंदिर हमने देखे और धार्मिकता की विद्यमानता महसूस की। शायद इसी कारण इतने छोटे-से देश में अनगिनत विदेशी यात्री हमारी तरह सुख पाने के लिए आते हैं।

फिर हम श्रीमान विद्या कौलेसर जी एवं प्रो. विजय सुखन जी की सहायता से शहर से दूर गन्ने के खेत देखने गए। वहाँ पर भारतीय मूल के लोगों को खेतों में गन्ने काटते हुए देखकर गिरमिटिया मज़दूरों के इतिहास का जीता-जागता पृष्ठ आँखों के सामने खुल गया। उन महानुभावों से हाथ मिलाकर बातें करते हुए हम उन्नीसवीं सदी में पहुँच गए। उन पुनीत लोगों के स्नेहांकित हृदयों की धड़कनों को करीब से सुनने का अवसर हमें अन्यत्र व अन्यथा कहीं संभव नहीं था। पहाड़ियों के टीलों के साथ और समुंदर के तीर पर बसी इस भूमि की मिट्टी को अपने भाल पर लगाकर हमने वहाँ अनन्य धन्यता प्राप्त कर ली थी। इतने छोटे से देश का इतना बड़ा नाम क्यों है यह हमें तब ज्ञात हुआ। हमें लगा जैसे यहाँ की मिट्टी सोने की बनी है। वह इन गिरमिटिया वंशज हीरों को जन्म देती है और अमृत नीर से उनको पालती है। रौनक का भंडार, यह देश कुदरत की एक अनमोल देन है।

तीसरे दिन हम विश्व हिंदी सचिवालय देखने गए। भारत सरकार और मॉरीशस सरकार की साझेदारी में बनवाया हुआ यह विशेष भवन हिंदी भाषा का और हिंदी विश्व का प्रधान केंद्र है। भवन की सुव्यवस्था एवं पुस्तकालय विशेष आकर्षणीय थे। इस महान ऐतिहासिक भवन के फलक को केवल हाथ लगाकर ही और उसके सामने छवि खींचकर हमें यहाँ पर आने की कृतकार्यता प्राप्त हुई।

अंत में हम आप्रवासी घाट व महात्मा गांधी संस्थान देखने गए। महात्मा गांधी संस्थान मॉरीशस का अति महत्वपूर्ण शिक्षा केंद्र है। यहाँ रचाए हुए महान गिरमिटिया संग्रहालय में प्रसाधनों और प्रदर्शनियों के द्वारा गिरमिटियों के बीते हुए जीवन का रोमांचक इतिहास भावनापूर्ण पुनर्जागृत किया गया है। गिरमिटियों के पुरातन जीवन साधन और रोजगारी के लुप्त उपकरण बड़े प्रयास से पुनः दृष्टिगोचर किए गए हैं। उनकी जीवनी के प्रसंग रचाए और सजाए गए हैं। यहाँ उनके भयावह इतिहास की सूक्ष्म जानकारी जगत को प्रस्तुत की गई है।

यह सब देखकर और पढ़कर ज्ञात हुआ कि यह खौफनाक सिलसिला आतताई-अनाचारी गोरों द्वारा नवंबर 2, सन् 1834 में आरंभ हुआ था। अधिकतर पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार के भोजपुरी हिंदी भाषी लोग, मद्रास के तमिल भाषी और मुंबई के मराठी भाषी मासूम लोग बहला-फुसलाकर के कोलकाता, मद्रास व मुंबई के बंदरगाहों से मॉरीशस रवाना किए जाते थे। मॉरीशस पहुँचकर वे कलकतिया,

मद्रसिया व मुंबइया कहलाए जाने लगे और उनके तीन समाज बन गए। भारत से उन्हें गन्ने की खेती करने का अथवा सोने की खदान में पत्थर तोड़कर मालामाल होने का लालच दिखलाकर फुसलाया जाता था। मगर यहाँ लाकर उनको बहुत भयानक अवस्था में रखा जाता था। महापरिश्रम करके भी उन्हें न ठीक खाना-पीना, न रहने का स्थान होता था। कबूतर खाने की अवस्था में रहकर ये मासूम लोग कटुतम इतिहास के पन्ने पलटते रहे थे। फिर भी वे अपनी संस्कृति पर अटल रहे।

मॉरीशस में इन गिरमिटियों के जहाज़ जहाँ इन्हें उतारते थे उसे 'आप्रवासी घाट' कहा गया है। उस अविस्मरणीय घाट की पौड़ी पर खड़े होकर उस महासागर की ओर देखते हुए और उन बीते हुए घोर इतिहास के दिन याद करते हुए हमारी आँखों में नीर भर आया। अन्य यात्राओं की तरह यह यात्रा केवल देश देखने अथवा सैर करने की कतई नहीं थी, बल्कि एक अद्भुत इतिवृत्त का अनुभव करने की थी।

[rnarale@yahoo.ca](mailto:rnarale@yahoo.ca)

## रोम

— शिखा वाष्णीय  
लंदन, यू.के.

कहा जाता है कि 'रोम' एक दिन में नहीं बनाया गया था। सच ही है, अतः इसके बारे में जल्दी ही लिखा या कहा नहीं जा सकता। इटली की राजधानी रोम — इस नाम से जूलियस सीज़र, नेरो जैसे कई नाम जेहन में चक्कर लगाने लगते हैं। विश्व की प्राचीनतम सभ्यता में से एक रोम, अपने नाम के साथ ही इतिहास के पन्नों की तरफ ले जाता है। कुछ वर्ष पहले जब इटली जाने का कार्यक्रम बनाया, तो मेरी तमन्ना रोम की एक-एक दीवार पर पड़ी इतिहास की हर एक लकीर पढ़

लेने की थी। परन्तु परिवार में मेरे अलावा किसी की इतिहास में रुचि नहीं, तो अतः वेनिस और पीसा के नाम के ललकारे देने पड़े और चूँकि रोम इटली की राजधानी है, इसलिए उसे भी देख लेने की मेहरबानी करने के लिए सब तैयार हो गए। परन्तु शर्त यह कि वेनिस, मिलान, फ़्लोरेंस और पीसा के बाद बचे हुए सिर्फ़ दो दिन में जितना हो सकेगा रोम घूमा जाएगा। उस पर तुरा यह कि और भला चर्च और खंडहरों को कब तक निहारोगी? खैर भागते भूत की लंगोटी भली।

इस भव्य नगर की स्थापना लगभग 753 ईसा पूर्व में हुई थी। और इसके बसने को लेकर एक बहुत ही चर्चित कहानी भी है। मंगल देवता के दो जुड़वा पुत्र थे — रोमुलस और रिमस। एक बार तेबर नदी में बाढ़ आने से ये दोनों बहते हुए पेलेटाइन पहाड़ी के पास पहुँच गए। इन बच्चों को एक मादा भेड़िये ने दूध पिलाया व एक चरवाहे ने दोनों को पाला। बड़े होकर इन दोनों भाइयों ने एक नगर की स्थापना की, जिसका नाम रोमुलस के नाम पर रोम रखा गया व रोमुलस इसके सम्राट बने।

इटली पहुँचने के लिए लंदन से हमारी उड़ान मिलान की थी और फिर वहाँ से वेनिस और वेनिस से रोम हमें योरोस्टार (ट्रेन) से पहुँचना था। यूँ यह ट्रेन काफी सुविधाजनक थी, परन्तु पूरी इटली में एक समस्या बहुत विकट है, वह यह कि वहाँ बस में चढ़ो या ट्रेन में, सिर्फ़ टिकट लेने से काम नहीं चलेगा, उसे वहाँ लगी कुछ मशीनों पर वेलिडेट (पंच) भी करना पड़ेगा, वरना वह टिकट कोई मायने नहीं रखती। खैर असली समस्या यह नहीं थी। परेशानी तो यह थी कि यह सब अगर आप पहले से नहीं जानते, तो वहाँ जाकर आपको कोई बताने वाला नहीं मिलेगा और भाषा की अनभिज्ञता की वजह से वहाँ लिखा आप कुछ पढ़ नहीं पाएँगे और अगर आप टिकट बिना वेलिडेट कराए बस या ट्रेन में पहुँच गए, तो आपको कह दिया जाएगा कि टिकट वेलिड नहीं है। अब अगर आपकी किस्मत अच्छी है, तो कोई आपको समझाने वाला मिल जाएगा कि आपको करना क्या है। लेकिन जब तक आप समझ कर टिकट वेलिड कराने जाएँगे, आपकी बस या ट्रेन छूट जाएगी या फिर आपको जुर्माना भी भरना पड़ सकता है। खैर इस मामले में हमारी किस्मत अच्छी थी और कुछ ऐसा होता है, ये हम कहीं नेट पर पढ़ चुके थे। तो एक ही बार के झटके में हमें बात समझ में आ गई और आगे से यह काम सबसे पहले याद रखा गया। शाम को करीब पाँच बजे हम रोम के ट्रेन स्टेशन

पर पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही ऐसा लगा कि हमारे भारतीय मित्र कितनी अफ़वाह उड़ाते हैं। उन्होंने हमें कहा था कि रोम और नई दिल्ली में कोई फ़रक नहीं है। परन्तु स्टेशन से बाहर निकलते ही उनकी बात का मर्म हमें समझ में आने लगा। कुछ ग़लत नहीं कहा उन्होंने। स्टेशन से बाहर वाकई भारत के ही किसी बड़े शहर के जैसा माहौल था। वही छोटे-छोटे खोमचे, फुटपाथ पर ही चादर बिछाकर सामान बेचते लोग और अपनी-अपनी कम्पनियों के पैकेज बेचने को बेताब टूरिस्ट गाइड मोल-भाव करते हमारे पीछे-पीछे भाग रहे थे। फ़र्क़ था तो बस इतना कि वे सारे भारतीयों की जगह बंगलादेशी थे। हालाँकि देखने से तो सारे दक्षिणी एशियाई एक जैसे ही लगते हैं। हमें फ़िक्र थी अपने होटल पहुँचने की, जो कि शहर से कुछ बाहर था और हमें वहाँ तक पहुँचाने के लिए एक बस आने वाली थी, जिसका कि बताई हुई जगह पर कोई अता पता नहीं था। उस तक पहुँचने में हमें काफी मशक्कत करनी पड़ी। इन सब समस्याओं को देखते हुए और रोम के दर्शनीय स्थलों की संख्या देखते हुए सर्वसम्मति से ये फैसला हुआ कि दो दिन का बस टूर ले लिया जाए। इससे बेशक समय की थोड़ी पाबन्दी रहेगी, परन्तु कम समय में काफी कुछ कवर किया जा सकेगा। अतः वहीं एक बंगाली भाई से दो दिन का टूर बुक करा कर हमने होटल के लिए प्रस्थान किया।

दूसरे दिन उसी स्टेशन से हमारी रोम यात्रा शुरू हुई और सबसे पहला पड़ाव आया 'कोलेजियम' रोमन आर्किटेक्चर और इंजीनियरिंग का उत्कृष्ट नमूना। इसका निर्माण तत्कालीन शासक वेस्पियन ने 70-72वीं ई. में प्रारंभ किया था, जिसे उनके बाद सम्राट टाइटस ने 80 ई. में पूरा किया। 81 से 96 के बीच डोमीशियन के राज में कुछ और परिवर्तन किए गए। इसका नाम सम्राट वेस्पियन और टाइटस के पारिवारिक नाम फ़्लेवियस के कारण एम्फी थिएटर फ़्लेवियम रखा गया, परन्तु वर्तमान में

यह कोलेजियम के नाम से ही प्रसिद्ध है। हालाँकि इसके अब खंडहर ही शेष हैं, परन्तु इन खंडहरों को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि इमारत कितनी विशालकाय और यहाँ होने वाली गतिविधियाँ कितनी भयावह रही होंगी। यहाँ योद्धा अपनी युद्ध कला का प्रदर्शन करते थे और यहाँ तक कि कई दिनों से भूखे रखे जंगली जानवरों से लड़कर उन्हें अपने कौशल का प्रदर्शन करना होता था। इन जानवरों को प्रतियोगिता स्थल तक लाने के लिए भूमिगत मार्ग का उपयोग किया जाता था। और फिर बुरी तरह से घायल और शहीद योद्धाओं को रखने की भी अलग व्यवस्था थी। मनोरंजन का यह एक भयानक तरीका था। आखिर कितने लोगों की जानें इस खेल में जाती होंगी, दृश्य कितना भयावह होता होगा और इसमें वीरता और मनोरंजन ढूँढ़ने वाले किस मानसिकता के होते होंगे, सोचकर ही मन कैसा-कैसा हो आता है। कोलेजियम में घूमते हुए अक्सर ही लगता, जैसे अभी उस द्वार से भूखे शेर निकलकर आएँगे। वहाँ खड़े ज़्यादातर दर्शकों के इस कल्पना मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते थे। खैर वहाँ से राम-राम करते बाहर निकले, तो कुछ रोमन "रोमन एंड कंट्रीमेन" स्टाइल में (पारम्परिक रोमन वेशभूषा) बाहर घूम रहे थे। लोग उनके साथ तस्वीरें खिंचवा रहे थे। ज़ाहिर है ये मौका हम भी नहीं खोना चाहते थे, तो उचककर पहुँच गए और बत्तीसी निकालकर खड़े हो गए। फ़ोटो लिया गया और जैसे ही हम धन्यवाद कह कर हटे, तो उसने हमें पकड़ लिया और बोला फ़ीस निकालो। हमने कहा, कहाँ लिखा है? तो महाशय बोले "30 डिग्री की गर्मी में ये लबादा लादे हम यहाँ फिर रहे हैं, पागल नहीं हैं। फ़ोटो खिंचवाने के पैसे लगते हैं। वो देने पड़ेंगे।" परन्तु रोम की इस लूट-खसूट और टूरिस्टों को ठगने की परंपरा के बारे में भी हमने काफी सुना हुआ था। आखिर हमारी दिल्ली भी इस मामले में किसी से कम तो नहीं है। हम अड़ गए कि ऐसा कहीं लिखा नहीं है। और आपने पहले कहा

भी नहीं था। इसलिए हम तो नहीं देंगे। वह भी ढीठ था, जोर ज़बरदस्ती पर उतर आया, कहने लगा कि फिर फ़ोटो डिलीट करो। हमने उसे फ़ोटो डिलीट करके दिखा दी। अब वह अपनी जीत पर गर्व करता चला गया, परन्तु उसे यह नहीं पता था कि उसका पाला हिन्दुस्तानियों से पड़ा था, जो उस ज़माने में ज्ञानी कहलाते थे, जिस ज़माने में उसके पूर्वजों को मुँह भी धोना नहीं आता था। असल में हमने उसे जो डिलीट करके दिखाया था, वो वीडियो रिकॉर्डिंग था और उसके बाद का स्टिल फ़ोटो हमारे कैमरे में सही सलामत था।

इस तरह रोम में एक रोमन को चकमा देकर हम पहुँचे वहीं पास के एक महल में जहाँ के खंडहर में भी भव्यता और ऐश-ओ-आराम झलक रहा था। सभ्यता के आरम्भ में भी उस महल में प्रयोग होने वाला मार्बल किसी उच्च कोटि के मार्बल से ज़्यादा अच्छा प्रतीत होता था और वहीं एक जगह पर एक ग्लास पानी डालकर, हमारे साथ की गाइड ने यह सिद्ध भी कर दिया। पानी पड़ते ही वह जगह एक धूल पड़े पत्थर की जगह बेहद खूबसूरत, रंगीन और चमकदार नज़र आने लगी। वैसे यहाँ यह कहना भी आवश्यक होगा कि भवन निर्माण हो या मूर्ति कला, रोम की अपनी एक अलग ही पहचान है। जगह-जगह लगे हुए स्टेचू इतनी सूक्ष्म मानवीय शारीरिक बनावट का नमूना है कि देखने वाला दांतों तले उंगली दबा लेता है। अभी तक मैंने, भारत का कोणार्क हो या फ़्रांस का लौर्व, ज़्यादातर जगह मूर्तियों, प्रतिमाओं या चित्रों में स्त्री को ही कलात्मक रूप में देखा था, परन्तु रोम में (पूरे इटली में ही) इसके इतर पुरुष के नग्न स्टेचू दिखाई पड़ते हैं, जो वहाँ के मूर्तिकार की कारीगरी, मानवीय शरीर संरचना विज्ञान और उच्च कलात्मकता को बताते हैं। सुवेनियर के तौर पर भी इसी तरह की मूर्तियों की वहाँ सर्वाधिक बिक्री होती देखी जाती है। रास्ते में रोम की पुरातन दीवार और बहुत से कलात्मक स्मारकों से गुज़रते हुए हमारा अगला पड़ाव था



‘वेटिकन सिटी’।

बचपन से सामान्य ज्ञान की पुस्तक में पढ़ते आए थे कि दुनिया का सबसे छोटा देश है ‘वेटिकन सिटी’, तब लगता था छोटे से किसी द्वीप या पहाड़ी पर छोटा-सा देश होगा। पर ये कभी नहीं सोचा था कि एक देश के अन्दर क्या बल्कि एक शहर के अन्दर ही ये अलग देश है। करीब 44 हेक्टर में बना, कुल 800 लोगों की आबादी वाले इस देश का अपना राजा है। इसकी राजभाषा है ‘लातिनी’। ईसाई धर्म के प्रमुख सम्प्रदाय रोमन कैथोलिक चर्च का यही केन्द्र है, इस सम्प्रदाय के सर्वोच्च धर्मगुरु पोप का यही निवास स्थान है और उन्हीं की यहाँ सत्ता है। अपने अलग कानून हैं। यहाँ तक कि अपना अलग रेडियो स्टेशन, अपनी अलग मुद्रा है। अपना अलग पोस्ट ऑफिस भी, जो अपनी डाक टिकट तक अलग बनाते हैं। यहाँ तक कि ज्यादातर रोम वासियों द्वारा इटालियन डाक सेवा की जगह वेटिकन डाक सेवा इस्तेमाल की जाती है, क्योंकि ये ज्यादा तेज़ है। वेटिकन सिटी अपने खुद के पासपोर्ट भी जारी करती है, जिसे पोप, पादरियों, कार्डिनल्स और स्विस् गार्ड के सदस्यों (जो इस देश में मिलिट्री फ़ोर्स की तरह काम करते हैं) को दिए जाते हैं। और इतना सब होने पर भी यह कोई अलग देश नहीं लगता। रोम के अन्दर ही बस एक अलग-सा केंद्र लगता है। वृहत और बेहद खूबसूरत प्रतिमाओं से सजा एक कैम्पस।

जिस दिन हम वेटिकन सिटी पहुँचे, रविवार था और वहाँ खास प्रार्थना का आयोजन था, जिसमें हिस्सा लेने के लिए महंगी टिकट के बावजूद लम्बी लाइन थी। अन्यथा चर्च में आम लोगों का प्रवेश निषेध था। परन्तु म्यूज़ियम खुला हुआ था। हम लोगों में से किसी को भी ना तो धर्म में, ना ही प्रार्थना में इतनी रुचि थी कि महंगी टिकट लेकर दो घंटे की लाइन में लगते। अतः फ़ैसला हुआ कि यहाँ दोपहर का खाना त्यागकर लाइन में लगने से बेहतर है कि म्यूज़ियम देखकर ही निकल लिया

जाए और बाकी का दिन रोम की बाकी जगह देखने में बिताया जाए। तो हम भव्य प्रतिमाओं को निहारते हुए और बाहर खड़े गार्ड्स के साथ तस्वीरें खिंचवाते हुए म्यूज़ियम में पधारे, जहाँ की भव्यता देखकर पहली बार एहसास हुआ कि वाकई किसी अमीर राज-घराने में आ पहुँचे हैं। खैर म्यूज़ियम तो बहुत ही बड़ा था, पर उसका छोटा-सा चक्कर लगाकर हम निकल आए और सोचा कि अब कुछ खाने का जुगाड़ किया जाए।

पिछले कुछ दिनों से इटली के अलग-अलग शहरों में घूमते हुए पिज़्ज़ा, पास्ता और पानीनि ही खा रहे थे। अब चूँकि राजधानी रोम में थे और अब हम रोम की मुख्य सड़क पर खड़े थे, माहौल कुछ-कुछ अपने देश जैसा ही लग रहा था। अतः एक आशा हुई कि शायद कोई दाल रोटी वाला भारतीय भोजनालय मिल जाए। परन्तु हमारा ये कयास भी गलत साबित हुआ। इटली में उनका ही भोजन इतना प्रसिद्ध है कि किसी और देश के व्यंजनों की शायद गुंजाइश ही नहीं। हाँ कुछ एक चीनी रेस्तोरॉज़रूर दिखाई दिए। अब हमारी समझ में आया कि इटली से लौटकर आने वाले भारतीय क्यों इस महान क्वीज़िन के देश में खाना न मिलने की शिकायत करते हैं। असल में शाकाहारियों के लिए सचमुच समस्या है। भाषा की अनभिज्ञता के कारण कौन-सी सब्ज़ी किस पिज़्ज़ा, पास्ता में पड़ी है यह समझ में नहीं आता और गलती से कुछ ऐसा न खा लें कि धर्म भ्रष्ट हो जाए। इस डर से ‘मार्गेरिटा’ यानी सिर्फ चीज़ वाले पिज़्ज़ा से काम चलाना पड़ता है। उस पर बाकी पकवानों में मसालों की अनुपस्थिति, उनकी जिह्वा को नागवार गुज़रती है। भारतीय के नाम पर एक-दो बांग्लादेशियों के रेस्तोरॉज़ ही नज़र आते हैं। वहाँ अपनी किस्मत आजमाने से तो अच्छा हो कि और एक दिन पिज़्ज़ा पर ही बिता लिया जाए। या फिर क्यों ना उन खास सजावटी बेहद खूबसूरत आइस्क्रिम पर हाथ आजमाया जाए, जिसे वहाँ जेलाटो कहा जाता है

और जिनकी म्यूज़ियम जैसी दुकानें उस सड़क के हर कोने में उसी तरह दिखाई पड़ रही थीं, जैसे इटालियन ब्रांड और डिज़ाइनर सामानों के छोटे-बड़े शो रूम्स। शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जो उनके आकर्षण से अछूता रहता हो। दुनिया भर के जितने फ़लेवर आप सोच सकते हैं, आपको वहाँ मिल जाते हैं। वहाँ टहल रहे हर यात्री के हाथ में एक खूबसूरत कोन दिखाई पड़ जाता है और हर कोन किसी कलात्मक सजावटी पीस से कम नहीं लगता। खैर कीवी, रम, वाइल्ड बैरी, मेलन जैसे अलग-अलग फ़लेवर की आइस्क्रीम लेकर हम पहुँचे कुछ ऐसी विचित्र-सी सीढ़ियों पर, जो यूरोप की सबसे व्यापक सीढ़ियाँ कही जाती हैं। ये नीचे 'पिआजा दे स्पंगा' से ऊपर चर्च 'त्रिनिता दे मोंटी' को जोड़ती हैं। क्योंकि इन्हें स्पेन की एम्बेसी को चर्च से जोड़ने के लिए बनाया गया था, इसलिए शायद इसका नाम स्पेनिश स्टेप्स है। एकदम खड़ी चढ़ाई पर चढ़ती हुई इन 138 सीढ़ियों को एक फ़्रांसिसी राजनयिक ने विरासत में मिले धन से बनवाया था। खैर स्वादिष्ट आइस्क्रीम से मिली ऊर्जा को 32 डिग्री की गर्मी में इन सीढ़ियों पर चढ़कर एक चर्च को देखने में गँवाने का हमारा मन ना हुआ और हमने वहाँ से कूच किया कुछ दुकानों की तरफ़।

आखिर इटली आए और कुछ गुच्ची या अरमानी जैसे ब्रांड की चीज़ें ना लीं, तो क्या खाक इटली आए? परन्तु ये नाम सिर्फ़ नाम के ही बड़े नहीं, दाम के भी बड़े हैं और शायद इटली की दुकानों से सस्ते लंदन की दुकानों में मिल जाते हैं। अतः उन्हें सिर्फ़ निहारकर कुछ निराश से जब हम बाहर सड़क पर निकले, तो एक बार फिर हमारे निराशा में डूबे मन को उबारा कुछ अपने ही तरह के लोगों ने। उन बांग्लादेशियों ने, जो वहाँ सड़क पर ही एक चादर

पर सभी प्रसिद्ध इटालियन ब्रांड का सामान लगाए बेच रहे थे। वो भी कौड़ियों के दाम और बिलकुल अपने देशी स्टाइल में। जैसे ही किसी पुलिस वाले को देखते, तुरंत सभी सामान चादर में लपेट ऐसे घूमने लगते, जैसे कोई पर्यटक ही हों। उनके जाते ही फिर से अपना बाज़ार लगा लेते और ग्राहकों को पटाने लगते। हालाँकि वह सामान हमें दिल्ली के पालिका बाज़ार जैसा ही लगा, परन्तु 'दिल के बहलाने को गालिब, ये ब्रांड अच्छा है' की तर्ज पर हमने भी कुछ खरीद लिया और पहुँचे रोम के सुप्रसिद्ध त्रेवी फ़ाउन्टेन पर।

26 मीटर ऊँचा और 20 मीटर चौड़ा ये रोम का सबसे बड़ा और दुनिया का सबसे प्रसिद्ध फव्वारा है। फव्वारे में जो प्रतिमा है, वह सागर के देवता नेपच्यून की है। जो सीपी और 2 समुद्री घोड़ों के रथ पर सवार हैं। इनमें से एक घोड़ा शांत और आज्ञाकारी है और दूसरा अशांत, जो कि सागर के मूड को दर्शाते हैं। यह फव्वारा रोम वासियों के पीने के पानी की आपूर्ति के लिए बनाया गया था, परन्तु अब इसे चखने की कोशिश भी नहीं कीजिएगा, क्योंकि अब यह पानी सलोरीन और अन्य रसायनिक पदार्थों का सागर है। इस फव्वारे के बारे में एक किंवदंती भी प्रचलित है कि जो इसमें सिक्का डालता है वह दुबारा रोम ज़रूर आता है।

रोम अभी काफ़ी देखना बाकी था, परन्तु समय अभाव ने हमें भी उस फव्वारे में एक सिक्का डालने पर मजबूर कर दिया, इस आशा में कि किंवदंतियाँ भी किसी न किसी आधार पर ही बनती होंगी। शायद इस सिक्के के बहाने हमारा दुबारा रोम आना संभव हो ही जाए। इसी आशा के साथ हमने एक सिक्का आँख बंद करके उस इच्छाधारी फव्वारे में डाला और रोम को 'आदिये' कह दिया।

**shikha.v20@gmail.com**



## यात्रा वृत्तांत

— इंदु बरोत  
इल्फोर्ड, यू.के.

जब सौंदर्य बोध की दृष्टि से उल्लास भावना से प्रेरित होकर यात्रा करते हैं और उसकी मुक्त भाव से अभिव्यक्ति करते हैं, तो वह यात्रावृत्तांत कहलाता है।

मानव प्रकृति व सौंदर्य का सदैव प्रेमी रहा है। वह जहाँ भी जाता है, वहाँ से साहित्य की भाँति कुछ-कुछ ग्रहण करता ही रहता है और उन ग्रहण किए गए प्रेम, सौंदर्य, भाषा, स्मृति आदि को, अपने शुद्ध मनोभावों को प्रकट करता है। जो साहित्य में समाहित होकर एक नई विद्या का रूप ले लेता है। इस साहित्य विद्या के पीछे मात्र यह उद्देश्य है कि लेखक अपने रमणीय अनुभवों को हू-ब-हू पाठक तक प्रेषित कर सके, जिसके माध्यम से पाठक उस अनुभव को आत्मसात् कर अनुभव कर सके।

दिसम्बर, 2017 में क्रिस्मस की छुट्टियों में भारत गए हुए थे, तो वही जयपुर से ही देशनोक यात्रा का मानस बनाया। वैसे तो प्रत्येक वर्ष जब भी भारत आते हैं, श्रीकरणी माता के दर्शन जरूर करते हैं, परन्तु प्रत्येक वर्ष दर्शन करने की लालसा शांत नहीं होती है। रात्रिकाल 9:00 बजे की जयपुर रेलवे स्टेशन से ट्रेन थी। घर से खाना खाकर 8:30 बजे निकल गए स्टेशन की ओर। स्टेशन पहुँचकर देखा, तो वातावरण अत्यंत शांतमय लग रहा था। रात का समय और मजबूत सर्दी। खुला-खुला सा आकाश, पर कुछ धुंध प्रतीत हो रही थी, बहुत बारीक धुनी हुई रुई-सी। बिना प्रतीक्षा किए कुछ ही समय में ट्रेन आ गई। हमने भी अपनी सीट ढूँढकर बिस्तर लगा लिए। वैसे आजकल रेलवे विभाग में कार्य सब समयानुसार होने लगे दिखते हैं, साफ़-सुथरी बेडशीट और कम्बल। चलो रेलवे विभाग को धन्यवाद दिया और बिस्तर में घुस गए। देशनोक

जो कि जयपुर से 350 किलोमीटर दूर है, पहुँचने का समय तीन बजे दिखा रहा था। रात का समय था। नींद आँखों में तो थी, पर मस्तिष्क में कहीं अटक रही थी कि कहीं आगे न निकल जाएँ, फिर भी डर के मारे अलार्म भी लगा लिया। ठण्डी रात के सन्नाटे में ट्रेन तेज़ी से दौड़ती हुई पेड़-पौधों को पीछे छोड़ती हुई-सी प्रतीत हो रही थी। कुछ जगह पर तो अंधेरी रात होने के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा था कि लम्बी-सी गुफा में ट्रेन दौड़ रही है। हल्की-सी झपकी आई ही थी कि सपने में देखा कि स्टेशन में अकेली खड़ी हुई हूँ, सिर्फ़ घनघोर अंधेरा चारों तरफ़। डर के मारे रात को 2:00 बजे ही उठकर बैठ गई। फिर क्या था किसी रेलवे विभाग के कर्मचारी से बड़ी मिन्नत कर चाय मँगवायी सबके लिए, पर उसको टिप देना नहीं भूले। गरम-गरम चाय पी, तब तक तीन बज चुके थे। रेल ने देशनोक स्टेशन पर ला उतारा, बिल्कुल समय पर। उफ़फ़ कड़ाके की ठण्ड जैसे किसी ने बहुत सारी सुइयाँ एक साथ शरीर में चुभा दी हों और वो पूरे शरीर को भेद रही हों, एक अजीब-सी सुरसुरी के साथ।

स्टेशन पर बिल्कुल सन्नाटा, ना कोई यात्री और ना कोई खुली चाय की दुकान, रात का समय साथ में सामान, स्टेशन से निकलकर गेस्ट हाउस पहुँचे, जाकर कमरा बुक करवाया और चाय के लिए महाशय को बोला। कमरे की चाबी लेकर कमरे में चले गए, व्यवस्था काफी अच्छी दिख रही थी। इतने में महाशय चाय का थर्मस भर कर दे गए। फिर क्या था, सबसे पहले चाय पी, बिना चाय के तो लग रहा था, शरीर जम ही जाएगा। एक कप चाय जब अंदर पहुँची, तो शरीर में थोड़ी स्फूर्ति आई।

मंदिर में पूजा का समय पाँच बजे है, तो सोचा नहाकर ही मंगला आरती देखी जाए, तो जल्दी नहा-धोकर तैयार होकर मंदिर की तरफ दौड़ पड़े। मंदिर में बाहर वाहन पार्क करने के लिए पार्किंग बनी हुई है। काफी मात्रा में गाड़ियाँ खड़ी थीं। हम मंदिर के सामने रामजी की दुकान पहुँचे। वहाँ जाकर चप्पल-जूते छोड़ दिए और वहीं से प्रसाद भी ले लिया।

मंदिर के बाहर काफी बड़ा मैदाननुमा चौक है, जहाँ खास अवसर पर हजारों लोग एक साथ एकत्र हो सकते हैं। ये आसोज के नवरात्रों में देखने को मिलता है।

मंदिर के मुख्य द्वार पर बड़े-बड़े चाँदी के किवाड़ लगे हुए हैं तथा संगमरमर से निर्मित बहुत ही सुंदर कलाकृतियाँ व उत्कृष्ट कारीगरी पूरी दीवार पर दिखाई दे रही है। मुख्य द्वार के पास ही दो शेर की संगमरमर की मूर्ति है, जो कि देखने में बूढ़े लग रहे हैं। कहा जाता है कि जब इस मंदिर का निर्माण हुआ था, उस समय ये मूर्तियाँ काफी जवान दिखती थीं, समय के साथ इनमें भी परिवर्तन आया है।

मंदिर के अंदर प्रवेश करते हैं, तो चूहों की सेना दिखाई देती है, जिसे कोई भी आम आदमी देखकर घबरा जाए। किंतु मैं प्रत्येक वर्ष आती हूँ, तो अब डर नहीं लगता है, इस मंदिर में चूहों का एक छत्र राज है। मंदिर के अंदर प्रवेश करते ही हर जगह चूहे ही चूहे नज़र आते हैं। चूहों की अधिकता का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि मंदिर के अंदर मुख्य प्रतिमा तक जाने के लिए अपने पैर घसीटते हुए जाना पड़ता है। यदि पैर उठाकर रखते हैं, तो चूहे घायल हो सकते हैं, जो अशुभ माना जाता है। इस मंदिर के चूहों की एक विशेषता है कि मंदिर में सुबह पाँच बजे की मंगला आरती और शाम को सात बजे की संध्या आरती के वक्त चूहे अपने बिलों से बाहर आ जाते हैं। शायद दर्शन के लिए। यहाँ पर रहने वाले चूहों को काबा कहा जाता है।

कहा जाता है कि करणी माता के मंदिर में रहने वाले चूहे माँ करणी की संतान हैं। कथानुसार एक बार करणी माता के सौतेले पुत्र लक्ष्मण कोलायत में स्थित कपिल सरोवर में पानी पीने की कोशिश में डूबकर मर गए। जब माँ करणी को यह पता चला, तो उन्होंने मृत्यु के देवता यम को उसे पुनः जीवित करने की प्रार्थना की। पहले तो यम ने मना कर दिया, परंतु बाद में विवश होकर उनको पुनर्जीवित कर दिया।

यह भी कहा जाता है कि देवी के वंशज चारण लोग मरने पर काबा हुआ करते हैं और काबा से चारण किसी कवि ने कहा है —

“कर काबों किनियाण, मैहर करिजे मावड़ी  
देवी रखजे ध्यान, किरपा कीजै मावड़ी  
चरणों दीजे चाकरी, देवी मढ़ देसाण  
मढ़ में रखजले सदा, सुन या आरदास मेरी  
मावड़ी ?”

ये काबे मंदिर की मर्यादा से मर्यादित है। ये मुख्य द्वार से बाहर नहीं जाते, इसके लिए कहा जाता है —

“काबा कार लोप नहीं।”

कुछ सफेद चूहे भी होते हैं, जिन्हें साक्षात् माँ करणी का रूप माना जाता है, जिसके दर्शन बहुत शुभ होते हैं। इनके दर्शन करने मात्र से आपकी सम्पूर्ण मनोकामना पूर्ण होती है। कुछ लोग सीढ़ियों पर बैठे हैं। वहाँ दो गायक जिन्हें बीरम कहा जाता है, हारमोनियम व नगाड़ों के साथ कुछ गा रहे हैं, जिसे चिरजा कहा जाता है। चूहे इन सभी लोगों के ऊपर चढ़ रहे, कोई हाथ पर कूद रहा है, तो कोई आदमी के साफे में घुस रहा है। भले ही यहाँ आने वाले भक्तगण अपने घरों में चूहों से डरते हैं, परंतु यहाँ इस प्रांगण में बिल्कुल निष्क्रिय होकर बैठे हैं।

पूजा का समय हो गया। सब बिल्कुल नियमानुसार

एक छोटी-सी लाइन में लग गए और झुककर करणी माता के जोत के दर्शन करने लगे। पंडित जी आरती लेकर आए तथा जोर से नगाड़े बजने लगे, जिनकी आवाज़ से पूरे शरीर में झुरझुरी-सी हो गई और रोंगटे खड़े हो गए, जैसे साक्षात् माँ प्रकट हो गई हों। आरती के एक-एक क्षण बहुत ही वीर, अद्भुत, वात्सल्य सभी प्रकार के रसों से ओत-प्रोत लग रहे थे।

करणी माता बीकानेर राजघराने की कुलदेवी भी हैं। कहते हैं कि उनके ही आशीर्वाद से बीकानेर व जोधपुर रियासत की स्थापना हुई थी। करणी माता के वर्तमान मंदिर का निर्माण बीकानेर रियासत के महाराजा गंगासिंह ने बीसवीं शताब्दी में करवाया था। माना जाता है कि करणी माता 151 साल तक जीवित रही थीं। वर्तमान में जहाँ ये मंदिर स्थित है, वहाँ एक गुफा में करणी माता अपनी ईष्ट देवी की पूजा किया करती थीं। ये गुफा आज भी मंदिर में स्थित है, जिसे गुम्भारा (निज मंदिर) कहा जाता है। करणी माता ने अपने स्वयं के कर कमलों द्वारा प्रस्तर खण्डों पर जाल की लकड़ी को छाजन देकर बिना चूने गारे के इसका निर्माण किया था।

करणी माता वर्ष 1538 में ज्योतिर्लिन हो गई थीं। उनके ज्योतिर्लिन होने के पश्चात् भक्तों ने उनकी मूर्ति स्थापना करके उनकी पूजा शुरू कर दी, जो कि अब तक निरंतर जारी है।

इन्हें माता जगदम्बा का अवतार माना जाता है। पंडित जी ने निज मंदिर में पूजा करने के पश्चात् बाहर प्रांगण में दायें में जुझारू जी की तथा बाद में बायें में सात बहनों तथा इंद्र बाईसा के मंदिर में भी पूजा की, तत्पश्चात् हमने उसमें से धूप ले ली। निज मंदिर में पंडित के अलावा और कोई नहीं जा सकता है।

गुम्भारे में प्रतिष्ठित करणी माता की मूर्ति का निर्माण जैसलमेर के बन्ना खाती द्वारा किया गया। बन्ना खाती अंधा हो गया था। उसे करणी माता ने दृष्टि प्रदान कर दर्शन दिए। बन्ना ने माताजी के

जिस रूप में दर्शन किए, उसी रूप को पत्थर पर उत्कीर्ण कर दिया। मूर्ति में करणी माता के चेहरे पर सौम्य मुस्कान है, नेत्र मुदित हैं, सिर के मुकुट पर छत्र बना हुआ है। गले में हार व दोलड़ी मोतियों की माला है। हाथों में भुजबंध व चूड़ा है। पैरों में पायल व करधनी है। दाहिने हाथ में त्रिशूल है, जिसके नीचे महिषासुर का सिर है। बायें हाथ में नरमुण्ड की चोटी पकड़े हुए हैं।

करणी माता की मूर्ति के बिल्कुल पार में काला और गोरा भैरव है। दाहिनी तरफ़ करणी माता की पाँच बहनों की मूर्तियाँ तथा आवड जी की मूर्तियाँ पत्थर पर खुदी हुई स्थापित हैं। खूब सारे स्वर्ण छत्र लगे हुए हैं। त्रिशूल लगे हुए हैं। मंदिर के द्वार स्वर्ण निर्मित है। निज मंदिर के सामने गेहूँ से भरी चैकोर हाण्डी बनी हुई है, जिसमें लोग अनाज डालते हैं। ऊपर की ओर सप्त अश्व रथ संगमरमर पर उत्कृष्ट तरीके से उकेरे गए हैं। वैसे भी संगमरमर की उत्कृष्ट कलाकृतियाँ यहाँ की विशेषता है। इसी के पास एक बड़ा-सा चाँदी का भाल है, जिसमें बहुत सारा प्रसाद रखा है। हमने भी प्रसाद चढ़ाने के लिए दिया, तो पंडितजी ने हमारा प्रसाद उस थाल में डाला और उसमें से वापस उठाया और हमें दे दिया। उस थाल में कम से 10-20 चूहे प्रसाद खा रहे थे। दाहिनी ओर एक ओर बड़ा थाल था, जिसमें दूध भर रखा था। श्रद्दालुगण आ रहे थे तथा उस दूध को चरणामृत की तरह ले रहे थे।

सुबह के सात बज गए हैं। सूर्य की किरणें पूरे मंदिर में फैलते ही वातावरण अपूर्व व आकर्षक लगने लगा।

मंदिर में खुले स्थान पर जाल लगाया हुआ है, जिससे चील्म गीदड़ व दूसरे जानवरों से चूहों की रक्षा हो सके।

मंदिर में बायीं तरफ़ महाराज के परमभक्त व गायों के चरवाहों की मूर्ति लगी हुई है। उनके बलिदान के सम्मानार्थ श्री करणी जी ने अपने जीवन काल में ही उनकी पूजा प्रारंभ करवा दी थी। हमने

भी उन दोनों को अपने कैमरे में कैद कर लिया।

बायीं तरफ़ दो छोटे-छोटे मंदिर बने हुए हैं। एक तरफ़ सातों बहनों का मंदिर है, जिसमें करणी माता की सगी बहनें हैं तथा दूसरी तरफ़ आराध्या देवी आवड़ का भव्य मंदिर है, जिसमें शक्ति इंद्रबाईसा की प्रतिमा भी विद्यमान है। वहाँ परिक्रमा के पास ही दो नगाड़े भी रखे हुए हैं। जो भी श्रद्धालु आता है एक बार इन नगाड़ों को बजाना ज़रूरी है। मंदिर के दूसरी तरफ़ जुझारो का स्थान भी है।

मंदिर के परिसर में दो बड़े कड़ाव भी रखे हुए हैं। इन्हें सावण-भादवा कहते हैं। इन कड़ावों में माता का प्रसाद बनता है। इनके पास ही हवन शाला है, जो दुर्गाष्टमी के दिन पूजित होती है।

इन कड़ावों के पास भीड़ लगी हुई थी, जिनमें लोग कभी इधर, कभी उधर, कभी हवन शाला में जाकर कुछ ढूँढ़ने का प्रयास कर रहे हैं। हम थोड़े ही पीछे रहने वाले थे, हम भी बन गए उन लोगों का हिस्सा। तभी कोने में एक सफ़ेद काबा दिखा। सभी लोग हाथ जोड़कर दर्शन करने लगे, तो हम लोगों ने भी सफ़ेद काबा के दर्शन किए। मन धन्य हो गया तथा यात्रा सफल—सी प्रतीत होने लगी। अब तक पैर सुन्न होने की कगार पर पहुँच गए और कुछ गंदे भी हो गए, घसीट-घसीट कर चलने के कारण। बाहर निकलने से पहले गरम-गरम पानी से पैर धो लिए, चल पड़े वापस रामजी की दुकान पर, कुछ-कुछ उदर-पीड़ा भी शुरू हो चुकी थी, भूख के मारे, किंतु इस समय केवल चाय बिस्कुट ही सहारा थे। सो ले ली एक कप चाय फिर पैदल ही पास में स्थित शिव मंदिर चले गए। संगमरमर से निर्मित शिव मूर्ति बहुत ही शांत व सौम्य दिख रही थी। कुछ देर बैठने के बाद नेहड़ी जी के मंदिर जाने की सोचने लगे, जो कि यहाँ से एक डेढ़ किलोमीटर दूर था। धूप ने भी तेज़ी पकड़ ली थी, तो कुछ जोश भी आ गया।

नेहड़ी जी करणी माता का प्रिय निवास व लम्बी साधना स्थली कह सकते हैं। यह स्थान जागलू

राज्य के घोड़ों व अन्य पशुओं का चरागाह था। जागलू के पुष्ट तत्कालीन शासक राव कान्हा ने श्री करणी की घोर अवहेलना कर, उनकी दिव्यता को ललकारा, तो महाशक्ति ने सिंह रूप धर कर कान्हा को मृत्युदण्ड देकर उसके भाई राव रिडमल को नेहड़ी जी में ही जागलू का राजा मनोनीत कर दिया तथा राव रिडमल ने अपना आधा राज्य माँ करणी को भेंट कर दिया। जिसे माँ ने सर्वजन हितार्थ अर्पित कर दिया।

माँ की आज्ञा से दही मंथन करने हेतु मंथन दण्ड के रूप में खेजड़ी की सूखी लकड़ी रोपी गई थी, जिसे माँ ने अपने कर कमलों द्वारा दही के छींटें देकर हरा-भरा खेजड़ा बना दिया। इसी खेजड़ी के नीचे माँ करणी की प्रतिमा की पूजा होती है। इस खेजड़ी को कल्पतरु माना जाता है। अब तो इसको भी जाल से ढँक दिया है। पर मान्यता है कि इसके छोटे-से टुकड़े को हमेशा अपने पास रखें, तो कोई बुरा नहीं होता। बड़ी मुश्किल से एक बहुत ही छोटा-सा टुकड़ा हम भी ले पाए। बाहर आते ही देखा कि भिखारियों ने अपनी पूरी सेना ला रखी है। बस दुआओं की बारिश—सी शुरू हो गई — बाई प्रसाद दे दें, बाई पीसा दे दें, तेरी नौकरी लागसी, तेने गाड़ी मिलसी। सोचा दूँ, पर किस-किस को दूँ। फिर भी हिम्मत कर थोड़ा-थोड़ा सभी में बाँट दिया। ओरण में बेरी के झाड़ को वृंदावन स्वरूप मानते हैं। यहाँ आकर अगर बेर नहीं खाए, तो यात्रा सफल नहीं मानते। तो हमने भी थोड़े झाड़ियों से बेर तोड़कर रख लिए घर के लिए और कुछ खा भी लिए। कहते हैं —

“सातपुरी संसार में, सातू ही मेरसमान पुरी आठवी देशनोक, देव धाम देशाण।”

थोड़ा पानी पीकर, आराम किया, फिर पास में ही नवनिर्मित मनोरमा को देखने की लालसा जाग उठी और मुड़ गए उसी तरफ़। यहाँ करणी जी के सभी पहलुओं को दिखाया गया। उनके जीवन के विभिन्न प्रसंगों का मनोरम चित्रण देखकर, कोई भी

अभिभूत हो सकता है। वहीं पाँच करोड़ की लागत से बनी गन मेटल से निर्मित करणी स्टेच्यू है, जो देशनोक की शान बढ़ा रही है।

समय देखा तो तीन बज चुके थे, पेट में चूहे दौड़ रहे थे। अब बस सीधे होटल पहुँचे खाना खाने। खाने में तेल और मिर्ची कुछ ज़्यादा ही मात्रा में डाल दिए थे, पर खाना बहुत स्वादिष्ट लग रहा था। कुछ देर कमरे में आकर आराम किया, शाम के पाँच बजे उठकर चाय पी और वापस निकल पड़े। देशनोक की गलियों में होते हुए आवड़ जी के मंदिर पहुँचे। इस मंदिर में स्वयं करणी माताजी की पूजा की मंजूषा रखी हुई है। इस मंदिर में इस ऐतिहासिक मंजूषा की पूजा की जाती है। इसमें आवड़ जी महाराज की सिंदूर चर्चित प्रतिमा भी स्थित है। यहाँ पर भी जोत देखी।

ऊँची-नीची गलियाँ कुछ छोटी, कुछ बड़ी, जिनमें विभिन्न शैलियों के तरह-तरह के मकान, अपने-अपने ढंग व सुंदरता का यह मिश्रण और घरों की बेतरतीबी अपना एक अलग सौंदर्य लिए हुए थी। रास्ते में कुछ सोनीयों की भी छोटी-छोटी दुकानें थीं, जिन्होंने माँ करणी के लॉकेट लगा रखे थे। एक दो स्टेच्यू सर्कल भी थे। कुछ धर्मशालाएँ व स्कूल भी दिख रहे थे, जो कि आसोज के नवरात्रों में बिल्कुल भरे रहते हैं। धीरे-धीरे चलते हुए मंदिर के प्रांगण में पहुँच गए। कुछ दुकानों में करणी माता की चिरजाये चल रही थी। हमने सिंदूर, चूड़ी, चैन आदि की खरीददारी कर ली।

वहाँ देखा कि विदेशी सैलानियों की दो बस आई हुई हैं, जो कि बहुत ही अप्रत्याशित नज़रों से प्रत्येक चीज़ को देख रहे थे और कैमरे में कैद कर रहे थे। वैसे भी सर्दियों में भारत का आकर्षण विदेशियों को लुभाता रहा है और यही कारण है कि विश्व के हर कोने से यात्री यहाँ भ्रमण को आते हैं।

मंदिर की प्रसिद्धि विश्व स्तर पर है। यहाँ पूरे वर्ष भक्तों का मेला रहता है। मंदिर के निकट यात्रियों के ठहरने हेतु सुंदर व सुविधाजनक धर्मशालाएँ बनी हुई हैं। आसोज के नवरात्रों में यहाँ जगह ही नहीं मिलती रहने को। उस समय कई प्रकार के आध्यात्मिक, सांस्कृतिक व सामाजिक आयोजन, कवि-सम्मेलन के आयोजन भी होते हैं।

सात बज चुके थे और नौ बजे की वापसी की ट्रेन थी, तो संध्या आरती के लिए पुनः मंदिर चले गए। आरती दर्शन के बाद बाहर देखा, तो लंगर लगे हुए हैं जगह-जगह और लंगर के मालिक बड़े ही प्रेमभाव से सबको बुला-बुला कर ले जा रहे हैं। हम भी चल पड़े और रात्रि भोजन का प्रसाद ले लिया। पास में ही एक म्यूज़ियम था, जिसमें माँ करणी के जीवन को चित्रित किया हुआ है। उसको देखकर सीधे कमरे में गए, जल्दी-जल्दी अपना सामान समेटा और स्टेशन पहुँच गए। ट्रेन भी बिल्कुल समय पर थी, सो नौ बजे चढ़ गए अपनी ट्रेन में। एक अजीब-सा मन में महसूस हो रहा था कि माँ करणी अगले वर्ष फिर बुला लेना।

**indu.barot@yahoo.in**

# कोरोना काल की विकराल कथा

— डॉ. राकेश शर्मा  
गोवा, भारत

ई कठिन कराल कोरोना काल में तो भैया हम पर बहुत ही इमोशनल अत्याचार हुए हैं। भाई, ये कोरोना ना हुआ हमारी नाजुक सरकारी जान की आफत ही हो गई। अमा, न जाने कौन कमबख्त चोमू बवंडर था, जो आलू, बैंगन, पनीर, मशरूम, चमचम, रसगुल्ला, दही-भल्ला जैसे उत्तम भोज्य पदार्थ छोड़कर चमगादड़ को चखने गया था!! चमगादड़ से भैया अईसन वायरस कूदकर आदमजात की देह में आया कि आज सात महीने हो गए आदमी घर के अंदर लॉकडाउन में घुट-घुट कर जी रहा है ... बताइये!!

तो भैया, देश में ई कोरोना का कराल काल मार्च से ही शुरू हुआ, तो हमारी व्यथा-कथा भी मार्च से शुरू होती है। जिस दिन हमारे मोदी जी ने देश में लॉकडाउन घोषित किया था, उस दिन से आज तक कोई दिन ऐसा नहीं गया, जब हमने योग-प्राणायाम न किया हो और दिन में नीम्बू-शहद का गुनगुना पानी और रात में च्यवनप्राश के साथ हल्दी वाला दूध न पिया हो। अंकुरित अनाज, कच्चा लहसुन, पुरानी अदरक, मामेरा बादाम, काबुली अंजीर, अरबी खजूर, विलायती खुरमानी, अफगानी खारक, देशी मुनक्का न खाया हो और काली-मिर्च, सौंठ-पिपली का कड़क हर्बल काढ़ा न पिया हो, मुँह में लोंग और काली मिर्च न दबाई हो और सोते बखत नाक में षड्बिंदु का तेल न डाला हो। आप सोच रहे हैं, बहुत हो गया भैया यह तो ... अरे भाई साब, यही तक नहीं न रुके हैं हम .... बहुत दूर तक निकल गए हम साहब इस कलयुगी पिंड में स्थित प्राण की रक्षा करने और देश को राष्ट्रीय क्षति से बचाने हेतु .... !!

मार्च से ही हम घर पर वैसे दुबक ही गए,

जैसे कोई चूहा नागराज को देखकर अपने बिल में दुबक जाता है या कोई उधारी वाला साहूकार को देखकर अपने दड़बे में घुस जाता है। पर जब अप्रैल आते-आते डर कुछ बढ़ गया, तब हमने ऊपर वर्णित देशी टोटकों के साथ कुछ और एड-ऑन भी जोड़ दिए। कभी पानी में नमक डालकर, तो कभी आयोडिन या फिटकरी डालकर शामो-सहर गरारे किए। शुभचिंतकों की फ्री की प्रेरणा और प्रोत्साहन से गिलोय बटी, लक्ष्मी विलास रस, मकरध्वज की गोलियाँ, तुलसी की गोलियाँ, नीम की गोलियाँ जमकर खाईं। होम्योपैथिक दवा आर्सेनिक एल्बो, कैम्फर की गोलियाँ, अंग्रेजी दवाई एचसीक्यूसी + एजिथ्रल + आइवरमेक्टिन सब कुछ फाँके जा रहे थे और पत्नी-बच्चों को भी ठुँसवाए जा रहे थे। विटामिन सी की चूषक गोलियाँ पूरे घर में मुफ्त सरकारी राशन की माफिक बँटवा दी गई और बच्चे-बूढ़े सारे पेपरमिट की गोलियों की तरह इसे चूस रहे थे।

अरे, हँस रहे हैं आप...!! ये अभूतपूर्व अंतरराष्ट्रीय संकट आन पड़ा है भाई!! अभी मई महीने का भी पूरा दुखड़ा भी सुन लीजिए जनाब...!! मई नया-नया लगा था कि व्हाट्सएप विश्वविद्यालय पर एक दिन मेसेज आया कि यह वायरस ठंडी जगह से आया है और ठंडे देशों में ज्यादा फैल रहा है, इसलिए सब कुछ गर्म खाओ, गर्म पीओ... बस यही 'गर्म' लफ़्ज़ ही कोरोना का दुश्मन है.... ठंडी चीज़ खाओगे, तो वायरस दुश्मन-सा देह में जम जाएगा। अब क्या था भैया!! ए.सी., फ्रिज में हमने अलीगढ़ी ताला ठोक दिया और दिन भर फूँक-फूँक कर चाय की माफिक गर्म पानी में तुलसी पत्ता छोक-छोक कर पीते रहे। मई की गर्मी में दिन भर गर्म चाय, गर्म कॉफी,



गर्म सूप, गर्म दूध, चख-चख कर हमारी रसना भी सन्नाटे में आ गई। एक दिन पत्नी ने सर्व-विषाणु-रोधी-ऊष्म-जल के स्थान पर गलती से ठंडा पानी क्या पिला दिया, गुस्से में फ़ेसबुक और व्हाट्सएप दोनों पर ब्लॉक कर दिया उसे। किसी ने फिर ज्ञान दिया भईया कि “भाप सप्ताह मनाओ और कोरोना को भगाओ”... बस एक सप्ताह तक दिन में दो बार भाप लो और कोरोना पतली गली से निकल लेगा.... इस महाघोषणा के बाद दिन में चार बार अजवाइन-कलोंजी की भाप लेते रहे पूरे महीने। अब सबसे कहिएगा नहीं, एक दिन किचन में पड़े एक कलमुँहे भगोने में भाप लेते हुए, दिमागी भ्रम के मारे, पानी में हरे रंग के कोरोना वायरस की हँसती हुई-सी आकृति दिख गई। डर के मारे मुँह भगोने में थोड़ा ज़्यादा अंदर घुस गया। नाक में उबले छोले से छाले पड़ गए और यह सूजकर लाल टमाटर-सी दिखने लगी। बहुत दुर्गति हुई है भईया इस विकट काल में हमारी....? बीच मई में किसी वाट्सएपिया वैज्ञानिक ने फिर घोषणा कर दी कि यह वायरस भारत की विकट गर्मी में टिक नहीं पाएगा, पर मई में जब बीमारी का ग्राफ़ सबसे ऊपर चढ़ गया, तब जाकर हमारा इस गर्मी-वर्मी के हिसाब-किताब से भ्रम टूटा है साहब .... !!

अब किसी तरह मई तो राम-राम करते निकल गई भाईजान। जून आते दुनिया में कोरोना के आँकड़े देखकर हमारी तो जान हलक पर आ चुकी थी। कई बार सपने में प्लास्टिक से लिपटा अपना पार्थिव शरीर दिख जाता और हम चौककर बिस्तर से ही गिर पड़ते थे। तभी किसी रायचंद सलाहवाले ने बता दिया कि भईया वायरस से बचना है, तो सुबह उठकर, सबसे पहले कपालभाति और भस्त्रिका प्राणायाम करो। इससे गले और फेफड़े में वो वाइब्रेशन वाली गर्मी पैदा होती है, जिससे वायरस क्या, वायरस के पिता की भी औकात नहीं कि आपकी देह में क्षण भर टिक पाए। इसके बाद हमने यूट्यूब से वीडियो छाँटकर चटाई बिछाई

और किसी अघोरी बाबा की तरह अपनी सांसों की दहाड़-पछाड़ का ऐसा तांडव शुरू किया कि घर के बच्चे-बूढ़े तक इस फू-फास्स से दहशत में आ गए। आस-पड़ोस तक बात पहुँच गई कि आपके घर में रोज़ सुबह यह किस अजगर की विकराल फुफकार सुनाई देती है। फिर साब, श्रीमती जी ने बेलन हाथ में लेकर वो धमकियाँ लगाई कि इस योगिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया को भी सरकारी योजना की तरह बीच में ही रोकना पड़ा।

जुलाई आते-आते साबुन और सेनिटाइज़र से हाथ रगड़-रगड़कर हाथ की बची-खुची रेखाएँ भी घिस चुकी थीं। गिनकर दिन में 16 बार हाथ धोते थे और 66 बार 80% अल्कोहोल वाला सेनिटाइज़र घिसते थे। जिस दिन यह महान घोषणा हुई कि एन95 मास्क भी सुरक्षित नहीं है, उस दिन ऐसा लगा साब जैसे किसी वफ़ादार प्रेमिका ने एन मौके पर धोखा दे दिया हो। सारे मोहल्ले वाले जब 4-4 रुपये के सर्जिकल मास्क लगाकर घूम रहे थे, तब हम शान से एन95 मास्क लगाकर बाल्कनी में भी बैठ जाते थे। इस झटके से हम उबरे भी नहीं थे कि दूसरी दर्दनाक घोषणा कर दी गई कि कोरोना हवा से भी फैल सकता है। इसके बाद से तो साब हम पत्नी से भी मास्क लगाकर मिलने लगे। पार्टी, दावतें, शादी, भण्डारे में खाना बिलकुल बंद कर दिया। किसी ने बता दिया कि सब्जी-भाजी से भी वायरस घर में घुस सकता है। इस दहशत में हम भैया जैसे ही सब्जी लेकर आएँ, तत्काल उसे सेमी ऑटोमेटिक वाशिंग मशीन में एक चम्मच विनेगर डालकर 10 मिनट घुमा देते थे, इस चक्कर में कि सारे वायरस कमबख्त इसमें चक्कर खा-खाकर ही मर जाएँगे।

बहुत दहशत में गुज़र रहा ये कोरोना काल साब। फोन की कॉलर द्युन वाले अलग से डराते रहे। कभी ख़ाँसकर तो कभी बाहर न निकलने की धमकी देकर। इसी बीच अगस्त आ गया साब। रोज़ खबर आती रही कि आज वेक्सीन आएगी,



कल वेक्सीन आएगी। जैसे चातक पानी की चाह में आकाश को ताकता रहता है, उसी प्रकार हम वेक्सीन का इंतज़ार करते रहे। इस बीच हमने कंबल में घुसे-घुसे ही 270 वेबिनार भी अटेंड कर लिए और अपने लेपटॉप के ई-ड्रॉले में ई-प्रतिभागिता के भर-भर फोल्डर ई-प्रमाणपत्र जमा कर लिए। डंडे के डर से खुद तो बाहर नहीं निकले, पर घर में जमकर आटा और मोबाइल का डाटा चर-चरकर पेट कमरबंद की बालकनी से बाहर झाँकने लगा। थाली, ताली, घण्टा जमकर बजाया, दीपक भी जला लिया साब। कोरोना माई के नाम पर एक दिन का सपरिवार उपवास भी कर लिया। एक बाबा से एंटी-कोरोना ताबीज़ भी ले ली। हैल्थ इंश्योरेंस और टर्म इंश्योरेंस भी करा लिया।

सच कहता हूँ साहब, जिस दिन पुतीन काका ने वेक्सीन बनाने की घोषणा की उस दिन मेरी आँखों से खुशी के आँसू निकल कर मेरे चार-लेयर वाले मास्क को गीला कर गए। मैंने इनकी मुस्कुराती फोटो को अपने मंदिर में सजाकर, रोली-चावल लगाकर पुतीन चालीसा पढ़ी और उनके टिवटर हैंडल पर जाकर अपनी जवानी और बच्चों के बचपन की दुहाई देकर उनसे अपने लिए एक वेक्सीन सुरक्षित रखने की दरखास्त भी कर दी है। एक बात और जोड़ दिए रहे हैं साब। इसी बीच मुझे टीवी के विज्ञापनों का बहुत सहारा मिला और भारतीय होने का गर्व भी अनुभव हुआ, क्योंकि हमारी आत्मनिर्भर कंपनियाँ

इस दौरान कोई ऐसा प्रोडक्ट नहीं बना रही हैं, जिससे इम्यूनिटी न बढ़ती हो। रिफ़ाइन ऑइल से लेकर प्लाईवुड, मसालों से लेकर वाटर प्यूरिफ़ायर ... चाय, बेसन, सूजी, शेम्पू, शराब... हर चीज़ से रोग प्रतिरोधक क्षमता दनादन बढ़ाई जा रही है। बस अब एक विटामिन सी युक्त बनियान और आ जाए फेफ़ड़ों की सुरक्षा के लिए... आज अपना दूधवाला भी पूछ रहा था कि कल से आपके लिए इम्यूनिटी बुस्टर दूध लाऊँ? मगर 10 रुपये प्रति लीटर ज़्यादा देने होंगे। मैंने पूछा "भैया ये कैसा दूध है?" तो बताने लगा "यह ऐसी गाय का दूध जिसे हम रोज़ नीबू और संतरा खिलाते हैं, ताकि दूध में विटामिन सी मिले। रोज़ सुबह उसे एक घंटा धूप में भी खड़ी रखते हैं, ताकि उसके दूध में विटामिन डी भी हो। साथ ही चारे के साथ पालक, तुलसी, गिलोय भी मिलाया जाता है।"

मैंने सोचा भाई, तू ही रह गया था... तू भी धो ले हाथ इस इम्यूनिटी की बहती गंगा में..!!

(नोट : इस व्यंग्य का उद्देश्य कोरोना महामारी की विभीषिका को कमतर करके आंकना नहीं है बल्कि मानवता के लिए उपस्थित इस कठिन समय को कुछ हास-परिहास के माध्यम से सरस करना मात्र है, जिससे हम जीवन की राह पुनः तलाश सकें।)

**rksh99@gmail.com**

# चमचा इन दिनों

— डॉ. अशोक गौतम  
सोलन, भारत

औरों के इन दिनों सैकड़ों रोने हैं, पर अपने बंधु का इन दिनों बस एक ही रोना है। आप सोच रहे होंगे कि कोरोना काल में वे कोरोना को लेकर रो रहे होंगे। जी नहीं! अगर आप उनके रोने को लेकर ऐसा सोच रहे हैं, तो आप उनके व्यक्तित्व के साथ तो अन्याय कर रहे हैं, अपनी सोच के साथ भी सरासर अन्याय कर रहे हैं। उनको जो अदृश्य कोरोना गलती से सपने में भी देख लेता है, तो सावन भादो हो रोने लग जाता है।

उनके पास उनके बाप दादाओं के बाप दादाओं के वक्त वाला करामाती चमचा है। उनके बाप दादाओं के बाप दादाओं के बाप दादाओं को यह करामाती चमचा अपने बाप दादाओं की लंबी परंपरा से विरासत में मिला था। इसे ज़रा और साफ़ शब्दों में कहें, तो उनके पास खानदानी चमचा है या कि वे खानदानी चमचे हैं। कुछ भी समझ लीजिए अपने-अपने हिसाब से। कुछ बातें समझने की होती हैं, कुछ करने की। अगर समझने वाली बातों को कर दिया जाए और करने वाली बातों को केवल समझा जाए, तो सब उलट-पुलट होने का सौ प्रतिशत खतरा बना रहता है।

वे ही बताते हैं कि अपने समय में उनके लिजेंडरी बाप दादा इस चमचे की कृपा से सोए-सोए भी चांदी लूटा करते थे, सोना कूटा करते थे। चमचा चांदी कूटने-लूटने का सबसे कमीना हथियार होता है। चमचागीरी से भगवान पर भी वार मजे से किया कर लीजिए। क्या मजाल जो वे अपने हाथ की गदा को रत्ती भर भी हिलाएँ। चमचे के सामने जिसके होंठों पर युगों से हँसी न आई हो, वह भी मुस्कुराने के सिवाय और कुछ नहीं कर सकता। अमेरिका द्वारा

निर्मित मिसाइल का वार अपने लक्ष्य से चूक सकता है, पर चमचागीर के चमचे का नहीं। गीदड़ सींगी में वह सम्मोहन नहीं होता, जो चमचे के चमचे में होता है। चमचागीरी और तारीफ़ के बीच वैसा ही झीना-सा कोई आवरण होता है, जैसा आत्मा और परमात्मा के बीच माया का होता है। जिसे एक बार चमचागीरी की खाने की आदत पड़ जाए, वह अपने हाथों को बेकार घोषित कर उन्हें कटवाने से भी नहीं हिचकिचाता।

चमचागीरी और बैक डोर एंट्री का व्यसनी जीव अपने अतीत में चाहे कितना भी मेहनती और नियम कायदे वाला क्यों न रहा हो, इस व्यसन का शिकार होने के बाद वह मुँह के सामने फ्रंट डोर होने के बाद भी इधर-उधर हाथ-पाँव मारता बैक डोर ही ढूँढता है, सारी लाज शर्म त्याग चमचागीरी के अंधेरे कुएँ में गिर ही जाता है।

कभी इसी खानदानी चमचे को जेब में डाल उनके खानदान वाले अपने समय में जिसके भी आगे तो छोड़िए, जिसके भी दाएँ-बाएँ, अगल-बगल खड़े हो जाते, तो कुछ पल पहले तक जो चमचागीरी को अपराध मानते थे, वे भी उनकी चमचागीरी के मुरीद हो जाते। तब उन्हें लगता कि अब चमचे वालों के बिना उनका जीवन निरर्थक है। तब वे उस चमचे को जेब में डाले भर हर साहब का ब्रेकफ़ास्ट से लेकर डिनर तक तय करते। हर किस्म के साहब बीवी से अधिक उनको तवज्जो देते। रात को उनके बिना अलग, यों अलग होते ज्यों शरीर से आत्मा अलग हो रही हो। ऐसा वियोग चित्रण, तो पद्मावत में राजा रत्नसेन और पद्मावती का भी नहीं।

उनकी मर्जी के बिना तब साहब नहाते भी नहीं

थे। यहाँ तक तो पाखाने भी नहीं जाते थे। जब चमचा कहीं से आए, तो वे ही उन्हें पाखाने ले जाते। तब तक वे पाखाना रोके रखते जैसे तैसे। मतलब, खाने से लेकर पाखाने तक सब चमचे के श्रूर। या कि उनका खाना पाखाना सब चमचे ने अपने नाम करवा लिया था। ऐसे में चमचा चांदी नहीं कूटेगा, तो क्या मेरे जैसे आत्मनिर्भर बनने की ताक में बने मजबूरी के लुहार की तरह लोहा कूटेगा? वह भी ठंडा! असल में साहब! चमचागीरी होती ही है चांदी कूटने के इरादे से। जिसे चांदी कूटने की एक बार लत लग जाती है, वह हर एक के आगे ज़गियाए लोहे का होने के बाद भी अपने को चांदी का बनाकर पेश करता है। भले ही रोज़ हर रात उसे अपनी जीभ पर चांदी का पानी क्यों न चढ़वाना पड़े।

बिना मतलब चमचागीरी गधे से गधा भी कर जाए, तो मान जाऊँ। किसी निःस्वार्थी संसार में सब कुछ स्वार्थहीन हो सकता है, पर स्वर्गलोक तक में भी हर किस्म की चमचागीरी के पीछे एक नहीं, हज़ारों प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष स्वार्थ छिपे होते हैं, मुँह पर मास्क लगाए।

शुक्र कि उनके बाप दादाओं के चमचे के दिनों में फ़ेसबुक, व्हाट्सएप का चलन, प्रचलन, अडिक्शन नहीं था। वरना उनके बाप दादा इस खानदानी चमचे के बूते वहाँ भी चमचागीरी करते तबाही मचा देते। इसलिए अपने समय में उनके बाप दादा इसी चमचे के बूते ऐश करते-करते चमचागीरी को प्यारे होते रहे।

...पर अब जबसे उनके पास ये चमचा आया, तो इस खानदानी चमचे को पता नहीं किसकी नज़र लगी कि जो चमचा पुश्तों से चांदी बटोरवा, कुटवा रहा था, आजकल वही उनसे ठीक ढंग की रोटी भी नहीं कुटवा पा रहा। मुझे तो लगता है कि या तो उनको वह खानदानी चमचा सूट नहीं किया या फिर...इसलिए उनका इन दिनों बस यही रोना है

कि वे चमचे वाले चमचे होने के बाद भी चांदी नहीं कूट पा रहे हैं।

उनकी इसी चमचागीरी की पहाड़-सी परेशानी को देख, मैंने उन्हें कई बार की तरह आज फिर समझाते समझाया, यार! माना तुम पुश्तैनी चमचे हो या कि तुम्हारे पास पुश्तैनी चमचा है। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि तुम चमचे हो या कि तुम्हारे पास चमचागीरी वाला चमचा है। पर सच तो यह है कि अब इस चमचे का रंग फीका पड़ चुका है। ये चमचागीरी के पुराने कायदे कानून वाला चमचा है। ये उस समय का पीतल का चमचा है, जब लोग सीपियों से अपने बच्चों को ईमानदारी की घुट्टी पिलाया करते थे। आज समय कहीं का कहीं पहुँच गया है। अपने से भी आगे। अब तो लोग सोने के चमचे से अपने बच्चों को लिम्का पिलाते हैं। ऐसे में तुम और तुम्हारा ये चमचा दोनों आउट ऑफ़ डेट हो गए हैं। अब भला इसी में है कि चमचे के मामले में अपने को वक्त के हिसाब से अपडेट करो। बाप दादाओं का पुश्तैनी धंधा नकली दवाओं के कारोबार में तो मदद करता आया है, पर चमचागीरी के धंधे में नहीं।

आँखें हैं तो खोलो, आज चमचागीरी के क्षेत्र में हर पल नए-नए बदलाव आ रहे हैं। कल तक जो अपने को तीस मारखाँ चमचा समझा करते थे, आज उनका दूसरे दिन को पता भी नहीं चलता कि वे कहाँ गायब हो गए? जितनी तेज़ी से आज चमचागीरी का सेक्टर बदल रहा है, उतनी तेज़ी से तो टेक्नोलॉजी भी नहीं बदल रही। सुबह चमचागीरी के क्षेत्र में किए सफल प्रयोग शाम को आउट ऑफ़ डेट साबित हो रहे हैं। इसलिए बाप दादाओं के इस चमचे को रखो कबाड़ में और जो सच्ची को चांदी कूटना चाहते हो, तो चकाचक चांदी का चमचा हो जाओ। रात को सोए-सोए भी अपने प्रभु की फ़ेसबुक, व्हाट्सएप पर अंधाधुंध तारीफ़ें करते रहो। सोशल मीडिया पर उनकी तारीफ़ों के पुल नहीं, राम

सेतु से भी बड़े-बड़े सेतु बांधो, तो चांदी कूटने के असली हकदार बनो। आज किसी भी चांदी कूटने वाले को बाहर से ही सही, शुद्ध चांदी-सा जरूर होना पड़ता है।

अब इतना समझाने के बाद भी जो तुम बाप

दादा के बाप दादा के समय के चमचे से चांदी कूटने की फिराक में रहोगे, तो तय मान लो, आज तुम्हारे मुँह में ये जो थोड़ी बहुत मलाई-शलाई लग भी रही है न, कल इससे भी मुँह धो बैठोगे।

ashokgautam001@gmail.com

## कौन भागी?

— सुश्री चांदनी देवी रामधनी  
फ़ेनिक्स, मॉरीशस

चौबे जी, लम्बे चौड़े आदमी, पूरे एक सौ तीस किलो के, जैसी काया वैसा नाम, घनश्याम नारायण चौबे। चालीस के चौबे शुरू से ही गृहिणी की ज़िंदगी जीते आए हैं, क्योंकि चौबाइन जी ठहरी सरकारी शिक्षिका और चौबे ठहरे ठेठ आलसी और कंजूस। इनको बस एक ही शौक, खाना पकाने का और खाने का। चौबे जी का छोटा-सा परिवार, पूरे तीन लोग, खुद, बीवी और एक सत्रह साल की बेटी। देखो बच्चे पैदा करने में भी आलस और कंजूसी।

घर में कभी एक रुपये का फ़ालतू खर्चा ना किया, ना करने दिया। घर में ना स्कूटर, ना गाड़ी यहाँ तक कि साइकिल भी नहीं। खुद के पास इकलौता मोबाइल घर का, वो भी बटन वाला।

बीवी की पोस्टिंग दूर किसी गाँव में है, सुबह की पहली बस से निकलती है और कभी शाम को, तो कभी रात तक घर पहुँच पाती है। गाँव भी ऐसा कि ना फ़ोन लगे, ना मोबाइल में सिग्नल आए। चौबे जी की बेटी ने हाल ही में कॉलेज जाना शुरू किया। चौबे जितने आलसी उतने ही कंजूस, बेटी को मोबाइल दिलवाने से मना कर दिया। ख़ैर वो उनके घर का मामला था।

बीवी कई बार कहती “मैं हूँ जो तुम जैसे कंजूस आदमी के साथ गुज़ारा कर रही हूँ, कोई और होती तो कब का भाग जाती।”

चौबे जी—“हाँ तो तुम ही भाग जाओ ना, किसने रोका है?”

चौबाइन— “हाँ हाँ भाग जाऊँगी, तुमसे पूछूँगी थोड़े ही।”

ये आए दिन की चकल्लस थी, जो ना जाने कब से चल रही थी।

चौबे जी ने हाल ही में एक छोटी-सी दुकान खोल ली घर के पास, सुबह-सुबह घर का सारा काम निपटाकर दुकान में बैठ जाते।

ऐसे ही एक दिन सुबह घर का काम कर रहे थे, तो चौबे जी को आँगन में एक चिट्ठी मिली जिसमें लिखा था “मैं पड़ोस के राजू के साथ भाग रही हूँ, मुझे ढूँढने की कोशिश मत करना।”

चौबे जी ने पन्ने को पलट कर देखा, तो और कुछ भी नहीं लिखा था। चौबे का कलेजा बैठ गया। राजू जैसा बदमाश उन्होंने अपनी ज़िंदगी में नहीं देखा। राजू को तो कुछ महीने पहले खुद चौबे ने पुलिस से पकड़वाया था और ये भागी भी तो उसी राजू के साथ। चौबे ने पन्ने को वापस देखा, तो पाया कि उस पर नाम नहीं लिखा था, चौबे जी निराशा और गुस्से में जोर से चिल्लाए “अबे भागी तो भागी कौन, बीवी कि बेटी? कम से कम नाम तो लिख कर जाती।”

चौबे जी ने घर की तलाशी लेनी शुरू की, शायद कोई ऐसा सुराग हाथ लगे जिससे पता तो

चले कि भागी कौन है। मन ही मन चौबे बड़बड़ाए जा रहे थे “कैसी मनहूस सुबह है, घर में भूचाल आया है, पर पता नहीं किस तरफ से आया है।”

थक हारकर चौबे थाने को भागे और किसी से कोई बात नहीं की। किसी और से कहते भी क्या? भाग गई? कौन भागी?

हवलदार ने पूछा— “हाँ जी! कैसे आना हुआ?”

चौबे जी— “साहब वो भाग गई। वो उस बदमाश राजू के साथ भाग गई।”

हवलदार— “कौन भाग गई?”

चौबे जी— “ये नहीं पता कि भागी कौन है, बस ये चिट्ठी छोड़कर गई है।”

हवलदार— “आपका दिमाग ठिकाने पर है कि नहीं? भागी कौन है, ये नहीं पता, पर किसके साथ भागी है, ये पता है। सुबह-सुबह पीकर आए हो क्या?”

चौबे जी— “साहब मेरे घर में मेरे अलावा दो ही प्राणी हैं, बीवी और जवान बेटी। बीवी दूर गाँव के किसी स्कूल में पढ़ाती है और बेटी कॉलिज जाती है। दोनों सुबह जल्दी निकल जाती हैं। आज सुबह भी दोनों जल्दी निकल गई और ये चिट्ठी छोड़ गई। बीवी ने कई बार धमकी दी घर छोड़कर जाने की। अब समझ में नहीं आ रहा कि भागी कौन है।”

हवलदार— “आपकी स्थिति विकट है, ऐसा करो दोनों को फोन करो, जो नहीं भागी है कम से कम उस से तो बात होगी।”

चौबे जी का मुँह लटक गया, फोन दिलवाना तो चौबे जी के संविधान में था ही नहीं। डरते डरते बोले “फोन तो दोनों के पास ही नहीं है।” पहली बार चौबे को एहसास हुआ कि फोन दिलवा देते, तो शायद ये मुसीबत नहीं आती।

हवलदार ने कहा “ऐसा करो, बेटी के कॉलिज जाकर पता करो कि वो कॉलिज आई है कि नहीं।”

चौबे को ये सुझाव पसंद आया। थाने से बाहर निकले, तो बदन को जला देने वाली तेज़ धूप चौबे पर बरस रही थी। ऑटो पकड़कर कॉलिज पहुँचे, पूछते-पाछते बेटी की कक्षा तक पहुँचे, तो पाया कि बेटी कॉलिज आई ही नहीं। चौबे का कलेजा बैठ गया। अपनी बेटी का जीवन और अपनी इज्जत की बरबादी के खयाल में चौबे बेहोश होते-होते बचे। वापस थाने भागे और कहा “बेटी कॉलिज में नहीं है, वो ही भागी है, उस बदमाश राजू के साथ।”

हवलदार— “आपके पास बेटी की कोई फोटो हो तो दे दो, हम तलाशी शुरू करते हैं।”

चौबे जी— “फोटो तो घर पर है, मैं लेकर आता हूँ।”

चौबे घर पहुँचे, तो पाया कि बेटी तो घर में मौजूद है।

बेटी ने पूछा “आप कहाँ थे, घर का दरवाज़ा खुला पड़ा था, दुकान भी नहीं खोली आपने?”

चौबे— “पहले तुम बताओ तुम कहाँ थी, मैं तुम्हारे कॉलिज गया था।”

बेटी— “मेरी दोस्त दीप्ति का जन्मदिन था, हम सिनेमा देखने गए थे, मैंने माँ को बताया था कल रात को ही।”

चौबे गुस्सा होते हुए बोले “तुम्हारी माँ मेरी पिक्चर रिलीज़ कर के चली गई और तुम्हें सिनेमा की पड़ी है।”

चौबे उलटे पैर वापस थाने भागे और बोले “बेटी घर आ गई है, पक्का मेरी बीवी ही भागी है।”

हवलदार का सर चकराने लग गया, उसने कहा “महाराज तो बीवी की फोटो दे दो, उसी की तलाश शुरू करते हैं और क्या।”

चौबे ने वापस सर पकड़ लिया, जल्दबाज़ी में बीवी की तस्वीर लाना भूल गया। फिर से घर को दौड़ लगाई और मन ही मन सोचा “काश एक स्कूटर होता, तो ही ठीक था।”

बीवी की फोटो लेकर वापस थाने गया, भूख प्यास से बेहाल चौबे अपने जीवन में एक दिन में

इतना तो कभी सपने में भी नहीं भागा, जितना आज भागना पड़ा। एफ़.आई.आर. तैयार हो गई, तलाश शुरू होते-होते शाम हो गई। हवलदार ने भरोसा दिलवाया कि वो उसकी बीवी को ढूँढ देंगे, वो चाहे तो घर जा सकते हैं।

भूखे प्यासे चौबे ने दिल पर पत्थर रखकर रास्ते में दो कचौरी, दो समोसे और पाव भर जलेबी खाई। थकते हाँफते घर पहुँचे, तो एक और बार कलेजा मुँह को आ गया, बीवी और बेटा आँगन में बैठी चाय पी रही थी। ये क्या माजरा था, चौबे की समझ में ही नहीं आया। और ये दोनों घर में हैं, तो वो चिट्ठी!

चौबाइन बोली “मैं आपकी कौन-सी पिक्चर रिलीज़ कर के गई? ऐसा क्या किया मैंने?”

चौबे के पास कोई जवाब नहीं था। वो कोई जवाब दिए बिना वापस थाने भागा।

हवलदार ने देखते ही पूछा “अब क्या हो गया महाराज?”

चौबे जी – “साहब बीवी भी लौट आई है।”

हवलदार का मन हुआ कि चौबे जी को रात भर हवालात में लेकर सुतवाई करे, पर वो ऐसा नहीं कर सकते थे। उन्होंने चौबे जी से कहा “कल बीवी के साथ कोर्ट में आकर मामले का निस्तारण कर देना, नहीं तो हमें आपकी बीवी को कोर्ट में पेश करना पड़ेगा।”

चौबे सर लटकाकर घर की तरफ़ चल दिए और सोचते रहे कि आखिर वो चिट्ठी आई कहाँ से।

दो दिन बाद राजू आया चौबे की दुकान पर और बोला “अगली बार मेरे खिलाफ़ कोई कदम मत उठाना, वरना जो मैंने चिट्ठी में लिखकर फेंका वो कर भी सकता हूँ।”

चौबे अपनी भूल पर पछताने लगे और साथ ही उन्होंने निर्णय लिया कि अब कंजूसी में नहीं जीएँगे।

घर में छोटी-सी कार आ गई, तीन नए मोबाइल आ गए और हाँ, चौबाइन अब पेट से है।

**yeshna.ramdhonee@gmail.com**

## जोहन की कहानी

— डॉ. कुसुम नैपसिक  
नॉर्थ कैरोलाइना, अमेरिका

हमारे सरकारी विद्यालय में अंग्रेज़ी पढ़ाना कोई खेल थोड़े ही है। भई, जहाँ अमूमन कुछ अंग्रेज़ी के वाक्यों को छोड़कर कोई कुछ न समझता हो, वहाँ अंग्रेज़ी का शिक्षक होना बहुत बड़ी बात है।

हमारे यहाँ अंग्रेज़ी की पढ़ाई छठी कक्षा से शुरू होती थी और तभी से बच्चे ए, बी, सी, डी पढ़ना लिखना शुरू करते थे।

तभी हमारी बंसल मैम ने स्कूल में एंट्री ली। सच में, सबके दिलों में घंटी बज गई। एक से एक साड़ियाँ और कभी एक ही साड़ी को किसी ने उनके शरीर पर दुबारा सजे नहीं देखा था। कुछ लोग सोचते शायद इनके पति की साड़ियों की दुकान

होगी और कुछ लोगों में जिज्ञासा का विषय था कि इन साड़ियों को एक बार पहनने के बाद वे करती क्या होंगी?

आँखों पर धूप का चश्मा हमेशा मौजूद रहता, अगर वे कक्षा में होतीं, तो चश्मा सरक के सिर पर चला जाता, बाद में वापस आँखों पर। उनके लिए ही यह गाना बना था “गोरे गोरे मुखड़े पे काला काला चश्मा।”

उनकी एक खास पहचान और भी थी। एक रुपये के सिक्के के बराबर लाल बिंदी। बिंदी कुमकुम की होती, जिसे वे बड़े करीने से अपने माथे पर सजातीं। कभी किसी ने उनके मेकअप को बिगड़ते नहीं देखा



था। उन्होंने अपने रूप रंग से सबको आतंकित कर रखा था। वे जहाँ भी जातीं ऐसा लगता बौंस जा रही हों और उनके आसपास सभी टीचरों की घिग्गी बँध जाती।

हालाँकि वे अंग्रेज़ी की अध्यापिका थीं, लेकिन किसी ने कभी उनके मुखारविंद से अंग्रेज़ी का एक भी पूर्ण वाक्य नहीं सुना था। यदा कदा एक दो शब्द जरूर वे वाक्यों में पिरोके बिखेर देतीं, जिसे ग्रहण करना किसी माई के लाल के बस की बात नहीं थी। जैसे वाक्य शुरू करतीं “बट मैंने तो कहा था देट दे कम शुड टाइम।”

ज्यादातर उनकी ये अंग्रेज़ी घुली बातें किसी की समझ में नहीं आतीं, लेकिन कोई मतलब पूछने की हिम्मत नहीं करता। किंतु कभी-कभी सामने वाले के मायूस चेहरे को देखते हुए उन्हें तरस आ जाता और वे उसे वही बात हिंदी में दुबारा बताकर कृतार्थ कर देतीं।

कक्षा में तो वैसे भी कोई पूछने वाला नहीं था। एक तो हिंदी मीडियम और ऊपर से लड़कियों का विद्यालय। वे कक्षा में हमेशा पंद्रह से दस मिनट देर से आतीं और आते ही कहतीं “कल क्या पढ़ाया था?”

कोई कहता “जोहन की कहानी”

जी हाँ ‘जॉन’ को उन्होंने ‘जोहन’ बोलना सिखाया था, क्योंकि अंग्रेज़ी की कुंजी में हिंदी का यही अनुवाद दिया गया है।

उन्हें संतुष्टि नहीं होती, तो कहतीं “जोहन की कहानी” को अंग्रेज़ी में कैसे कहेंगे?”

जब वे कुछ भी अंग्रेज़ी में बोलने को कहतीं, तो ऐसी सन्नाटेदार खामोशी कक्षा में काबिज़ हो जाती, जैसे अभी-अभी किसी ने झन्नाटेदार झापड़ रसीद किया हो और कानों में खामोश घंटियाँ टनटनाने लगी हों। जब कोई जवाब नहीं मिलता, तो कुछ देर रुक के वे हम लड़कियों को पढ़ने लिखने का महत्व समझातीं, फिर कहतीं “तुम लोगों को घर पर बहुत पढ़ना चाहिए। अकेले मेरे पढ़ाने से कुछ नहीं होगा।

मैं कितना करूँगी?”

महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि जो वे पूछती थीं, वह उन्होंने पहले कभी बताया नहीं होता था। बेचारी लड़कियों के चेहरे स्याह पड़कर मुरझाने लगते।

फिर वे हमारा हौसला बढ़ाते हुए कहतीं “अरे! मैंने तो गधों को भी अंग्रेज़ी पढ़ा दी है, तो तुम जैसी गऊ लड़कियों को तो मैं अंग्रेज़ी सिखा ही दूँगी।”

सबके चेहरे फिर खिल उठते, जैसे अभी-अभी उन्होंने अमृत वर्षा करके हम लड़कियों के कलुषित चेहरों पर रक्तिम आभा का संचार कर दिया हो।

“चलो, अपनी-अपनी किताबें निकालो” वे मधु मिश्रित वाणी में बोलतीं। हम लोगों को प्रवचन देने के उपरांत उनकी वाणी स्वतः ही मधुर हो जाती, जैसे उनके अंदर गुरु मैया की आत्मा ने प्रवेश पा लिया हो।

बंसल मैम की प्रेरणा से हम लोग फिर अंग्रेज़ी सीखने के लिए तत्पर हो जाते और अंग्रेज़ी बोलने के सपने देखने लगते, जैसे मोटापे से परेशान व्यक्ति को कोई मोटापा घटाने का विज्ञापन दिखा दे और थोड़ी देर के लिए ही सही वह स्वप्न में विचरण कर अपनी छरहरी काया की झलक देख ले।

अंग्रेज़ी सिखाने का एक ही तरीका था मैम के पास, किताब से हम लोग एक-एक वाक्य अंग्रेज़ी में पढ़ते जाते और बंसल मैम उसका अनुवाद अपनी अंग्रेज़ी की किताब के बीच में रखी हुई कुंजी से करती जातीं।

कक्षा के बीच में सवाल पूछने के लिए रोकने-टोकने की कोई कवायद नहीं थी। सभी काम मज़े से चल रहा था कि एक दिन वह हो गया जिसका किसी को गुमान भी न था। हमारे विद्यालय में कुछ बड़े सरकारी अधिकारी दौरे पर आ गए।

उस पर वे सीधे हमारी कक्षा में ही पधारे। उस वक्त बंसल मैम अपनी कुंजी से हिंदी अनुवाद बताने में व्यस्त थीं और हम लोग अपनी कॉपी में हिंदी अनुवाद धड़ाधड़ लिखे जा रहे थे। अधिकारीगणों ने कक्षा का एक चक्कर लगाया, तो वे खुद ही चक्कर

में पड़ गए।

एक सफेद पैट कमीज़ वाला अधिकारी, जो शायद उनका मुखिया था, बोला “हमने सोचा यह अंग्रेज़ी की कक्षा है।”

“हाँ, तो यह अंग्रेज़ी की ही कक्षा है” बंसल मैम ने अपने सिर पर चढ़े चश्मे से खेलते हुए कहा।

“लेकिन बच्चे तो हिंदी में लिख रहे हैं।”

“क्या करूँ? इन लड़कियों को अंग्रेज़ी लिखनी नहीं आती। कितना सिखाती हूँ, लेकिन इनके सिल जैसे मग़ज में कोई बात फँसे तब न!”

हम सब लोग बहुत डर गए, सोचा अगर कोई सवाल हमसे अंग्रेज़ी में पूछ लिया, तो गए काम से।

लेकिन हुआ इसके ठीक उलट।

उन्होंने हमें छोड़ बंसल मैम की ही क्लास लेनी शुरू कर दी।

उन्होंने कहा “क्या आप बोर्ड पर अंग्रेज़ी में ‘एजुकेशन’ लिख सकती हैं?”

कुछ देर सोचते हुए मैम ने कहा “आज मैं भूल गई।”

तो उन्होंने खीजते हुए खुद ही बोर्ड पर ‘एजुकेशन’ शब्द लिख दिया। और बोले “पढ़िए, क्या लिखा है?”

मैम बोली “एदु—केट—आन”

हमारे लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर था, तो हमें तो पता नहीं चला कि उन्होंने ठीक कहा या ग़लत। हमारी हालत तो अंधा ढोए अंधे वाली थी।

लेकिन अधिकारी का चेहरा तमतमाने लगा, जिससे हमें आभास हुआ शायद उन्होंने ग़लत कहा है।

हमें लगा कहीं वह उन्हें थप्पड़ न लगा दे। जैसे मैम हमें कोई उच्चारण ठीक से न आने पर चटाख से लगा देती हैं। लेकिन ऐसा कुछ न हुआ।

वे बेहद संयमी मानुस थे, बोले “बंसल मैम, आप वह चैप्टर ही पढ़ दीजिए, जो आप पढ़ा रही थीं”

उन्होंने शुरू किया “औनके ऊपौन ए टाइम, जोहन यूसद तू लीव इन लंदन”

अधिकारी का धैर्य चुकने लगा और आख़िरकार हारकर उन्होंने हमारी कक्षा से रुख़सती ली।

बंसल मैम चेहरे पर एक गर्वित भाव से हमें ‘जोहन की कहानी’ पढ़ाती रहीं और हम बिना सोचे समझे लिखते रहे।

हम सब के मन में यह खलबली ज़रूर थी कि बंसल मैम को ठीक अंग्रेज़ी आती भी है या नहीं? कभी लगता था शायद नहीं, क्योंकि अधिकारी लोग खुश नहीं लग रहे थे। ख़ैर हमारे पास उन्हें जाँचने का कोई ज़रिया नहीं था, सो हमने सोच लिया शायद मैम को ही ठीक अंग्रेज़ी आती होगी। उन अधिकारियों को क्या मालूम? वे शिक्षक थोड़े ही हैं!

हमारे माता—पिता हमेशा यही कहते हैं कि अध्यापक जो कहते हैं वही सही होता है। फिर बंसल मैम की अंग्रेज़ी से तो सभी टीचर थर—थर काँपती हैं।

बाद में यह भी पता चला कि एक राजनीतिज्ञ की भाभी हैं, हमारी बंसल मैम और किसी माई के लाल में इतनी हिम्मत नहीं कि कोई उनका बाल भी बाँका कर सके। अब चाहे वे ‘जॉन’ को ‘जोहन’ पढ़ाएँ या ‘प्रयूचर’ को ‘फ़ुटुरे’।

**kusumknapczyk@gmail.com**

# आधुनिक मीडिया की व्यथा—कथा

— मधु कुमारी चौरसिया  
रीडिंग, यू.के.

**माँ:** रमा, तुम सालों बाद अपने प्रोफेशन में वापस लौट रही हो, एक बार पूजा-घर जाकर भगवान के सामने माथा टेकना मत भूलना।

**रमा:** हाँ माँ, मैं ऑफिस के लिए निकलने से पहले पूजा कर लूँगी, मेरा लंच तैयार है, बस ज़रा ठीक से पैक कर दीजिए और सोनू को समय पर स्कूल से घर लाना मत भूलिएगा।

**माँ:** ठीक है बेटा, मैंने फोन पर अलार्म लगा लिया है, तुम चिंता मत करना, बस अपने काम पर ध्यान देना और समय से घर आ जाना।

**रमा:** जी माँ।  
ठीक है माँ मैं निकल रही हूँ, रात 9 बजे तक मेरा पेज तैयार हो जाएगा और वहाँ से सीधे मैं घर वापस आ जाऊँगी। दीपक समय पर मीटिंग खत्म कर घर वापस आ जाएँगे, उन्हें खाना खाने के लिए बोल दीजिएगा। आज मैंने उनका फ़ेवरेट राजमा-चावल बनाकर रख दिया है। आपने अपनी दवाई ले ली है ना?

**माँ:** हाँ बेटा ले ली है।

**रमा:** बाय माँ।

**माँ:** बाय बेटा, हेव ए वण्डरफुल डे।

**रमा:** एक घंटे से ट्रैफिक में जूझ रही हूँ, आज बस टाइम से ऑफिस पहुँच जाऊँ।

**रमा:** हेलो सर कैसे हैं?

**शौर्य:** हाय रमा, वेलकम बैक। 9 साल के लंबे ब्रेक के बाद तुम्हें देखकर बेहद खुशी हो रही है।

**रमा:** शुक्रिया सर, शादी के बाद जिम्मेदारियों का बोझ और फिर बच्चे की देखभाल में समय कैसे निकल गया पता ही नहीं चला।

**शौर्य:** चलो आज के पेज पर फटाफट काम शुरू करते हैं। मीटिंग के लिए बॉस आते ही होंगे।

**रमा:** हाँ सर, मैं ख़बरें देख लेती हूँ, फ्रंट पेज के लिए कौन-कौन सी लगानी है।

**शौर्य:** हाँ ठीक है, मैं ज़रा नीचे से चाय पीकर आता हूँ। तब तक तुम ख़बरें छॉट लो।

## थोड़ी देर बाद

**रमा:** सर फ्रंट पेज पर तो विज्ञापन जाना है। सेकेंड पेज के लिए इस मंत्री महोदय ने अपने क्षेत्र में आम जनता के लिए बेहद रोचक कार्य किया है, उनकी ख़बर, दूसरे इलाके के मंत्रियों को बेहतर कार्य के लिए प्रेरणास्त्रोत हो सकती है, इसे हेडलाइन बना दूँ?

**शौर्य:** नहीं रमा, इस अभिनेता के कुत्ते की मौत की ख़बर ट्विटर, फ़ेसबुक, अन्य सोशल मीडिया और हर टीवी चैनल पर ट्रेंड कर रही है। अब तो यह धीरे-धीरे राजनीतिक मुद्दा बनता जा रहा है। उसे लगाना हमारे लिए भी बेहद आवश्यक है।

**रमा:** पर सर, ये ख़बर तो वैसे भी एंटरटेनमेंट पेज पर जानी चाहिए, क्योंकि अब इस ख़बर को महीनों हो चुके हैं और इस में बहुत छोटा-सा अपडेट है। कोई नया ऐंगल तो है नहीं।

**शौर्य:** अरे भाई तुमने कुछ साल का ब्रेक क्या

लिया, ख़बर की अहमियत ही भूल गई। नया ऐंगल कैसे नहीं है! कुत्ते को ज़हर देकर मारा गया था। इसको पीछे किसी की गहरी साज़िश हो सकती है। इतने बड़े नायक के घर, ये वारदात होना, कोई साधारण बात तो है नहीं! ये काफ़ी एंटरटेनिंग विषय होता जा रहा है। तुम भी ना; ज़्यादा अक्ल मत लगाया करो, बस जैसे मैं बोलता हूँ, वैसा ही करो, तुम मेरे अंडर में काम करती हो, ऊपर बॉस को मुझे जवाब देना होगा। इन दिनों पाठक और दर्शक इस ख़बर में ज़्यादा दिलचस्पी ले रहे हैं। हर रोज़ छोटे-छोटे ऐंगल पर कई टीवी चैनल तो पूरा एक घंटा लाईव खींच रहे हैं। तुमने देखा नहीं फलाने चैनल पर, आज ही वो एक्टर कैसे फफ़क-फफ़ककर रो रहा था और दूसरे चैनल वाले ने उसकी अंतिम यात्रा की लाईव की थी और सारी टी.आर.पी. बटोर ली थी...और आज ये ऐंगल आते ही, उस चैनल का रिपोर्टर कैसे घूम-घूमकर रिपोर्टिंग कर रहा था। फिर

भला हम क्यों पीछे रहें!

**रमा:** पर सर; ऐसे में, हम तो किसी की मौत का तमाशा बना रहे हैं।

**शौर्य:** नहीं, हम वही बेच रहे हैं, जो पाठक या दर्शकों की डिमांड है।

**रमा:** हाँ सर समझ गई, मीडिया में इन दिनों जो बिक रहा है, हमें एक प्रतिष्ठित समाचार-पत्र में होने के नाते उसे ही जगह देनी होगी। आखिर बाज़ार में प्रतियोगिता भी तो कम नहीं! जो जितना बिकेगा, वो उतना प्रतिष्ठित कहलाएगा और विज्ञापन पाएगा। कंपनी को अच्छा रिवेन्यू मिलेगा, तभी तो हम जैसे पत्रकारों की रोज़ी-रोटी चलेगी।

**शौर्य:** हाँ रमा। वैसे भी इन दिनों मनोहर कहानियाँ मीडिया के बाज़ार में ज़्यादा बिक रही हैं। हमें तो भाई अपनी नौकरी बचानी है। जिस दिन प्रतियोगिता दर्पण जैसी स्टोरी बिकेगी हम भी उसी धारा में बह निकलेंगे। फिल. हाल तो तुम इसे ही हेडलाइन लो।

**madhu.chrs@gmail.com**

## कोरोना की अद्भुत, अनुपम तथा अपार महिमा

— वीणा सिन्हा  
नेपाल

हमारे विश्व में अवतारों की लंबी परंपरा रही है। प्राचीनकाल से लेकर आधुनिककाल तक अनेक अवतार हुए, जिन्होंने विश्व को अपने-अपने ढंग से प्रभावित किया। अपना अनुगामी बनाया। भक्तों की कतारें खड़ी कीं। इन्हीं भक्तों के लिए अनेकों कारनामों को अंजाम दिया, ढेरों न्यारे-वारे किए। लेकिन आज उन सभी अवतारों के धंधों को बंद करवाकर अपना लोहा मनवाने वाला अब तक का

बेहद शक्तिशाली अवतार हमारे आपके बीच उत्पन्न हो गया है। जी हाँ आज सब की जुबान पर उन्हीं का नाम है। आप समझ ही गए होंगे, अगर फिर भी नहीं समझे तो लीजिए मैं बता देती हूँ। हमारे आपके करीबी 'कोरोना महाराज'!

जिसने सबका होश उड़ा रखा है, घुटनों के बल खड़ा कर रखा है। इसे अदृश्य शक्ति भी कह सकते हैं, जो कि हम आप जैसे ऐसे-गैरे को दर्शन नहीं

देते हैं, खुली आँखों से तो बिलकुल ही नहीं।

हाँ अगर हम जैसे आम व्यक्ति सान्निध्य में जाने की हिमाकत करेंगे, तो वे अपने पास बुलाने में ज़रा भी देरी नहीं करते!

वे अपने अस्तित्व का अनुभव ही नहीं कराते हैं, बल्कि वे आप में गहराई से समा जाते हैं। गहराई इतनी कि वे आपके गले ही में नहीं, फेफड़ों तक में अपनी पैठ जमा लेंगे, साँसों में समा जाएँगे! आप पर अपना प्यार बरसाते-बरसाते कब आपको अपने साथ लेते चले जाएँगे, पता भी नहीं चलेगा!

आज की तारीख में कोरोना महाराज की महिमा ही नहीं साम्राज्य का विस्तार भी दिन-दूना और रात चौगुना होता चला जा रहा है.....!

किसी की मजाल कि उसे रोक सके। इस साम्राज्य को फैलाने में न उन्हें किसी हाथ-हथियार की आवश्यकता पड़ी और न ही करोड़ों-अरबों रुपयों के बम, मिसाइल और गोला-बारूद की ही। चुटकियों में व्यक्ति-व्यक्ति, घर-घर, देश और महादेश उनकी गिरफ्त में आते चले गए, चले आ रहे हैं। यह सिलसिला अभी भी जारी है। यों कहें तो कोरोना महाराज का कारवाँ दिनोंदिन लंबा होता जा रहा है। आज इनकी कृपा कहें या महिमा, आधा विश्व अपने घरों में डरा, सहमा और सिकुड़ा पड़ा है। आज आप किसके भी घर का कॉल बेल बजाइएगा तो वह खुलेगा नहीं। ऐसा नहीं है कि वे घर पर हैं नहीं, कॉल बेल की आवाज़ सुनकर और दुबक जाएँगे लोग। रास्ते में भूले-भटके आपसे मुलाकात हो गई, तो आप को देखकर ऐसे भागेंगे कि जैसे सांप को देख लिया हो।

कोरोना महाराज अपनी खिल्ली उड़ाने वाले को, मज़ाक बनाने वाले को और अवहेलना करने वाले को कभी भी नहीं बख्शाते! सबक सिखाकर ही छोड़ते हैं। इसका सबसे बढ़िया उदाहरण है विश्व के कथित शक्तिशाली कहे जाने वाले अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रम्प!

जी हाँ ट्रम्प महोदय ने कोरोना महाराज की खिल्ली उड़ाई ही नहीं, बल्कि उनका मज़ाक बनाया, और तो और अवहेलना करने की हिमाकत भी की। उसका ही परिणाम था कि कोरोना महाराज ने ट्रम्प महाशय को सबक सिखाने के लिए उनके मुख पर न केवल काली पट्टी बँधवा दी, बल्कि उनकी गुस्ताखी के बदले लाखों अमेरिकी की भी आहुति ले ली। कोरोना महाराज को 21वीं सदी का सबसे बड़ा प्राकृतिक-सामाजिक-धार्मिक सुधारक भी कहा जा सकता है। नेता, अभिनेता, सामाजिक अभियंता बड़झानी सभी कहते-कहते थक-मर गए, सरकारें नीति-नियम और कानून बना-बनाकर फाइलों की लंबी कतारें लगाती गईं, लेकिन हम-आप अपनी मन-मर्जी करने के अनुसार करते रहते हैं और प्रकृति को, खुद को, परिवार तथा समाज को संकट में डालकर सिर ऊँचा और सीना चौड़ा कर घूमते रहते हैं। लेकिन अब कोरोना महाराज ने हमें अच्छी तरह से समझा दिया है कि हमारी एक भी मनमानी चलने वाली नहीं है।

कोरोना महाराज ने लोगों को उनकी औकात, जीवन जीने का तरीका-सलीका, संस्कार, रीति-रिवाज़ को भी बदल डाला। नियमित और संयमित जीवन को छोड़कर असंयमित जीवन जीने वाले के लिए तो कोरोना का कहर अभिशाप बनकर टूटता है। प्रकृति को दूषित करके हमने प्राकृतिक जलवायु को ही बदल दिया है। लेकिन कोरोना महाराज ने आज प्रकृति को स्वच्छ और निर्मल बनाने हेतु हमें सबक सिखाया है। धरती को ही नहीं नदियों और पहाड़ों को भी स्वच्छ कर दिया।

लोग घरों में अपने परिवार को छोड़कर दोस्तों के साथ पार्क, होटल और रेस्तराँ में महफ़िल जमाते थे, पार्टियाँ करते घूमते थे और घर की चारदीवारी में बीबी-बच्चे उनकी राहें देखा करते थे। वैसे को साइज़ में लाने का काम कोरोना महाराज बखूबी निभा रहे हैं। हाय-हेलो और गले मिलने वालों को हाथ जोड़ने के लिए इन्होंने विवश कर दिया है।

कोरोना महाराज ने सदियों से चली आ रही शादी-विवाह की रस्मों-रिवाजों को भी बदलकर रख दिया है। शादियों की रौनक ही खत्म हो गई है। पहले जहाँ जितने बाराती लोग विवाह में आते थे, उतनी ही शान बढ़ती थी। खूब धूम-धड़ाका होता था। हफ्तों घर-आँगन रौशन रहता था। विवाह के रीति-रिवाज तथा भोज-भात चलते रहते थे। नाते-रिश्तेदारों के रसोईघरों में ताले पड़ जाते थे।

सारे विधि व्यवहार करवाने तथा व्यवस्था में जहाँ पिता की कमर टूट जाती थी, वहीं भाइयों के पैर टिकते नहीं थे, माँओं के मुँह सूख जाते थे, तो बहनों के हाथ सूज जाते थे रिश्तेदारों की खातिरदारी करते-करते! लाखों रुपए व्यय करने के बावजूद शायद ही किसी के विवाह के इंतजामों से सभी संतुष्ट हों। किसी की शादी में लड़की पक्ष के रिश्तेदार नाराज़ हो गए, तो किसी के ब्याह में लड़का पक्ष के! लेकिन कोरोना जी की महिमा से अब शादी-ब्याह के ताम-झाम से राहत मिल गई। क्योंकि इन्होंने धूमधाम से शादी करने पर रोक लगवा दी है। अब दूल्हा-दुल्हन को आशीर्वाद भी ऑनलाइन देने की व्यवस्था जो मिलवा दी है। विवाह में आने-जाने, रहने, खाने की व्यवस्था से भी मुक्ति!

कोरोना के आने से पहले हम इलेक्ट्रॉनिक गैजेट के इतने करीब नहीं थे, जितना कि अब हो गए हैं। पहले मोबाइल छूने पर बच्चों को घंटों उपदेश देने वाले अभिभावक आज उसे चलाने में सहयोग करने के लिए अपने घरों के बच्चों को अपने करीब बड़े प्यार से बिठाने लगे हैं। अब मोबाइल पर घंटों चिपकना उन्हें नागवार नहीं लगता! क्योंकि अब सब कुछ ऑनलाइन जो हो गया। रिश्तेदारों से बातचीत, बच्चों की पढ़ाई, ऑफिस की मीटिंग, नेताओं की आम और खास सभा तथा मंत्रियों की केबिनेट मीटिंग सभी ऑनलाइन! है न कोरोना का चमत्कार!

कोरोना ने सामाजिक क्षेत्र में ही नहीं धार्मिक क्षेत्र में भी क्रांति ला दी है। आज सारे धार्मिक स्थलों को बंद करवा रखा है। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे और गिरजाघरों के पट महीनों से बंद हैं। राम मंदिर हो, हनुमान मंदिर हो या मक्का मदीना!

लोगों को धार्मिक स्थलों की ओर भागने के बजाय दान करने तथा अपने कर्मों को सही ढंग से करने की सीख दे रहे हैं कोरोना महाराज। अब लोग कोरोना की महिमा में गीत लिखने लगे हैं, भजन गाने लगे हैं। असंभव को संभव कर दिया है। है न इस छोटे मियाँ की अद्भुत, अनुपम और अपार महिमा का कमाल!!!

**thepublicmonthly@yahoo.com**

# ‘संस्कारों की कसौटी पर हिंदी अधिक स्पष्ट भाषा’

## डॉ. हेंस वर्नर वेसलर से बातचीत

डॉ. जवाहर कर्नावट  
भोपाल, भारत

डॉ. हेंस वर्नर वेसलर जर्मनी मूल के हिंदी विद्वान हैं तथा संप्रति भाषा विज्ञान एवं वाङ्मय संस्थान, उप्साला विश्वविद्यालय, स्वीडन में प्रोफेसर हैं। आप दक्षिण एशिया वाङ्मय एवं भाषा विज्ञान की परंपरागत शिक्षण शैली को निरंतरता प्रदान करने एवं आधुनिक दक्षिण एशियाई भाषा एवं संस्कृति पर अनुसंधान से संबद्ध हैं। आपकी अध्ययन पृष्ठभूमि भारत-विज्ञान (Indology) रही है, किन्तु पिछले कई वर्षों से आपने भारत एवं पाकिस्तान में हिंदी एवं उर्दू साहित्य तथा इन देशों के सांस्कृतिक इतिहास, धर्मशास्त्र एवं समाज के विभिन्न पहलुओं पर विशेष अध्ययन किया है। आप फोरम फॉर साउथ एशियन स्टडीज़ (एफ़.ए.एस.एस.) तथा यूरोपियन एसोसिएशन फॉर साउथ एशियन स्टडीज़ (इ.ए.एफ़.ए.एस.एस.) के बोर्ड मेम्बर हैं। पिछले दिनों अपनी भारत यात्रा के दौरान डॉ. हेंस से डॉ. जवाहर कर्नावट ने विविध अकादमिक विषयों पर बातचीत की, जिसे यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

**कृपया अपनी पारिवारिक एवं शैक्षणिक पृष्ठभूमि के बारे में हमें बताएँ।**

मेरा जन्म सन् 1962 में जर्मनी में हुआ। मेरे पिताजी सरकारी सेवा में थे और माताजी गृहिणी हैं, जिनकी उम्र 84 साल है। मेरे परिवार में हिंदी पठन-पाठन या यूँ कहें कि भारत के बारे में जानने का कोई विशेष माहौल नहीं था, किन्तु मेरे पिताजी के देहांत के बाद मुझे तमाम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा और मेरी सोच बदली। मैंने 15 साल की उम्र में हेरमान हैस्सेस का उपन्यास

‘सिद्धार्थ’ पढ़ा, जो काफी प्रचलित था। इससे मेरे अंदर भारत को जानने की कल्पना जगी, बौद्ध धर्म की ओर अभिरुचि जगी। बाद में मैंने भगवद्गीता का भी अध्ययन किया। ‘The Geeta according to Gandhi’ नामक पुस्तक से मैं प्रभावित हुआ, जिसकी एक प्रति मुझे संयोग से एक पुरानी किताबों की दुकान में हाथ में आई। जब मुझे पता चला कि जर्मन विश्वविद्यालय में हिंदी, संस्कृत, पालि आदि भाषाओं की पढ़ाई होती है, तभी मैंने संस्कृत, पालि और हिंदी पढ़ने का निर्णय ले लिया, जबकि मेरी माताजी की इच्छा थी कि मैं साइन्स पढ़कर डॉक्टर या इंजीनियर बनूँ। मैंने अपनी ज़िद के कारण 1988 में बॉन विश्वविद्यालय, जर्मनी से ‘तुलनात्मक धर्मशास्त्र’ (Comparative Religions) में एम.ए. किया और ‘विष्णु पुराण के इतिहास और काल कल्पना’ विषय पर ज्यूरिक विश्वविद्यालय, स्विट्ज़रलैंड से 1993 में पी.एच.डी. की। संस्कृत मेरा मुख्य विषय था और हिंदी गौण। फिर मैंने वॉक्स ऑव जर्मनी से पत्रकारिता सीखी। बाद में मेरी शादी हो गई और मेरी पत्नी ने भी ‘तुलनात्मक धर्मशास्त्र’ में ही पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

**आप संस्कृत और हिंदी के प्रति किन कारणों से प्रवृत्त हुए?**

पी.एच.डी. के बाद मैंने लगभग फैसला कर लिया कि मैं आगे हिंदी का अध्ययन करूँगा। मेरी इच्छा थी कि मैं सबके साथ बात करूँ, उनके साथ विचारों का आदान-प्रदान कर सकूँ, ताकि लोग मुझे अजीब प्राणी के रूप में न देखें। मैं लोगों के साथ तादात्म्य



स्थापित करना चाहता था। इसलिए मैंने 2008 में 'दलित साहित्य' पर हिंदी में डी.लिट. किया। 2002 से 2010 तक मैंने बॉन विश्वविद्यालय, जर्मनी में सीनियर लेक्चरर के रूप में कार्य किया। चूँकि मैं भारत को पूरी तरह समझना चाहता था, उसके दर्शन और विपुल साहित्य को पढ़ना चाहता था, इसलिए संस्कृत और हिंदी की ओर प्रवृत्त हुआ।

### विश्व की अन्य भाषाओं की तुलना में हिंदी को आप कितना सहज पाते हैं?

हिंदी से पहले मैं संस्कृत के बारे में बात करना चाहूँगा। यूरोपीय देशों में और खासकर जर्मनी में संस्कृत की पढ़ाई 19वीं सदी से ही हो रही है। चूँकि यूरोपीय भाषाओं का संस्कृत के साथ एक गहरा अन्तः संबंध है, अतः संस्कृत की पढ़ाई करने के बाद हिंदी पढ़ना और आसान हो गया। हालाँकि, संस्कृत एक कठिन भाषा है और उसे सीखने में काफी मेहनत करनी पड़ती है। मैं संस्कृतनिष्ठ हिंदी को थोपना नहीं चाहता, किंतु उसके बिना हिंदी आधुनिक नहीं हो सकती है। हिंदी सीखने में मज़ा आता है। भारत में लोग अलग-अलग रूपों में हिंदी का प्रयोग करते हैं। असंख्य उप-बोलियों के अलावा बाज़ार की हिंदी, घरेलू हिंदी, प्रशासनिक हिंदी जैसे अलग-अलग तरीके से हिंदी बोली जाती है। मैंने केन्द्रीय हिंदी संस्थान, नई दिल्ली से हिंदी का एडवांस्ड डिप्लोमा भी किया है। दूसरी बात यह है कि हमने हिंदी को अपने में जीवन्तता लाने के उद्देश्य से सीखा। मैं अपने छात्रों को हिंदी जीवित भाषा में सिखाने की कोशिश करता हूँ। मैं मानता हूँ कि हिंदी सीखे बगैर करोड़ों भारतीयों के साथ आप संबंध स्थापित करने से वंचित रह जाएँगे।

### यूरोप और यूरोपीय युवाओं में हिंदी और भारतीय संस्कृति के बारे में किस प्रकार की अवधारणा है?

60 के दशक के बाद यूरोपीय देशों में

आधुनिक भारत के प्रति अभिरुचि जागृत हुई है। भारतीय सिनेमा और टेलीविजन की दुनिया में कई ऐतिहासिक धारावाहिकों ने हिंदी और भारतीय संस्कृति की तरफ यूरोपीय युवाओं को आकृष्ट किया। अभी भी हिंदी भाषा के प्रति उतनी जागरूकता नहीं हो पाई है, जितनी चीनी भाषा के प्रति है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि भारतीय फिल्मों ने यूरोपीय देशों के साथ-साथ दुनिया भर में हिंदी को प्रचारित और प्रसारित करने का कार्य किया है, किन्तु सरकारी मशीनरी और साहित्यिक संस्थाओं का योगदान उतना नहीं हो पाया है, जितना होना चाहिए। आर्थिक जगत एवं रोज़गार के क्षेत्र में हिंदी अभी भी वैश्विक स्तर पर उतना सशक्त नहीं हो पाई है। फिर भी, मैं कहूँगा कि हिंदी एक सशक्त भाषा है, जिसका प्रसार होना चाहिए।

### आप हिंदी को अंग्रेज़ी से किस रूप में अलग देखते हैं?

देखिए, भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम होती है। दुनिया की सभी भाषाओं का अपना महत्व होता है, किन्तु हिंदी और अंग्रेज़ी की प्रकृति थोड़ी अलग है। इस संदर्भ में मैं यहाँ सिर्फ एक उदाहरण देना चाहूँगा। जहाँ हिंदी में 'तू', 'तुम' और 'आप' जैसे तीन अलग-अलग संबोधन हैं, वहीं अंग्रेज़ी में केवल एक शब्द है 'यू'। इस प्रकार संस्कारों की कसौटी पर हिंदी अधिक स्पष्ट भाषा है। फिर भी मैं मानता हूँ कि हर भाषा की खूबसूरती और उसकी ताकत ही उसकी पहचान होती है। मैं किसी भाषा को छोटी या बड़ी नहीं मानता हूँ, किन्तु एक बात हमें नोट कर लेनी चाहिए कि अंग्रेज़ी को ही आधुनिकता के साथ जोड़ना ठीक नहीं है। मुझे अफ़सोस होता है जब मैं देखता हूँ कि ऐसे बहुत लोग हैं, जो हिंदी को पिछड़ी और अंग्रेज़ी को आधुनिक समझते हैं। कोई भी भाषा कम आधुनिक नहीं है और हिंदी की अपनी एक सर्जनात्मकता है, अपना एक आधुनिक ढंग है, जो संपर्क करते वक्त अपने आप से उभर

आता है। इतना कहना चाहूँगा कि जिस तरह चीन, जापान, कोरिया और रूस में अंग्रेजी नहीं चलती, कौन कहेगा कि ये सारे देश इस वजह से कम आधुनिक बन सके?

**आप स्वीडन के उप्साला विश्वविद्यालय में अध्यापन कर रहे हैं। वहाँ हिंदी भाषा-शिक्षण की क्या स्थिति है? कृपया वॉक्स ऑफ़ जर्मनी की वर्तमान स्थिति के बारे में बताएँ।**

हमारे विश्वविद्यालय में भाषा वाङ्मय और भाषा विज्ञान का विभाग है। यहाँ एशिया की बहुत सारी भाषाएँ पढ़ायी जाती हैं। प्रमुख भाषाओं में लैटिन, ग्रीक, चीनी, अरबी, फ़ारसी, टर्किश और हिंदी हैं। ईस्ट इंडिया कंपनी के कानूनगो विलियम जॉन्स ने कालिदास रचित 'रघुवंश' महाकाव्य और 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' आदि महाकाव्यों का अनुवाद भी किया है। भारत और यूरोप की भाषाओं के अन्तः संबंध के कारण हिंदी के प्रति अभिरुचि बढ़ी है। हमारा संस्थान बहुत बड़ा है। इसमें चीनी भाषा सीखने वाले छात्रों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। फिर भी हिंदी की स्थिति ठीक है। स्वीडन में तो संस्कृत 19वीं सदी से ही पढ़ायी जाती है। पर अब छात्रों की माँग आधुनिक भाषाओं की ओर अधिक है। वॉक्स ऑफ़ जर्मनी में हिंदी, उर्दू और बांग्ला जारी है, किन्तु श्रोताओं की कमी के कारण संस्कृत की सुविधा बंद हो गई है।

**क्या हिंदी साहित्य की पुस्तकों का जर्मन या स्वीडिश भाषा में अनुवाद हुआ है? इसमें कौन-सी कठिनाई आती है?**

कहते हैं कि मनुष्य हमेशा अपनी मातृभाषा में ही सपने देखता है। मेरी मातृभाषा जर्मन है और मैं भी जर्मन में ही सपने देखता हूँ। अनुवाद एक कला है। जब तक आपको लक्ष्य और स्रोत भाषाओं का गहरा ज्ञान नहीं होगा, अनुवाद साहित्यिक नहीं हो पाता है। मैंने अपने दो साथियों के साथ

हबीब तनवीर के नाटक 'आगरा बाज़ार' और उदय प्रकाश के उपन्यास 'पीली छतरी वाली लड़की' का हिंदी से जर्मन में अनुवाद किया है। इसके अलावा कई कहानियाँ और कविताएँ भी अनुवादित की हैं, जैसे कि जामिया मिलिया इस्लामिया के प्रो. अजय नावरिया की कहानी 'गोदना' का जर्मन अनुवाद प्रकाशित हुआ है। आवश्यकता है कि विश्व की अन्य श्रेष्ठ पुस्तकों का भी हिंदी में अनुवाद किया जाए। हिंदी के प्रचार की जगह हिंदी साहित्य के अनुवाद की गुणवत्ता को आगे बढ़ाना बहुत ज़रूरी है। हमको अनुवाद और अनुवादकों के शिक्षण-प्रशिक्षण पर बहुत ज़्यादा ध्यान देना है।

**हिंदी के विकास में किस प्रकार की चुनौतियाँ हैं?**

सबसे बड़ी चुनौती है, मानसिकता। हिंदी के साथ कभी भी हीनता की भावना नहीं रखनी चाहिए। मेरी जानकारी में अनेक ऐसे विद्वान हैं, जो हिंदी के हक के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर जोर-शोर से आवाज़ उठाते हैं, किंतु उसी वक्त हर किसी की तरह अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूल ज़रूर भेजते हैं। मैं खुद अंग्रेजी के खिलाफ़ नहीं हूँ। आजकल अंग्रेजी उपन्यास के कितने बड़े-बड़े लेखक उभर आए हैं। हिंदी की स्थिति पहले भारत में ही सुदृढ़ होनी चाहिए, तब जाकर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इसे स्थापित किया जा सकेगा। संयुक्त राष्ट्र संघ में यह एक अधिकारिक भाषा अपने आप से बनेगी। भाषा के प्रति हमारे मन में सम्मान का भाव होना ज़रूरी है।

**हिंदी के विकास में किन विदेशी मूल के विद्वानों के योगदान का आप उल्लेख करना चाहेंगे?**

अंग्रेजी शासन के दौरान कुछ विदेशियों ने गहरी दिलचस्पी लगाकर भारत में व्याकरण, भाषा, शब्दकोश, धर्म, इतिहास को समझने का प्रयास

किया। चाहे वे फ्रांस के विद्वान गार्सा द तासी हों, इंग्लैण्ड के डॉ. ग्रियर्सन या जर्मनी के मैक्स म्यूलर हों, सबने हिंदी की विकास यात्रा के मार्ग को प्रशस्त किया। फ़ादर कामिल बुल्के का योगदान अतुल्य है। मैक्स म्यूलर के कारण तो मुझे जर्मनवंश होने के नाते भारत में बड़ा सम्मान मिलता है।

आपको भोपाल में आयोजित 10वें विश्व हिंदी सम्मेलन में 'विश्व हिंदी सम्मान' प्रदान किया गया। विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजन की उपादेयता के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

मेरे लिए यह सम्मान मिलना बहुत बड़े आदर

की बात है। पर सबसे महत्वपूर्ण यह है कि इस सम्मान के ज़रिए हमारा सार्थक संबंध स्थापित हो। इस परस्पर संबंध का एक महत्वपूर्ण कदम नमूने के तौर पर आपको बता रहा हूँ। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी परीक्षा का एक अंतरराष्ट्रीय ढाँचा बनाना चाहिए, जिस तरह से दूसरी जुबानों के लिए उपलब्ध है। वेबसाइट/पोर्टल पर हिंदी सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो। इसके अलावा हिंदी साहित्य से विभिन्न भाषाओं में अनुवाद होने चाहिए और अनुवाद प्रयोजनमूलक न होकर कलात्मक हो। अनूदित सामग्री सरस होनी चाहिए। भाषा में मौलिकता दिखनी चाहिए। अनुवाद सही होगा, तभी हिंदी साहित्य की शान बढ़ेगी।

[jkarnavat@gmail.com](mailto:jkarnavat@gmail.com)

## कथाकार पद्मश्री मालती जोशी से बातचीत

— प्रो. खेमसिंह डहेरिया

अनूपपुर, भारत

मालती जोशी पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित कथाकार हैं। आपसे साहित्य के विविध पहलुओं पर प्रो. खेमसिंह डहेरिया ने बातचीत की है। बातचीत के अंश यहाँ प्रस्तुत हैं।

आपके कथाकार बनने, होने की क्या कोई ऐसी उल्लेखनीय पृष्ठभूमि है, जिसे आप व्यक्त करना चाहती हैं? और आपने गद्य की इस विधा का चुनाव क्यों किया?

चाहने से ही कोई कथाकार या कवि नहीं हो जाता। यह तो प्रभु का प्रसाद है। दूसरी भाषा में कहें, तो ईश्वरदत्त प्रतिभा से ही संभव हो पाता है। साहित्य में मेरा पदार्पण, तो गीतकार के रूप में हुआ था। बाद में गद्य की ओर मुड़ गई। न कविता लिखना मेरी मर्जी से हुआ, न कहानी। वह तो बस

हो गया। अब चाहकर भी कविता की दो पंक्तियाँ नहीं लिख पाती। हाँ, घर में पढ़ने-लिखने का वातावरण था, इसलिए साहित्यिक संस्कार जागे। विवाह के बाद भी उसमें कोई व्यवधान नहीं आया। पति से बहुत प्रोत्साहन मिला, इसलिए गद्य में ही सही लेखनी अबाध गति से चलती रही। अब बेटों के राज में भी कोई रोक-टोक नहीं है। वे मेरी उपलब्धियों से गौरवान्वित होते हैं।

क्या आप किसी विचार को लेकर लेखन में अग्रसर हुई हैं अथवा जीवन के विविध पहलुओं, घटनाओं, चरित्रों से प्रेरित होती हैं?

किसी विचार विशेष को लेकर लिखना शुरू नहीं किया। वह सब अनायास ही हो गया। कविता

लिखते समय मीरा, महादेवी मन पर छाई रहती थीं। गद्य में शरत्-साहित्य से बेहद प्रभावित हूँ। नारी-मन की सूक्ष्मतम गुत्थियों को वे जिस तरह समझते हैं, सुलझाते हैं, वह अद्भुत है। घर परिवार से आगे मेरी दुनिया कभी रही नहीं, इसलिए लेखन में भी परिवार ही रेखांकित होता रहा। नारी जीवन के विविध रूप, जो अपने आसपास देखे, उन्हीं को चित्रित करती रही। विषय वस्तु की इस संकुचितता के कारण आलोचना भी बहुत हुई, पर ईमानदारी की बात यह है कि यही मेरी लोकप्रियता का कारण है। लोग अपने आसपास की घटनाओं को कहानी में देखकर चमत्कृत होते हैं। अपने परिचित पात्रों को कहानी में देखकर रोमांचित होते हैं।

**आपका रचनाकार प्रभावित और प्रेरित है या अन्वेषण की गुंजाइश से चलता है?**

प्रश्न मेरी समझ में नहीं आया, वैसे मैं शरत्-साहित्य से प्रभावित हूँ, यह लिख चुकी हूँ। आशापूर्णा देवी भी मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। मराठी के कतिपय लेखकों ने भी मुझे प्रभावित किया है — पु.ल. देशपांडे, गंगाधर गाडगील, वि.स. खांडेकर, मालती दोडेकर, रविन्द्र पिंगे आदि।

**अपनी प्रमुख कहानियों, उनके समय और स्वरूप के बारे में बताइए?**

शुरुआती कहानियाँ थोड़ी फेंटेसी वाली होती थीं। फिर ज़मीन से जुड़ी रही, 'ज्वालामुखी के गर्भ में', 'सन्दर्भहीन', 'निष्कासन', 'गोपनीय' आदि। बाद में धीरे-धीरे यथार्थ मेरी कहानियों में उतरता गया। मध्यमवर्गीय और मध्यमवर्गीय नारी की व्यथा-कथा मेरी लेखनी को आन्दोलित करती रही, अनुप्राणित करती रही। न मैंने कभी भाषा की कारीगरी पर बल दिया, न शैली को सजाने की कोशिश की। सीधी सरल भाषा में अपनी बात कहती हूँ, इसलिए शायद वह जनसामान्य को छूती है। मेरी परवर्ती सभी

कहानियाँ इस कसौटी पर कसी जा सकती हैं।

**आपकी सर्वाधिक प्रिय कहानी कौन-सी है और क्यों? क्या वह आपकी प्रतिनिधि कहानी भी है?**

यह प्रश्न बहुत मुश्किल है। हर कहानी अपने सृजनकाल में मेरे मन मानस को व्याप लेती है। एक बार लिखने के बाद मैं उससे अलग हो जाती हूँ और तटस्थ भाव से उसे देखती हूँ। 'पाषाणयुग', 'एक और देवदास', 'राखोला जहरी', 'अतृप्त आत्माओं का देश', 'बहुरि अकेला', 'प्यार के दो पल बहुत हैं' आदि ऐसी कहानियाँ हैं, जिन्हें मैं अपनी प्रिय कहानियों में शुमार कर सकती हूँ।

**आपकी कथा-यात्रा के प्रमुख पड़ाव और मोड़ क्या हैं, जिसने आपको स्थानीय स्तर से, प्रादेशिक स्तर फिर राष्ट्रीय स्तर का कहानीकार बनाया है?**

मैं एक अरसे तक गीतकार बनी रही, मंच पर मैं बहुत सक्रिय थी। ग्वालियर, इन्दौर, खंडवा, रतलाम आदि स्थानों पर बहुत चाव से सुनी जाती थी। कहानी या यों कहें कि गद्य लेखन में पाँव जमाने के लिए 10 साल लग गए। 1971 में मेरी कहानी धर्मयुग में छपी और मैं एकाएक राष्ट्रीय स्तर की लेखिका बन गई। उसके बाद पीछे मुड़कर नहीं देखा। लोग अब भी धर्मयुग के सन्दर्भ में ही मुझे जानते हैं।

**क्या आपकी रचना प्रक्रिया से किसी प्रकार का सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक बदलाव हिंदी पट्टी में परिलक्षित होता है?**

मुझे नहीं लगता कि मैं कोई युगांतरकारी कहानी लिखती हूँ। पर हाँ मेरी 'कवच' कहानी ने कुछ लोगों को प्रभावित किया। दो विधवा माताओं ने अपने बेटों का विवाह सम्पन्न करवाया। किसी तरह

का सामाजिक अवरोध उनके सामने नहीं आया। पर यह बात भी सच है कि वे बेटों की माँएँ थीं, इसलिए उनकी बात चली। कन्या की माँ होती, तो शायद उन्हें समाज इतनी छूट नहीं देता। मेरी एक दो पाठिकाओं ने मुझसे कहा है कि आपकी कतिपय कहानियाँ पढ़कर हमें अपनी सास को अच्छे से समझने का मौका मिला। मेरी 'यशोदा माँ' कहानी पढ़कर एक पाठक ने लिखा कि गाँव से चलते समय माँ ढेर सारा सामान बाँध देती थी और बहुत खीज होती थी, पर इस बार सफ़र में आपकी कहानी पढ़ी थी, तो मैं माँ की भावना समझ सका और सारी पोटलियाँ सहज सामान में रख लीं।

**आपके लेखन का उद्देश्य क्या है?**

मैं कोई नारा लेकर नहीं लिखती। जीवन को सकारात्मक दृष्टि से देखती हूँ और कहानियों में भी वही दृष्टि रखने का प्रयास करती हूँ। बहुत ज़्यादा

हिंसा, बहुत ज़्यादा खुलापन, बहुत ज़्यादा दुख और क्रूर और नंगा यथार्थ, इनसे बचती हूँ। ऐसी चीज़ें न मुझे पढ़ने में अच्छी लगती हैं, न लिखने में।

**क्या आप आधुनिक हिंदी कहानी के विकासक्रम में अपनी भूमिका से संतुष्ट हैं? और आपकी भावी लेखन योजनाएँ क्या हैं?**

मुझे यह खुशफ़हमी कभी नहीं रही कि हिंदी कहानी के विकासक्रम में कोई बड़ा योगदान कर रही हूँ। मैं एक लेखक हूँ और ईमानदारी से अपनी बात कहती हूँ। मैं किसी नारे में विश्वास नहीं करती, किसी खेमे या पार्टी में शिरकत नहीं करती, न अपने प्रचार-प्रसार के लिए पाँव मारती हूँ। साहित्य में मेरा योगदान क्या है और स्थान क्या है? यह तो पाठक ही तय करेंगे या भविष्य तय करेगा। धन्यवाद।

**khemsingh.daheriya@gmail.com**

## ‘हिंदी ने मुझे बनाया’ प्रवासी लेखक श्री तेजेंद्र शर्मा से बातचीत

— डॉ. दीपक पाण्डेय  
नई दिल्ली, भारत

विश्व में प्रयोग और व्यवहार के आधार पर हिंदी को दूसरी सबसे समृद्ध भाषा माना जाता है। हिंदी की इस समृद्धि में भारत से बाहर रह रहे भारतीयों का बहुत योगदान है। चाहे 19वीं शती के आरंभ में उपनिवेशवादी शक्तियों द्वारा भारतीय मजदूरों को विश्व के कोने-कोने में भेजने की परिस्थितियाँ हों या फिर रोज़गार अथवा व्यापार के सिलसिले में भारत से विदेश पहुँचे भारतीय हों, सभी प्रकार के प्रवासन ने हिंदी की समृद्धि में अपनी-अपनी भूमिका का निर्वहन किया है और निरंतर कर रहे हैं। लम्बे समय से मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, फ़िजी,

अफ़्रीका, अमेरिका, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड विश्व के अनेक देशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार हो रहा है और देखा जाए, तो हिंदी का सृजनात्मक साहित्य भी उपलब्ध है। ब्रिटेन में भी हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में साहित्य का सृजन हो रहा है और इसमें अनेक साहित्य सेवी हिंदी साहित्य के कोष में श्रीवृद्धि कर रहे हैं। कुछ साहित्यकारों के नाम हैं — अचला शर्मा, उषा राजे सक्सेना, उषा वर्मा, कादंबरी मेहरा, कीर्ति चौधरी, डॉ. कृष्ण कुमार, कैलाश बुधवार, गोविन्द शर्मा, गौतम सचदेव, ज़किया जुबैरी, तितिक्षा शाह, तेजेंद्र शर्मा, तोषी अमृता, दिव्या माथुर,

नरेश भारतीय, निखिल कौशिक, डॉ. पद्मेश गुप्त, प्रतिभा डसवर, प्राण शर्मा, भारतेन्दु विमल, महावीर शर्मा, महेन्द्र दवेसर, डॉ. महेन्द्र वर्मा, मोहन राणा, रमेश पटेल, शैल अग्रवाल, सत्येन्द्र श्रीवास्तव, सोहन राही आदि।

प्रवासी हिंदी साहित्यकारों में तेजेंद्र शर्मा चर्चित कथाकार हैं। तेजेंद्र जी के अनेक कहानी और काव्यसंग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और हिंदी-सेवा के लिए देश-विदेश की अनेक संस्थाओं से समादृत हो चुके हैं। आपकी रचनाओं की सूची बहुत लंबी है, कुछ के नाम हैं — **कहानी संग्रह** : 'काला सागर', 'ढिबरी टाईट', 'देह की कीमत', 'यह क्या हो गया!', 'बेघर आँखें', 'सीधी रेखा की परतें', 'कब्र का मुनाफ़ा', 'दीवार में रास्ता', 'मेरी प्रिय कथाएँ', 'प्रतिनिधि कहानियाँ'; **कविता संग्रह** : 'ये घर तुम्हारा है', 'मैं कवि हूँ इस देश का'...

मुझको तेजेंद्र शर्मा से संवाद का अवसर मिला और उनके साथ बातचीत में जो बातें सामने आईं, वह पाठकों के लिए प्रस्तुत हैं—

**तेजेंद्र जी आपका हिंदी साहित्य के प्रति लगाव कैसे जगा?**

कॉलिज के दिनों में जासूसी नॉवल ही पढ़े थे। एक दो उपन्यास गुलशन नंदा के भी पढ़ लिए थे। साहित्य के नाम पर धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' और नरेन्द्र कोहली की 'रामकथा' का पहला खण्ड 'दीक्षा' का नाम ही याद आता है। स्कूल में सुदर्शन की कहानी 'हार की जीत' पढ़ी थी और सुभद्रा कुमारी चौहान की 'कदम्ब के फूल'। इसके अलावा गुलेरी जी की 'उसने कहा था'। आज तक ये तीनों कहानियाँ दिमाग में ताज़ा हैं। एम.ए. अंग्रेज़ी करने के बाद दो आलोचनात्मक किताबें अंग्रेज़ी में लिखी थीं। हिंदी साहित्य से कोई जुड़ाव नहीं था। हिंदी साहित्य पढ़ना शुरू किया, जब मेरी दिवंगत पत्नी इन्दु ने मुंबई में पी.एच.डी. की शुरुआत की। उसके शोध में 1975 से 1980 के बीच के आधुनिकतम उपन्यास शामिल थे। मैंने भी

करीब पचहत्तर से अस्सी उपन्यास पढ़ डाले। तब मैं अमृतलाल नागर, श्रीलाल शुक्ल, हिमांशु जोशी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, भीष्म साहनी, राही मासूम रज़ा, कमलेश्वर, शानी, अमरकान्त, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, पानू खोलिया, मृदुला गर्ग और जगदीश चन्द्र जैसे लेखकों से परिचित हुआ। मुझे नागर जी के उपन्यास 'नाच्यो बहुत गोपाल', पानू खोलिया के उपन्यास 'सत्तर पार के शिखर' और जगदीश चन्द्र के 'धरती धन न अपना', 'कभी न छोड़ें खेत' एवं 'आधा पुल' ने बहुत प्रभावित किया। बस इसी तरह मेरा रुझान हिंदी साहित्य की ओर बन गया।

**आजकल आप ब्रिटिश रेलवे, लंदन में कार्य कर रहे हैं, यह अवसर आपको कैसे मिला और इस कार्य के साथ-साथ आप किस प्रेरणा से हिंदी-सृजन की ओर उन्मुख हुए।**

दरअसल लंदन में बसने से पहले मेरे तीन कहानी-संग्रह — 'काला सागर', 'ढिबरी टाईट' और 'देह की कीमत' प्रकाशित हो चुके थे। लंदन में बसने के बाद पहले बी.बी.सी. विश्व सेवा रेडियो, लंदन में समाचार वाचक के तौर पर नौकरी की। फिर लगा कि कुछ अलग करना चाहिए, तो रेलगाड़ी का इंजिन चलाना सीखा और रेलवे में ट्रेन ड्राइवर बन गया। बात दरअसल यह है कि हिंदी का लेखक लिखकर नहीं खा सकता। तमाम लेखक खाकर लिखते हैं। और मजेंदार स्थिति यह है कि उसी लेखन को छापकर प्रकाशक गाड़ी और बंगला खरीद लेता है। लेखक को रॉयल्टी तो क्या रॉयल्टी की स्टेटमेंट भी नहीं मिलती। हर लेखक पेट के लिए कोई न कोई नौकरी करता है और दिली सुकून के लिए सृजनात्मक लेखन करता है। हाँ, यह सच है कि लंदन में बसने के बाद और रेलवे में नौकरी करने के बाद मेरे अनुभव क्षेत्र में एक ज़बरदस्त बदलाव हुआ और अब मुझे नए चरित्र, नई स्थितियाँ और नई थीम मिलने लगी। इन्हीं अनुभवों के नतीजे 'कब्र का मुनाफ़ा', 'कोख का किराया', 'पासपोर्ट का रंग', 'एक बार फिर होली', 'तरकीब', 'छूता



फिसलता जीवन', 'मुझे मार डाल बेटा', 'शव यात्रा' और 'संदिग्ध' जैसी कहानियों का सृजन संभव हो पाया।

### हिंदी के परिप्रेक्ष्य में अपने पारिवारिक जीवन की जानकारी साझा कीजिए।

दरअसल मेरे पिता एक स्वतंत्रता सेनानी थे। स्वयं उर्दू और पंजाबी के लेखक थे। उपन्यास, अफसाने, गज़लें, नज़में आदि तमाम विधाओं में लिखा करते थे। एफ़.एस.सी. में साइंस के साथ संस्कृत भी पढ़ी थी। पंजाब के जिस इलाके में पैदा हुए थे, वो अब पाकिस्तान में है। मेरे माता-पिता का विवाह जिस दिन हुआ उसी शाम विवाह से कुछ घंटे पहले गांधी जी की हत्या हो गई। ज़ाहिर है कि बिना किसी धूम धड़ाके के विवाह संपन्न हुआ। मेरी दो बहनें हैं—एक बड़ी और एक छोटी। मेरी माँ हिंदी की पत्रिकाएँ एवं उपन्यास वगैरह पढ़ती भी थीं और पत्र हमेशा हिंदी में ही लिखा करती थीं। साहित्य में रुचि ज़ाहिर है कि अपने पिता से मिली। माँ से मिली संवेदनशीलता। साहित्य की पढ़ाई करने की प्रेरणा हरजीत दीदी ने दी। मगर मेरा शुरुआती लेखन अंग्रेज़ी भाषा में हुआ। माता-पिता और बहनों के साथ पंजाबी में बातचीत होती थी और बाहर सबके साथ अंग्रेज़ी में। सोचने और लिखने की भाषा अंग्रेज़ी बन चुकी थी। ऐसे में इंदु के साथ विवाह ने पूरे जीवन की सोच को बदल दिया। इंदु का जन्म इलाहाबाद में हुआ था। बी.ए. ऑनर्स और एम.ए. हिंदी में किया था। हिंदी में सोचती थी, बोलती थी और लिखती थी। मेरे अपने परिवार की भाषा हिंदी बन गई, क्योंकि हम दोनों अपनी बेटी दीप्ति और पुत्र मयंक के साथ हिंदी में बात करते थे। मैं अब भी यही करता हूँ। मेरी पत्नी इंदु ने मेरी पहली करीब 25 कहानियों की भाषा, व्याकरण एवं प्रस्तुतीकरण को बेहतर बनाने में मेरी सहायता की। यदि आज मैं हिंदी का कथाकार हूँ, तो उसका श्रेय या दोष मेरी दिवंगत पत्नी इंदु के सिर जाएगा। मगर इंदु के कारण ही आज मेरी बेटी दीप्ति (जो कि आर्या शर्मा

के नाम से टीवी कलाकार है) इतनी साफ़ हिंदी बोल लेती है। उसने 'जमाई राजा' और 'बेपनाह' जैसे टीवी सीरियलों में काम किया है। अभी हाल ही में उसने 'मेरे डैड की दुल्हन' में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है।

आपने बताया कि हिंदी-लेखन आपने भारत में रहते हुए शुरू कर दिया था और लंदन प्रवास में आपके लेखन को विस्तार मिला। दोनों देशों की परिस्थितियों/परिवेश/जीवन-शैली/भौतिक सुख सुविधाओं/सांस्कृतिक मूल्यों में पर्याप्त भिन्नता है। इस दृष्टिकोण से आप अपने लेखक की जीवन दृष्टि और संवेदना में कितना परिवर्तन महसूस करते हैं?

दीपक जी, आपको एक राज़ की बात बताता हूँ। मैं भारत में रहते हुए भी केवल इंडियन कभी भी नहीं था। दरअसल मैं एक एअर-इंडियन था। इसलिए मेरा अनुभव क्षेत्र अधिकांश हिंदी लेखकों से भिन्न रहा। मैं पूरी तरह से शहरी प्रॉडक्ट हूँ। मुझे गाँव के जीवन का कुछ खास अनुभव नहीं है। मगर मैंने सोचा कि अगर मैं किसान पर नहीं लिख सकता, तो विमान पर तो लिख सकता हूँ। तो वर्ष 1982 में एक कहानी लिखी 'उड़ान' जो कि मुंबई की पत्रिका 'श्री वर्षा' में प्रकाशित हुई थी। डॉ. देवेश ठाकुर ने उसे 1982 की श्रेष्ठ कहानियों में शामिल किया। और यह भी लिखा कि एअर होस्टेस के जीवन पर उन्होंने यह पहली कहानी लिखी है। क्योंकि एअर इंडिया की नौकरी के कारण मुझे लगातार विदेश यात्राएँ करनी पड़ती थीं, मेरे अनुभव भी उसी प्रकार विस्तृत और ग्लोबल हो रहे थे। मेरी जीवन-शैली और भौतिक सुख लंदन के जीवन से कहीं अधिक समृद्ध थे। इन्हीं अनुभवों ने 'काला सागर', 'ढिबरी टाईट', 'देह की कीमत', 'चरमराहट', और 'भँवर' जैसी कहानियाँ लिखवाईं। मगर वहीं अपनी मिट्टी से जुड़ी कहानियाँ भी लगातार लिखी जा रही थीं। 'एक ही रंग', 'कैंसर', 'अपराध बोध का



प्रेत', 'रेत के शिखर', 'ईंटों का जंगल', 'सिलवटें' और 'मलबे की मालकिन' जैसी कहानियाँ भी पाठकों और आलोचकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रही थीं। मगर लंदन में बसने के बाद मैंने कुछ समय के लिए अपने अनुभवों को पुख्ता करने के बारे में सोचा और कलम को थोड़ा विराम देने की सोची। फिर भी 'अभिषप्त' कहानी लिखी गई, जो कि मेरे भारत छोड़ने और लंदन में बसने के बीच की कड़ी है। इस कहानी में भारत भी है और लंदन में बसने की मुश्किलें भी।

जब मैंने लंदन और ब्रिटेन के जीवन को समझ लिया (मुझे ऐसा लगा), तब मैंने 'ये क्या हो गया', 'एक बार फिर होली', 'कोख का किराया', 'तरकीब', 'जमीन भुरभुरी क्यों है', 'कल फिर आना', 'इन्तज़ाम', 'खिड़की', 'कैलिप्सो', 'शवयात्रा', 'कब्र का मुनाफा' और 'संदिग्ध' जैसी कहानियाँ लिखीं। अब मेरी कहानियाँ भारतीय पाठकों और आलोचकों को एक नए संसार से परिचित करवा रही थीं। यह संसार हिंदी कहानी के लिए सर्वथा नया था। ये किरदार ब्रिटेन में रहकर ब्रिटिश हो चुके थे या फिर यहाँ के मूल निवासी थे। अब मेरी संवेदना के घेरे में ब्रिटेन का आम आदमी था। मेरा प्रयास था कि मेरी कहानियाँ ब्रिटेन की हिंदी कहानियाँ बन जाएँ, हिंदी की प्रवासी कहानियाँ नहीं। मुझे उम्मीद है कि मैं अपने उस प्रयास में कुछ हद तक अवश्य सफल रहा, क्योंकि इन कहानियों को पाठकों, लेखकों और आलोचकों ने समान रूप से सराहा।

आप स्वीकार करते हैं कि आप भारत में रहते हुए भी केवल इंडियन कभी भी नहीं थे — "दरअसल मैं एक एअर-इंडियन था"। तब तो आपका वास्ता विदेश नौकरी के लिए जा रहे सभी वर्गों के भारतीयों से रहा होगा। क्या आपने किसी कहानी में उक्त विषय को कथ्य बनाया है?

दीपक भाई, मैंने पहले भी आपको बताया कि एअरलाइन के अनुभव ने बहुत-सी कहानियाँ

लिखवाई। 'ढिबरी टाईट' का गुरमीत सिंह एक वर्किंग क्लास का लड़का था, जिसके जीवन की त्रासदी मेरी एक महत्वपूर्ण कहानी का विषय बनी। कैसे विदेशों में भाषा न आने के कारण और कानून की बेरहमी के कारण एक पूरा परिवार तबाह हो जाता है। 'भँवर' कहानी की नायिका भी लंदन की एक मिडल क्लास महिला थी, जिसके जीवन ने कहानी लिखने पर मजबूर किया। 'ईंटों का जंगल' का नायक भी एक विमान परिचारक है, जिसके माध्यम से कैबिन क्रू के जीवन की एक झलकी दिखाई गई है। 'चरमराहट' कहानी दिखाती है कि बाबरी मस्जिद के गिरने पर सऊदी अरब में क्या प्रतिक्रिया होती है। 'देह की कीमत' एक फरीदाबाद के लड़के की कहानी है, जो गैर कानूनी ढंग से जापान जाता है। इस गैर कानूनी शरूब की टोकियो में सड़क दुर्घटना में मौत हो जाती है। एक गैर कानूनी लाश की क्या हालत हो सकती है और फिर उसके पैसों को लेकर सास की सोच और व्यवहार। 'काला सागर' तो ऐसे रिश्तेदारों की कहानी है, जो लंदन के विमान हादसे में मारे गए अपने संबंधियों की लाशें पहचानने जाते हैं, मगर शॉपिंग से फुरसत नहीं पा सकते। 'उड़ान' तो एक एअर होस्टेस के जीवन की ही कहानी है। मैं तो यहाँ तक मानता हूँ कि मेरे व्यक्तित्व को बनाने में एअर इंडिया का बहुत बड़ा हाथ है। ठीक उसी तरह लंदन में मैंने कुछ कहानियाँ रेल जीवन से जुड़ी भी लिखी हैं।

**मैं कथा यू.के. संस्था के जन्म और उसके उद्देश्य को जानने के लिए उत्सुक हूँ।**

1995 में मेरी पत्नी इंदु का मुंबई में कैंसर से निधन हो गया। डॉ. धर्मवीर भारती के घर मैं और जगदम्बा प्रसाद दीक्षित मिले और उस बैठक के नतीजे में 'इंदु शर्मा कथा सम्मान' की शुरुआत की गई। शर्त रखी गई कि लेखक की आयु 40 वर्ष से कम होनी चाहिए और केवल पिछले 3 वर्षों में प्रकाशित कहानी-संग्रह पर ही विचार किया जाए।

एक ट्रस्ट का गठन किया गया, जिसका नाम

रखा गया — 'इंदु शर्मा मेमोरियल ट्रस्ट'। ट्रस्टियों में मेरे अलावा शामिल थे श्री विश्वनाथ सचदेव, श्री राहुल देव एवं सिने कलाकार नवीन निश्चल। पहले कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे स्वयं डॉ. धर्मवीर भारती। सम्मान के साथ ग्यारह हजार रुपये की राशि भी जुड़ी थी। पहला सम्मान दिया गया गीतांजलि श्री को उनके कहानी-संग्रह 'अनुगूज' पर। उसके बाद के चार सम्मानों में मुख्य अतिथि एवं अध्यक्ष के तौर पर कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मनोहर श्याम जोशी, ज्ञानरंजन, गोविन्द मिश्र, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, कामतानाथ, दूधनाथ सिंह और गुलजार जैसे नाम शामिल हैं। मुंबई के ये सभी आयोजन एअर इंडिया बिल्डिंग, नरीमन पॉइंट के एअर कंडीशन हॉल में किए गए। इन सभी आयोजनों में पुष्पा भारती, सूर्यबाला, सुधा अरोड़ा, जितेन्द्र भाटिया, नंद किशोर नौटियाल, राम मनोहर त्रिपाठी सहित साहित्य एवं पत्रकारिता जगत के तमाम नाम शामिल होते।

मेरे लंदन में बसने के बाद 'इंदु शर्मा मेमोरियल ट्रस्ट' का नाम बदलकर 'कथा यू.के.' हो गया और कहानी के साथ-साथ उपन्यास भी जुड़ गया। साथ ही आयु सीमा भी हटा दी, ताकि लंदन में कार्यक्रम की भव्यता कायम की जा सके। जहाँ एक ओर हम अंतरराष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान के लिए भारत के लेखकों की ओर देखते हैं, वहीं हमने ब्रिटेन के हिंदी लेखकों के लिए 'पद्मानन्द साहित्य सम्मान' की भी स्थापना की। इस सम्मान के लिए कोई विधा निश्चित नहीं की गई।

**कथा यू.के. ने हिंदी-सम्मानों के लिए हाउस ऑफ लॉर्ड्स या ब्रिटिश संसद में कैसे पहुँच बनाई?**

कथा यू.के. के पहले तीन कार्यक्रम भारतीय उच्चायोग के नेहरू सेंटर में आयोजित हुए और फिर यह सम्मान ब्रिटेन की संसद के हाउस ऑफ लॉर्ड्स और हाउस ऑफ कॉमन्स में आयोजित होने लगे। सबसे पहले हमारे मित्र लॉर्ड तरसेम किंग कथा

यू.के. को हाउस ऑफ लॉर्ड्स तक ले गए। बाद में हमारे लोकल सांसद टोनी मैक्नलटी को महसूस हुआ कि यह आयोजन इतना महत्वपूर्ण है कि इसे हाउस ऑफ कॉमन्स में होना चाहिए। तब से हमारे अपने सांसद श्री विरेन्द्र शर्मा यह भार अपने कंधे पर उठाए हैं।

ब्रिटेन में सांसद आम इन्सान की तरह पेश आते हैं। उन्हें अपने क्षेत्र की गतिविधियों में रुचि रहती है। हमारी संरक्षक काउंसलर ज़किया जुबैरी ने अपने क्षेत्र से पाँच बार चुनाव जीता है। मगर हम सब मिल-जुलकर काम करते हैं। यदि आप अच्छा काम कर रहे हैं, तो आपका सांसद उसमें रुचि लेगा। चाहे वह किसी भी दल का क्यों न हो। मेरे लिए लेबर और टोरी दोनों दलों के सांसदों ने एम.बी.ई. (ब्रिटेन का पद्मश्री) सम्मान की सिफारिश की, जो मुझे हिंदी साहित्य की सेवा के लिए ब्रिटेन की महारानी ने बकिंघम पैलेस में दिया।

**पारिवारिक परिचय में बताया कि आपकी बेटी टी.वी. सीरियल की कलाकार है। आपका भी नाता तो बॉलीवुड से है। कृपया बताइए कि एअर इंडिया में नौकरी करते हुए आपका जुड़ाव फ़िल्मी दुनिया से कैसे हो गया?**

दीपक भाई दरअसल मुझे बचपन से ही हिंदी सिनेमा से लगाव रहा। कुछ बड़ा होने पर मैं अलग-अलग फ़िल्म निर्देशकों के काम को समझने का प्रयास करने लगा। कोई विधिवत ट्रेनिंग तो नहीं हुई, मगर मेरे लिए यह सब नेचुरल था। मुझे राजकपूर और गुरुदत्त का लाइट एण्ड शेड का इस्तेमाल बहुत अच्छा लगता था। बिमल राय और ऋषिकेश मुखर्जी की सादगी और कहानी को संवेदनशील ढंग से उठाना पसन्द आता था। बी. आर. चोपड़ा क्योंकि अपने ज़माने के एम.ए. अंग्रेज़ी थे, तो उनकी हर फ़िल्म किसी ना किसी सामाजिक मुद्दे को लेकर बनी होती।

जब एअर इंडिया में नौकरी शुरू की, तो मुंबई में आकर बस गया। यह तो है ही फ़िल्मी नगरी।

विमान में भी बहुत से कलाकारों एवं निर्देशकों से मुलाकात होती। दिल्ली में रहते हुए मैंने करीब 40 रेडियो नाटकों में अभिनय किया था। कुमुद नागर, सत्येन्द्र शर्मा, दीनानाथ जैसे महारथियों से आवाज़ के उतार-चढ़ाव का इस्तेमाल अभिनय के लिए सीख चुका था। इसलिए जाहिर है कि अगला कदम फिल्म या टी.वी. की स्क्रीन पर होता।

फिर बहुत-सी फिल्मी हस्तियों से मित्रता भी हुई। नवीन निश्चल, गुलशन ग्रोवर, शक्ति कपूर, गुलज़ार, अन्नु कपूर, राजेन्द्र गुप्ता और ढेर से टी.वी. कलाकारों से मित्रता बनी। अन्नु कपूर ने अपनी फिल्म 'अभय' में अभिनय करवाने का प्रस्ताव रखा। इस फिल्म के मुख्य कलाकार नाना पाटेकर थे। तो अपने शौक को एक नया मौका दिया, ताकि हसरत दिल ही में ना रह जाए। मगर मैं भीतर से कुछ डरा हुआ इन्सान था। परिवार में पत्नी, बेटी और पुत्र थे, तो रिस्क नहीं ले सकता था। इसलिए फिल्मों को भी केवल शौक तक ही रखा। मगर सिनेमा की समझ परिष्कृत होती गई। अब मैं सिनेमा के गीतों की साहित्यिक गुणवत्ता के बारे में भी सोचने लगा। इसमें भी शैलेन्द्र मेरे सबसे प्रिय गीतकार बन गए। मैं उनके फिल्मी गीतों को बिना धुन के सुना सकता था।

**आपने अपने व्यस्त जीवन में 'शांति' हिंदी सीरियल कैसे तैयार किया, क्योंकि इस प्रकार के काम में कथा के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों का अनुभव आवश्यक होता है।**

दरअसल दीपक मैं 'शांति' सीरियल का ओरिजिनल लेखक नहीं हूँ, एक अंग्रेजी पढ़ा-लिखा हिंदी का कहानीकार था, जिसमें सिनेमा की समझ डेव्लप हो रही थी। 'शांति' भारत का पहला डेली सोप था, जो कि दूरदर्शन पर दिखाया जाता था। इसी सीरियल से मंदिरा बेदी को प्रसिद्धि मिली थी। एक समय ऐसा आया, जब शांति की टी.आर.पी. में कुछ कमी आई। तो निर्माताओं ने किसी साहित्यिक लेखक की खोज शुरू की। उन्हीं दिनों मुख्य

अभिनेता के रूप में दिनेश ठाकुर को कामेश महादेवन के रूप में इस सीरियल में लिया गया था। दिनेश मेरे बड़े भाई समान थे। उन्होंने निर्माताओं को मेरा नाम सुझाया और मैं शांति के लेखन से जुड़ गया। भाई राजेश कुमार सिंह पहले से ही लिख रहे थे, अब मैं उनके साथ हो लिया।

क्योंकि सिनेमा का विद्यार्थी तो मैं पहले से था। संवादों के प्रभाव से वाकिफ़ था। इसलिए प्रयास रहता था कि संवाद आम-फ़हम भाषा में लिखे जाएँ, मगर उनके अर्थ गहरे हों। इसमें भी शैलेन्द्र के गीत मेरा मार्गदर्शन करते रहे, क्योंकि वहाँ भी यही होता है — शब्द आसान, अर्थ गहरे।

एक मजेदार किस्सा शेयर करना चाहूँगा। भाई दिनेश ने कहा, "तेजेन्द्र भाई, हर एपिसोड में मेरे लिए एक संवाद राजकुमार टाइप ज़रूर रखना।" मैं मुस्करा दिया, क्योंकि मुझे बनावटी डायलॉग कभी पसन्द नहीं आते थे, हालाँकि दर्शक तालियाँ और सीटियाँ उसी पर बजाते थे। मुझे विश्वास था कि मैं दिनेश भाई की बात नहीं मानूँगा। मगर जब लिखना शुरू किया, तो अचानक उनकी बात याद आ जाती और मैं एक संवाद वैसा ज़रूर उनके लिए लिखता। एक संवाद मुझे आज भी याद है "पाण्डे, आवाज़ नीची रखो। इस कमरे की दीवारों का पलस्तर भी ऊँची आवाज़ सुनने का आदी नहीं है।" दिनेश भाई ने फ़ोन करके इस संवाद के लिए बधाई दी थी। दिनेश के साथ और भी बहुत-सी यादें जुड़ी हैं।

जिस तरह के समाज में मैं रहता था, उसमें राज जी.जे. सिंह और कामेश महादेवन जैसे लोगों से अक्सर मुलाकात होती थी। शायद वही अनुभव मेरे काम आए और मैं इन चरित्रों के माध्यम से अपनी बात कह पाता था।

**'हथेलियों में कम्पन' और 'देह की कीमत' जैसी कहानियों में संवेदना के साथ यथार्थ के धरातल पर झकझोरने वाली अनुभूतियों के चित्रण की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त करते हैं? कहीं-कहीं छोटे वार्तालाप एक विचारधारा**

**बनकर गहरे संवेदन का साक्षात्कार कराते हैं।**

पहले तो धन्यवाद कहना चाहूँगा दीपक कि तुम्हारी पीढ़ी के पाठक मेरी कहानियों के साथ जुड़ पाते हैं और मेरे इमोशन उन्हें अपने इमोशन जैसे लगते हैं। मेरी कहानियों की रचना प्रक्रिया कभी एक-सी नहीं रही। जहाँ पहली कहानी 'हथेलियों में कम्पन' कहानी के दोनों पात्रों से परिचित हूँ, वहीं 'देह की कीमत' के किसी पात्र को नहीं जानता।

'हथेलियों में कम्पन' कहानी के मुख्य पात्र मेरे अपने नरेन्द्र मौसा हैं। उन्होंने सारी उम्र हमारे हर रिश्तेदार की अस्थियाँ हरिद्वार जाकर गंगा जी के पुण्य जल में अर्पित कीं। बिना किसी लालच, उन्होंने श्रद्धांजलि के रूप में यह काम अपने ऊपर ले रखा था। मेरे बाऊजी की अस्थियाँ बहाने भी वे मेरे साथ हरिद्वार गए थे। उन्हें वहाँ के पण्डों से पूरी बातचीत करने का तरीका मालूम था। वे वहाँ जाकर ऐसा व्यवहार करते, जैसे कोई डॉक्टर सर्जरी के समय करता है या कोई अधिकारी एडमिनिस्ट्रेशन करते समय। ऐसे बेहतरीन इन्सान को झटका लगा, जब उनका तीस वर्षीय पुत्र चल बसा। वे पूरी तरह से टूट गए। उनके लिए वही काम करना असंभव हो गया, जो वे वर्षों से दूसरों के लिए करते आ रहे थे।

वही 'देह की कीमत' एक ऐसी कहानी है, जिसके किसी भी पात्र को मैं पहचानता नहीं। मेरा एक मित्र जापान में भारतीय उच्चायोग में कार्यरत था। जब वह टोकियो से दिल्ली आ रहा था, तो उसी फ्लाइट पर मैं भी फ्लाइट परसर के रूप में मौजूद था। मेरा मित्र नवराज सिंह मुझे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने बातों-बातों में मुझे बताया कि टोकियो में एक सरदार लड़के की मृत्यु हो गई। घर में कोहराम मचा हुआ है कि पैसा माँ को मिले या पत्नी को। नवराज तो यह दो पंक्तियों की कहानी सुनाकर दिल्ली में उतर गया। मगर मेरी रातों की नींद उड़ा गया। मैं सोच-सोचकर परेशान था। इस घटना को कहानी कैसे बनाऊँ।

सबसे पहले तो मैंने कहानी के लिए लोकल चुना। मेरी माँ फरीदाबाद में रहती हैं। मैं सेक्टर 15 और सेक्टर 18 से अच्छी तरह परिचित हूँ। वहाँ का जैन मंदिर और भीम बाग मेरे देखे हैं। पास के गुरुद्वारे में भी गया हूँ। वही लोकल मेरी कहानी के लिए फिट बैठ रहा था। दसवीं ग्यारहवीं में मेरे ड्राइंग के टीचर एक सरदार जी हुआ करते थे। देखने में पूरे गुरसिख। उनके चेहरे और बोलचाल के ढंग को मैंने दारजी के लिए चुना। वे हमेशा सफ़ेद पटानी सूट और सर्दी में उस पर कोट पहना करते थे। मुझे बहुत प्रिय थे। मुख्य किरदार के लिए अपने ही मित्र हरदीप को चुना, जिसे विदेश में जाकर बसने का बहुत शौक हुआ करता था। इसी तरह अपनी जान-पहचान वाले लोगों को चुनता चला गया। जब हर कैरेक्टर फिट बैठ गया, तब कहानी का पहला ड्राफ़्ट लिखा। ई.एम. फ़ॉर्स्टर ने कहा था कि लेखक को अपनी रचना में कहीं दिखाई नहीं देना चाहिए। यही बात मेरे अग्रज जगदम्बा प्रसाद दीक्षित भी कहा करते थे। मैं आज तक नैरेटर और लेखक को अलग करने का प्रयास करता रहता हूँ। अपनी हर कहानी के दूसरे ड्राफ़्ट में यही प्रयास करता हूँ कि यदि कहीं लेखक नैरेटर के ऊपर हावी हो रहा है, तो संपादन किया जाए। क्योंकि इस कहानी को केवल तीन पंक्तियों की कहानी से गढ़ा था, इसलिए मुझे इस कहानी के पाँच ड्राफ़्ट लिखने पड़े। फिर इंदु को पढ़वाई। जैसा मैंने पहले भी कहा है, इस पर इंदु ने महत्वपूर्ण टिप्पणी करते हुए कहा था कि अब मैं आराम से मर सकती हूँ, अब आपको अपनी कहानी मुझ से ठीक करवाने की कोई ज़रूरत नहीं है।

जहाँ तक छोटे-छोटे संवादों के इस्तेमाल की बात है, यह मैंने शांति सीरियल के लेखन के दौरान सीखा कि किस तरह, जो बात लंबे-लंबे वाक्यों और पैराग्राफ़ में नहीं कही जा सकती, वो छोटे-छोटे संवादों में कैसे दिल तक पहुँच जाती है।

**'कब्र का मुनाफ़ा' कहानी ने तो मुझे आपकी कल्पनाशीलता का कायल कर दिया।**

**भौतिक-समृद्धि का मृत्यु के साथ ऐसा संयोग अद्भुत है, यह कथ्य कैसे सृजित हुआ।**

सच तो यह है कि 'कब्र का मुनाफ़ा' कहानी का बीज एक मज़ाक ने बोया था। ब्रिटेन की वरिष्ठ कथाकार काउंसलर ज़किया जुबैरी का जन्मदिन था और एक पार्टी में किसी ने उनके पति से पूछ लिया "जुबैरी साहब, इस बार ज़किया जी को जन्मदिन पर क्या तोहफ़ा दे रहे हैं?" जुबैरी साहब ने अपनी भारी भरकम आवाज़ में जवाब दिया "अरे भाई इनको तोहफ़ा देने का क्या फ़ायदा। जो तोहफ़ा इनको पिछली सालगिरह पर दिया था, उसका तो इन्होंने आज तक इस्तेमाल ही नहीं किया।" सबकी आँखों में कौतूहल था। आखिर ऐसा क्या तोहफ़ा दिया होगा जुबैरी साहब ने। एक मित्र ने पूछ ही तो लिया "वैसे पिछली सालगिरह पर आपने क्या तोहफ़ा दिया था सर?" आँखों में शरारत लिए जुबैरी साहब ने कहा "भाई पिछली बार इनको एक कब्र गिफ़्ट की थी। आज तक खाली पड़ी है। इन्होंने उसका इस्तेमाल ही नहीं किया।" पूरी पार्टी में सन्नाटा छा गया। सब ज़किया जी की तरफ़ देखने लगे। किसी को समझ नहीं आ रहा था कि उसकी प्रतिक्रिया क्या हो। ज़किया जी ने मुस्कुरा कर माहौल को हल्का कर दिया।

मगर मेरे दिमाग में तूफ़ान मच गया। कब्र बुक करना मेरे लिए एक नया विचार था। नया धमाका। मैंने शोध करना शुरू किया कि अलग-अलग इंश्योरेंस कम्पनियाँ क्या-क्या ऑफ़र करती हैं अपनी स्कीम में। सिल्वर, गोल्ड और प्लैटिनम स्कीम। जितना गुड़ डालोगे उतना ही आलीशान फ़्यूनरल। फिर पता किया कि किस तरह अलग-अलग सिमेटरी वाले किस तरह ब्लॉक ऑफ़ लैण्ड बेचते हैं, ताकि कुछ एक जैसे सिरफ़िरे अपनी-अपनी कब्रें साथ-साथ बुक करवा सकें और मरने के बाद भी अपने जैसे लोगों के साथ जिएँ। पता चला कि लंदन में मरना किसी अय्याशी से कम नहीं है। शोध आगे बढ़ा, तो लाश के मेकअप इंडस्ट्री के बारे में

पता चला। कैसे लाश का ब्राइडल एवं ब्राइडग्रूम मेकअप किया जाता है। यानि कि इस कहानी (जिसे प्रो. पुष्पपाल सिंह ने सदी की महान कहानी कहा है) के कथ्य की उपज के सृजन में जुबैरी साहब का मज़ाक और उनके पूंजीवादी व्यवहार; ज़किया जी की समाजवादी सोच, मेरा शोध और मौत की इंडस्ट्री का निर्लज्ज रवैया जुड़े हुए हैं। इस कहानी में मैंने मौत के साथ कुछ खिलंदड़ेपन से डील किया है। इस कहानी से यह भी पता चलता है कि कहानी के लिए शोध का कितना महत्त्व है।

**जब आपको कोई विषय कहानी के कथ्य के लिए मिल जाता है, तो आपके मन में उसे शब्दों में अभिव्यक्त करने की कितनी छटपटाहट होती है। इस प्रश्न के माध्यम से मैं आपकी लेखन-प्रक्रिया से अवगत होना चाहता हूँ।**

मैं तब तक कहानी नहीं लिखता, जब तक मेरे पास कहने के लिए कुछ नया नहीं होता। अपनी कहानियों के लिए शोध करता हूँ। मेरी कहानियों में केवल भावनाओं का उद्गार नहीं होता। यदि मुझे ब्रिटेन की डीक्लास ओपन जेला के बारे में लिखना है, तो मैं पहले उसे देखकर समझने का प्रयास करता हूँ। हिंदी लेखक विमर्श और चिंता तो करता है, मगर गहराई के लिए शोध नहीं करता। दरअसल हिंदी का संपूर्ण लेखन एक पार्ट टाइम एक्टिविटी है। याद रहे पार्ट टाइम नौकरी भी नहीं है। यहाँ लेखक दफ़्तर, घर, बीबी, बच्चों के कामों से समय निकालने के बाद लिखने बैठता है। इसलिए बहुत से लेखकों में निरंतरता का अभाव दिखाई देता है। मेरे लेखन में घटना या विचार पर बहुत दिनों तक सोचने की प्रक्रिया चलती है। मैं उसे रेड वाइन की तरह मैच्योर होने देता हूँ। जब कथ्य दिमाग में तय हो जाता है, उसके बाद बुनावट के बारे में सोचता हूँ। मैं हमेशा कथ्य को बहुत महत्त्व देता हूँ। मेरे अनुभव अन्य हिंदी लेखकों से अलग हैं। एअर इंडिया में बाईस साल की नौकरी ने अनूठे अनुभव



दिए।

‘देह की कीमत’ कहानी लिखने से पहले करीब छः महीने उस पर काम किया। मैं इस कहानी के किसी चरित्र को निजी तौर पर नहीं जानता। बस मेरा एक दोस्त टोकियो से दिल्ली आ रहा था। एअर इंडिया की उस उड़ान पर मैं भी मौजूद था — एक फ्लाइट परसर के रूप में। उसने मुझे दो पंक्तियों की एक घटना सुना दी। उस घटना ने जैसे मुझे अपने घरे में ले लिया। मैंने उस घटना के लिए चरित्र अपने आसपास के माहौल से चुने और फिर लिखा उसका पहला ड्राफ्ट। मैं अपना पहला ड्राफ्ट लिखकर उसे दो या तीन सप्ताह के लिए रख देता हूँ। उससे दूरी बना लेता हूँ। जब मुझे लगे कि अब मैं इसे किसी और के लिखे की तरह पढ़ सकता हूँ, तब जाकर बनता है दूसरा ड्राफ्ट।

फिर लंदन में बसने के बाद कहानियों में अलग किस्म के बदलाव आए। ‘कब्र का मुनाफा’ का बीज भी आदरणीया ज़किया जुबैरी जी की एक दो लाइन के किस्से ने बोए। फिर कहानी के लिए शव-मेकअप और कब्रिस्तान की दिलफरेब ऑफ़रों के बारे में खासा शोध करना पड़ा। यदि हमारे पास कुछ पिराने को है ही नहीं, तो हम कितनी भी बाज़ीगरी क्यों ना कर लें, रचना में गहराई नहीं आ पाएगी। मैं अपने चरित्रों के दर्द दिल से महसूस करता हूँ और उसके बाद दिल से ही लिखता भी हूँ। मैं कहानियों में अतिरिक्त बौद्धिकता का समर्थन नहीं करता। मेरे चरित्र हॉड़-मांस के लोग होते हैं और मेरे हिसाब से संप्रेषणीयता, साहित्य की पहली कसौटी है।

**मैंने कहीं पढ़ा है कि आप लेखन के लिए कलम/पेपर के स्थान पर प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हैं। इससे आपके लेखन को क्या दिशा मिलती है? टाइप के बाद संशोधन हो जाने के बाद तो आपका मूल समाप्त हो जाता होगा।**

दीपक भाई, पिछले बीस वर्षों में आम आदमी के जीवन में जो बदलाव आए हैं, उनका लेखा-जोखा

रख पाना संभव नहीं। याद करिये कभी हमारे पास एक लैण्डलाइन का फोन हुआ करता था, जो कि दस-दस साल की प्रतीक्षा के बाद घर में आकर लगाया जाता था। मुझे याद है कि हमारे मुहल्ले में शायद पहला टी.वी. और पहला फोन हमारे घर ही लगा था। उस ब्लैक एण्ड व्हाइट टीवी के ज़माने में जब छत पर एंटीना लगाया जाता था, मुहल्ले भर के पड़ोसी अपने आपको स्वयं ही निमंत्रित कर लिया करते थे और रविवार को हमारी माँ को कम-से-कम बीस कप चाय तो बनानी ही पड़ती थी। 1982 के बाद स्थितियाँ बदलती गईं और आज यदि किसी के घर में कलर टी.वी. न हो, तो हैरानी होती है। ठीक इसी तरह फोन का मसला था। हमें कितने लोगों को उनके घर से बुलाना पड़ता था कि आंटी आपका फोन आया है। सच बताऊँ, तो आप यकीन नहीं करेंगे कि कितनी कोपत होती थी। आज हर हाथ में स्मार्ट फोन दिखाई देता है।

ठीक उसी तरह ऑडियो कैसेट, पेजर, वीडियो कैसेट और उनसे भी पहले फ़ाउण्टेन पेन। सभी सीन से गायब हो गए हैं। इन दो-तीन दशकों में तकनीकी प्रगति बेहिसाब हुई है। अपनी पीढ़ी के लेखकों में शायद मैं पहला ही रहा होऊँगा, जिसने कम्प्यूटर अपनाया था। 1997 में कम्प्यूटर ट्रेनिंग ली थी और हिंदी में टाइप करने लगा था। पहले फ़ॉण्ट्स की अराजकता थी। जितनी कम्पनियाँ उतने ही फ़ॉण्ट। सन् 2000 में माइक्रोसॉफ़्ट कंपनी ने यूनिकोड फ़ॉण्ट के साथ ही इंस्क्रिप्ट की-बोर्ड से हमारा परिचय करवाया।

अब हँसना मत। मैं स्कूल, कॉलिज और विश्वविद्यालय में हिंदी नहीं पढ़ा हूँ। इसलिए मेरे लिए हिंदी कलम और कागज़ पर लिखना बहुत आसान नहीं होता था। मगर फिर भी पहली 35 के करीब कहानियाँ बॉलपेन से कागज़ पर ही लिखीं। मगर जैसे ही नया हथियार हाथ में आया, तो बस उसे जल्दी से अपना लिया। अब मेरी उंगलियों का तालमेल मेरे दिमाग और मेरी सोच के साथ जुड़



गया है। मैं हिंदी में ठीक वैसे ही टाइप करता हूँ, जैसे कोई टाइपिस्ट अंग्रेजी में करता है — यानि कि टच टाइपिंग।

आज ज़माना डिजिटल साहित्य का होता जा रहा है। युवा पीढ़ी किताबों को स्मार्टफोन और टेबलेट पर पढ़ रही है। भला किसके पास समय है कि मैन्युस्क्रिप्ट के बारे में सोचे। युवा पीढ़ी के दिलों में जीना है, तो उनकी तरह सोचना भी सीखना होगा। और मियाँ जब हम ही न होंगे, तो हमारी लिखाई में ऐसा क्या है, जिसे बचाकर रखने का प्रयास किया जाए।

तेजेंद्र जी आप तो विश्व के अनेक हिंदी लेखकों के संपर्क में रहते हैं। इसलिए मैं जानना चाहता हूँ कि भारत से बाहर लिखे जा रहे हिंदी साहित्य के भारत में प्रकाशन में (पत्र-पत्रिकाओं या पुस्तक प्रकाशन) कोई परेशानी महसूस करते हैं और अगर कुछ परेशानियाँ होती हैं, तो उन्हें आपकी नज़र से कैसे दूर किया जा सकता है।

एक तरह से आपका यह प्रश्न कुछ हद तक आपके पहले प्रश्न से भी जुड़ा हुआ है। जब इस्क्रिप्ट नहीं बना था और भारतेतर हिंदी लेखकों को अपनी रचना हाथ से लिखकर लिफाफे में डालकर पोस्ट करनी होती थी, तो हमें पता ही नहीं चलता था कि रचना संपादक तक पहुँची या नहीं। और किसी भी संपादक (ख़ास तौर पर लघु-पत्रिका के संपादक) के पास इतने पैसे नहीं होते थे कि वह डाक-टिकट लगाकर विदेश में बसे लेखकों को सूचित कर पाता कि रचना स्वीकृत हुई या नहीं। टेलिफोन भी हमें ही करना होता था। हम ख़ासे यतीम-सा महसूस करते थे। अंततः जब ईमेल के जरिये रचनाएँ भेजने का तरीका सुचारु हुआ, तो हमें भी संपादक के जवाब किसी हद तक मिलने शुरू हो गए। मगर अभी तक भारत से बाहर लिखे जा रहे साहित्य को गंभीरता से नहीं लिया जा रहा था। प्रवासी साहित्य के नाम पर केवल मॉरीशस और अभिमन्यु अनंत ही सुनाई

देते थे। 'हंस' के संपादक राजेन्द्र यादव तो प्रवासी साहित्य का नाम सुनकर एक वक्र-सी हंसी हवा में छोड़ देते थे।

कथा यू.के. के माध्यम से हमने भारत में यमुना नगर, मुंबई, मेरठ और दिल्ली में व ब्रिटेन में लंदन और अन्य शहरों में प्रवासी साहित्य पर सेमिनार करवाए। मॉरीशस, टोरोंटो एवं न्यूयॉर्क जैसे शहरों में प्रवासी साहित्य पर लेक्चर दिए। मेरठ के नवीन लोहानी पहले ऐसे प्राध्यापक बने, जिन्होंने अपने विश्वविद्यालय में प्रवासी साहित्य को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया। भारत के सम्मेलनों में प्रकाशकों को भी आमंत्रित किया, ताकि वे भारतेतर साहित्य रचनाकारों को पहचानने लगे।

वहीं प्रकाशकों को लगा कि यह तो सोना देने वाली मुर्गी है। इसलिए प्रवासी साहित्य की पुस्तकें प्रकाशित करने के रेट तय होने लगे। कुछ भारतीय लेखक मित्रों ने मुझसे शिकायत भी की "यार तुम प्रवासियों ने मार्केट ख़राब करके रख दी है। अब प्रकाशक लोकल लोगों से भी पच्चीस तीस हजार माँगने लगे हैं। मैं शायद सच भी मान लेता मगर कुछ एक प्रवासी लेखकों से बात हुई, तो मालूम हुआ कि जिस तरह भारतवासियों ने भ्रष्टाचार को जीवन की एक सच्चाई मान ही लिया है, ठीक उसी तरह प्रवासी भारतीय लेखकों ने भी इस स्थिति के सामने सिर झुकाकर इसे अपनी नियति मान ली है।

आज पैसे देकर ही सही प्रवासी भारतीय लेखक के सामने छपने के कई विकल्प हैं। और अब तो ऑनलाइन प्रिंटिंग और सेल्फ़-पब्लिशिंग जैसे विकल्प भी मौजूद हैं। अब तो बाकायदा विश्व हिंदी दिवस प्रवासी लेखकों के लिए कुछ पितृ-पक्ष जैसी स्थिति है, जिसमें प्रवासी लेखक का महत्व किसी पंडित या पुरोहित से कम नहीं होता। जजमान बहुत से कॉलिज, विश्वविद्यालय या कॉर्पोरेट संस्थाएँ हो सकती हैं। और प्रवासी लेखक का उपस्थित होना अंतर्राज्यीय सम्मेलन का दर्जा सीधा उठाकर अंतरराष्ट्रीय कर देता है।

हिंदी साहित्य साधक अपने कर्म और धर्म से हिंदी के प्रचार-प्रसार में रचनात्मक भूमिका निर्वहन करता है। भारत सरकार विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार की दिशा में जो कदम उठा रही है, क्या वे आपको पर्याप्त लगते हैं? मेरा व्यक्तिगत अनुभव है कि प्रयास प्रभावी नहीं हो रहे हैं, क्योंकि कार्य दीर्घकालिक योजना बनाकर क्रियान्वित नहीं हो रहे हैं।

बात यह है दीपक भाई कि विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार के काम मंदिर और निजी प्रयास ही मूल-रूप से कर रहे हैं। भारत सरकार की हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए ऐसी कोई नीति नहीं है, जिसके बारे में कहा जा सके कि यह हिंदी भाषा को वैश्विक स्तर पर स्थापित करने के लिए बनाई गई है। जिस देश की संसद की पहली भाषा हिंदी नहीं है, उस देश की सरकार दायम दर्जे की भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए क्यों कुछ खर्च करेगी।

जो व्यक्ति या निजी संस्थाएँ हिंदी भाषा एवं साहित्य के लिए कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं, उन्हें भी किसी प्रकार की सहायता का कोई प्रावधान नहीं है। हालात इस पर मयस्सर हैं कि अधिकारी कौन है और उसका हिंदी के प्रति क्या रवैया है। उच्चायोग में एक हिंदी अधिकारी अवश्य होता है, मगर उसका अधिकार क्षेत्र इतना सीमित होता है कि वह अपने बलबूते पर किसी प्रकार का कोई निर्णय नहीं ले सकता। होना तो यह चाहिए कि केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा एवं महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा एक ऐसा सिलेबस तैयार करें, जिसके तहत दसवीं एवं बारहवीं की परीक्षाएँ करवाई जा सकें। इन्हें पास करने वालों को केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा या फिर महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा से एक सर्टिफिकेट मिले। इसके लिए इन्हें हर देश की किसी न किसी संस्था के साथ साझा रूप से परीक्षाओं का आयोजन करना चाहिए। सच तो यह है कि भारत सरकार की कोई योजना ही

नहीं, तो फिर दीर्घकालिक योजना के बारे में क्या सोचना।

कल आपसे बात कर बहुत अच्छा लगा। आपने बताया कि गीतकार शैलेन्द्र से बहुत कुछ सीखा है, जैसे गंभीर बात को भी सरल और सहज भाषा में प्रस्तुत करने की कला। शैलेन्द्र जी का आपके साहित्य लेखन में क्या प्रभाव है।

शैलेन्द्र के गीत बचपन से ही मेरे व्यक्तित्व को भीतर तक छूते रहे हैं। सरल शब्दों में बड़ी से बड़ी बात कह जाते हैं। उनके गीतों में सूत्र वाक्य बहुत होते हैं, जैसे — 'कुछ लोग जो ज्यादा जानते हैं, इन्सान को कम पहचानते हैं।' या फिर 'जब गम का अन्धेरा घिर आए, समझो के सवेरा दूर नहीं', 'सारे भेद खुल गए, राजदार ना रहा।', 'सब कुछ सीखा हमने ना सीखी होशियारी, सच है दुनिया वालों के हम हैं अनाड़ी।'।

जहाँ शकील शृंगार रस के मास्टर हैं और साहिर इंकलाब के, वहीं शैलेन्द्र फलसफे के लेखक हैं, जिनके हर गीत में जीवन का कोई-न-कोई फलसफा दिखाई देता है। क्योंकि हम दोनों की विधा भिन्न-भिन्न है, इसलिए जाहिर है कि मैं शैलेन्द्र की नकल नहीं कर सकता। मगर इस बात का ख्याल रहता है कि मेरी हर कहानी में से पाठकों को कहीं-न-कहीं से जीवन का कोई ऐसा सूत्र अवश्य मिल जाए, जो उनके जीवन में कोई सकारात्मक परिवर्तन ला सके। वैसे 'शांति' सीरियल के लेखन से जुड़ने के कारण भी कुछ ऐसे वाक्य या संवाद स्वयं में वही उभर आते हैं, जिनमें शैलेन्द्र की सी सादगी और गहराई होती है। शैलेन्द्र अपने चरित्र की, मन की भावनाओं को गीताभिव्यक्ति देते हैं। वहीं मैं चरित्र और स्थितियों के मद्देनज़र अपने कथानक को गढ़ता हूँ।

तेजेंद्र जी आप सोशल मीडिया में भारत के समसामयिक विषयों पर बेबाक टिप्पणी

करते हैं, अच्छा लगा कि आपके पास देश की अद्यतन जानकारी रहती है। क्या इन टिप्पणियों के कारण साहित्यिक गलियारे में कोई नकारात्मक प्रतिक्रिया मिली है।

दीपक सोशल मीडिया भी एक अजब गोरख धन्धा है। यहाँ हर आदमी दूसरे पर विजय पाने की लालसा रखता है। हर व्यक्ति को लगता है कि बस उसी की सोच — चाहे राजनीतिक हो या सामाजिक, फिल्मी हो या साहित्यिक — सही है। बाकी सबको उसकी बात मान लेनी चाहिए। कई बार तो बहसबाज़ी इतनी अधिक हो जाती है कि पुराने रिश्ते टूट जाते हैं। मैंने अपने कुछ मित्र खोये हैं। इस बात का दर्द भी है, क्योंकि उन मित्रों से बहुत गहरा रिश्ता था। मगर मेरे व्यक्तित्व का एक अटूट हिस्सा है, बेखौफ़ सच बोलना। जो महसूस करता हूँ, कहता हूँ। सबसे बड़ी बात है कि भारत को प्यार करता हूँ। मेरा मानना है कि हम किसी भी राजनीतिक विचारधारा के हो सकते हैं। हम किसी भी राजनीतिक दल या व्यक्ति की आलोचना कर सकते हैं, मगर याद रखें कि यह आलोचना देश के विरुद्ध ना हो जाए। मैं भारत की अखंडता के विरुद्ध बोलने वालों के साथ कभी नहीं हो सकता। इसका खामियाज़ा भुगतता भी रहता हूँ, मगर इस स्टेज पर सुधरने की कोई गुंजाइश दिखाई नहीं देती। जब तकनीकी क्रान्ति ने देशों के बीच की दूरियाँ हटा दी हैं, तो ज़ाहिर है कि मुझे भारत के बारे में जानकारीयों समय रहते मिलती रहती हैं।

आपका कहानी-संग्रह 'नयी ज़मीन नया आकाश' खरीदा। इस संग्रह की पहली कहानी 'खिड़की' पढ़ी। यह कहानी रोचक होने के साथ एक व्यक्तित्व की ओर संकेत करती है, इसकी शैली पूर्व में पढ़ी अन्य से इतर है। आत्म संवादात्मक शैली में कथा-चित्रण लेखक की आत्मकथा की झलक देता है। इस कहानी के बारे में आपकी क्या टिप्पणी है।

दीपक आपने पुस्तक मेले से मेरा कहानी-संग्रह

खरीदा और कहानियाँ पढ़नी शुरू भी कर दीं, यह मेरे लिए विशेष उपलब्धि की बात है। ज़ाहिर है कि मेरे प्रकाशक और पाठकों को भी खुशी होगी कि आप जैसा प्रबुद्ध पाठक मेरी कहानियाँ पढ़ रहा है। वैसे इस पुस्तक मेले में मेरी एक और पुस्तक भी आई है, जिसकी अधिक चर्चा नहीं हुई। उसका नाम है 'मृत्यु के इंद्रधनुष'। इस कहानी-संग्रह में मेरी 24 वो कहानियाँ शामिल की गई हैं, जिनका केन्द्रीय थीम मृत्यु है। इसकी बेहतरीन भूमिका लिखी है देहरादून की डॉ. किरण सूद ने।

जहाँ तक 'खिड़की' कहानी का प्रश्न है, तो यही कहना चाहूँगा कि मैं हमेशा अपने आसपास के माहौल से चरित्र उठाता हूँ और उन्हें अपनी कहानी का पात्र बनाता हूँ। अपनी नौकरी के दौरान मैंने पाया कि लंदन में वरिष्ठ नागरिक अकेलेपन के शिकार हो जाते हैं। उन्हें पैसों की नहीं, बल्कि बातचीत करने की भूख होती है। जीवन में उनकी रुचि समाप्त हो जाती है, क्योंकि उनके बच्चे उन्हें अकेले छोड़कर जीवन में आगे निकल जाते हैं। ऐसे ही कुछ लोगों से मेरा भी परिचय हुआ।

अब लेखक को तो कहानी के लिए केवल एक बिन्दु चाहिए होता है। यहाँ तो पूरा खज़ाना था। इसे कहानी में पिरोना तो मेरे लिए मजबूरी थी। जहाँ तक शैली की बात है, मेरा मानना है कि हर कहानी की थीम स्वयं अपने लिए स्टाइल खोज लेती है। इस थीम की इंटेन्सिटी इतनी अधिक थी कि नैरेटिव शैली में शायद इससे न्याय नहीं हो पाता। अपने आपको उन वरिष्ठ नागरिकों का साथी बनाने के लिए खुद से संवाद ज़रूरी था। उनकी समस्या को समझना ही कहानी बन जाती है। कुछ मित्रों ने कहा कि कहानी पढ़ने के बाद उन्होंने अपने वृद्ध माता-पिता की देखभाल अधिक शिद्दत से शुरू कर दी है।

तेजेंद्र जी आपने संवाद के माध्यम से बहुत सी जानकारीयों दीं, मैं आपके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

[dkp410@gmail.com](mailto:dkp410@gmail.com)



विश्व हिंदी सचिवालय  
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फेनिक्स 73423, मॉरीशस

*World Hindi Secretariat*  
*Independence Street, Phoenix 73423, Mauritius*

फ़ोन / Phone: 00-230-6600800  
इ-मेल / E-mail : [info@vishwahindi.com](mailto:info@vishwahindi.com)  
वेबसाइट / Website: [www.vishwahindi.com](http://www.vishwahindi.com)  
डेटाबेस / Database: [www.vishwahindidb.com](http://www.vishwahindidb.com)

मुद्रक : Star Publications PVT LTD, Hindi Book Centre, New Delhi - 110002  
[info@starpublish.com](mailto:info@starpublish.com) & [info@hindibook.com](mailto:info@hindibook.com)